TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186405

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H491.4382 P. G. Accession No. H3305
T83H

Author त्रिपाठी, लक्ष्मीधर 'प्रवासी'

Title क्या, अवधभुजाप्रसाद पाण्डेय हिन्दी रचना रूपमें. 1951.

This book should be returned on or before the date last marked below.

# हिन्दी स्पष्ट रूप में

A Guide to General Hindi

[ हाई स्कूल तथा इन्टर के छात्रों के लिए उपयोगी ]

लेखक—

पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

बी० ए०, साहित्यरत्न, शास्त्री

( हिन्दी-प्रचारक-शब्द-कोष, आधुनिक कवि-समीक्षा, हिन्दी गीताञ्जलि आदि ग्रन्थों के प्रख्यात लेखक )

तथा

पं० अष्टभुजा प्रसाद पाण्डेय

एम० ए० बी० टी०, साहित्यरत्न, रिसर्च स्कालर

वाइस प्रिन्सिपल जायसवाल हायर सेकेण्ड्री स्कूल,

बनारस।

प्रकाशक—

श्री कृष्णचन्द्र बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,

पोस्ट बाक्स नं० ७०,

ज्ञानवापी, बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण ] १९५१ [ मूल्य ३)

मुद्रक—बालकृष्ण शास्त्री,
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगञ्ज, बनारस ।

# पूर्व-परिचय

हिन्दी में गद्य-साहित्य की अवतारणा के पूर्व इसका पद्य-साहित्य तुलसी, सूर, कबीर अदि महाकवियों की रचनाओं के कारण भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य से विशेष समुन्नत रहा है। आधुनिक वातावरण में पद्य-साहित्य के साथ ही साथ इसका गद्य-साहित्य कल्पनातीत रूप में विकसित एवं संवर्द्धित हुआ है। अन्य प्रान्तीय भाषा-भाषियों की अपेक्षा हिन्दी-भाषा-भाषियों की संख्या भी बहुत अधिक है। हिन्दी की इन प्रमुख विशेषताओं के ही कारण उसे आज राष्ट्र-भाषा का सम्मान प्राप्त हुआ है। यह महान् सम्मान प्राप्त तो हो गया किन्तु हिन्दी के मर्मज्ञों को अपने कर्तव्य का पूर्णतया पालन करना होगा तभी हिन्दी का यह सम्मान और गौरव सुरक्षित रह सकता है। अभी वाङ्मय के अनेक ऐसे अंग हैं जो हिन्दी-सेवियों द्वारा अछूते पड़े हुए हैं, उनकी सेवा और उनका संवर्द्धन भी आज आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

हिन्दी के अक्षरों को पढ़ लेने से ही कोई हिन्दी का ज्ञाता नहीं कहा जा सकता, उसके पूर्ण स्वरूप से अवगत होना भी आज प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य हो जाता है। हिन्दी का अपना एक व्याकरण है, अपना एक निश्चित स्वरूप है, अपनी कुछ खास विशिष्टताएँ हैं, अपने भाव और अपने छंद हैं। जब तक कोई इन सारी बातों में दक्षता न प्राप्त करले वह हिन्दी-विद् नहीं कहा जा सकता। हिन्दी के प्रत्येक विशिष्ट अंग का परिचय देने वाली कोई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई, जिसे पढ़कर किसी हिन्दी-प्रेमी की जिज्ञासा शान्त हो जाय। इसी विचार से प्रेरित होकर हमने यह प्राथमिक उद्योग किया है और जिसके परिणाम-स्वरूप यह पुस्तक आज पाठकों के हाथ में आ सकी है।

इस पुस्तक के अध्ययन से हिन्दी के स्वरूप का सामान्य ज्ञान अवश्य ही हो जायगा। इस पुस्तक से मैट्रिक, आई० ए० और

कुछ अंशों तक बी० ए० के छात्र भी लाभ उठा सकते हैं। पिङ्गल, अलंकार, रस, शब्द-शक्ति आदि का परिचय बी० ए० के छात्र भी पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं।

पुस्तक का लगभग पूर्वार्द्ध अर्थात् कवि-परिचय तक श्री पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत किया गया है और इसका उत्तरार्द्ध श्री 'प्रवासी' द्वारा प्रस्तुत, किया गया है। एक बात मैं यहाँ कह देना आवश्यक समझता हूँ कि पुस्तक अत्यन्त शीघ्रता में निकली है अतः यत्किञ्चित् त्रुटियाँ हिन्दी के विज्ञों द्वारा क्षम्य समझी जाएँगी, ऐसी आशा है। दूसरी बात है यह कि इस पुस्तक का नाम पहले हिन्दी-सर्वप्रकाश' रखा जाने वाला था किन्तु कई कारणों से इसका नाम 'हिन्दी, स्पष्ट रूप में' कर देना पड़ा।

आशा है कि इस पुस्तक से हिन्दी के शिक्षार्थियों का लाभ होगा और उनसे प्रोत्साहन प्राप्त करके हम आगे चलकर उनकी और भी सेवाएँ कर सकेंगे।

२३-६-५१.

'प्रवासी'
पाण्डेय

# विषय-सूची


| अध्याय | विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|
| पहला | व्याकरण | | | १ |
| दूसरा | कहावतें और मुहावरे | | | ३४ |
| तीसरा | अपठित और पर्यायवाची शब्द | | | ७७ |
| चौथा | साहित्य का इतिहास | | | ९३ |
| | अपभ्रंश-काल | ... | ... | ९४ |
| | वीर गाथा-काल | ... | ... | ९९ |
| | भक्ति-काल | .. | ... | १०६ |
| | निर्गुण-धारा | ... | ... | ११० |
| | प्रेममार्गी-शाखा | ... | ... | ११६ |
| | ( सगुण-भक्ति शाखा ) | | | |
| | राम-भक्ति-शाखा | ... | ... | ११९ |
| | कृष्ण-भक्त-शाखा | ... | ... | १२३ |
| | रीति काल | ... | ... | १४० |
| | रीति-बाह्यकवि | ... | ... | १५६ |
| | आधुनिक काल | ... | ... | १६१ |
| | गद्य-रचना | ... | ... | १६७ |
| | काव्य-रचना | ... | ... | १८१ |
| पाँचवा | हिन्दी काव्य-साहित्यमें 'वाद' | | | |
| | छायावाद | ... | ... | २१५ |
| | रहस्यवाद | ... | ... | २२२ |
| | प्रगतिवाद | ... | ... | २२३ |

| अध्याय | विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|
| छठाँ | **पिङ्गल या छन्दः शास्त्र** | | | |
| | मात्रिक छन्द की विशेषताएँ | ... | ... | २३६ |
| | छन्दोभङ्ग | ... | ... | २३७ |
| | यतिभङ्ग | .. | ... | २३८ |
| | गतिभङ्ग | ... | ... | २३९ |
| | **गण-फलक** | | | २४१ |
| | दो गणों का विचार | | | |
| | तुक-विचार | ... | ... | २४३ |
| | छन्द के भेद | ... | ... | २४४ |
| | मात्रिक समछन्द | ... | ... | २४६ |
| | मात्रिक अर्द्धसमछन्द | ... | ... | २५३ |
| | मात्रिक विषम छन्द | ... | ... | २५५ |
| | मुक्त छन्द | ... | ... | २५७ |
| सातवाँ | **वर्णिक वृत्त** | ... | ... | २५८ |
| | वर्णिक मुक्तक वृत्त | ... | ... | २६३ |
| | दण्डक मुक्तक | ... | ... | २६५ |
| आठवाँ | **अलङ्कार-प्रवेश** | ... | ... | २७१ |
| | शब्दालङ्कार | ... | ... | २७२ |
| | अर्थालङ्कार | ... | ... | २७६ |
| | उभयालङ्कार | ... | ... | २९४ |
| नवाँ | **रस-प्रकरण** | | | २९९ |
| | शृङ्गार रस | ... | ... | २९९ |
| | करुण रस | ... | ... | ३०३ |
| | हास्य रस | ... | ... | ३०४ |
| | रौद्र रस | ... | ... | ३०५ |

| अध्याय | विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|
| | वीर रस | ... | ... | ३०५ |
| | भयानक रस | ... | ... | ३०६ |
| | बीभत्स रस | ... | ... | ३०६ |
| | अद्भुत रस | ... | ... | ३०८ |
| | शान्त रस | ... | ... | ३९० |
| | वात्सल्य रस | ... | ... | ३१० |
| दसवाँ | **काव्य प्रकरण** | ... | ... | ३१३ |
| | काव्य के भेद | ... | ... | ३१६ |
| | **नाटक या रूपक** | ... | ... | ३२२ |
| | नाटक के तत्त्व | ... | ... | ३२५ |
| | नाटक की सन्धियाँ | ... | ... | ३२६ |
| | अर्थप्रकृतियाँ | ... | ... | ३२७ |
| | **उपन्यास** | ... | ... | ३२९ |
| | **कहानी** | ... | ... | ३३३ |
| ग्यारहवाँ | **शब्द-शक्तियाँ** | ... | ... | ३३५ |
| बारहवाँ | **निबन्ध का स्वरूप** | ... | ... | ३४९ |
| | पत्र-लेखन | .... | ... | ३७६ |
| | निबन्धों का विश्लेषण | ... | ... | ३८२ |
| | उद्धरण | ... | .... | ३८९ |

# हिन्दी स्पष्ट रूप में

# A

# GUIDE TO GENERAL HINDI

## पहला अध्याय

## व्याकरण

**व्याकरण-ज्ञान** के बिना भाषा में शुद्धता एवं एकरूपता संभव नहीं है। अतः किसी भी भाषा का व्याकरण उस भाषा के साहित्य पर पूरा नियंत्रण रखता है।

वाक्य के अन्तर्गत शब्दों का प्रयोग इस प्रकार होता है कि अर्थगत विशेषता स्पष्ट हो जाती है। वाक्य के दो अंग होते हैं—(१) **उद्देश्य** और (२) **विधेय**। जिसके बारे में कुछ कहा जाय वह तो **उद्देश्य** है और जो कुछ कहा जाय वह **विधेय** होता है।

किसी भी वाक्य में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय शब्दों का प्रयोग देखा जाता है।

**संज्ञा**—किसी वस्तु, व्यक्ति और स्थान के नाम को संज्ञा कहते हैं। जैसे, मोहन, गाय।

**सर्वनाम**—जो शब्द संज्ञा के बदले में आता है। जैसे, वह आया, यहाँ 'वह' सर्वनाम है।

**विशेषण**—जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाता है वह विशेषण कहलाता है। जैसे, काली गाय। यहाँ *'काली'* विशेषण और *गाय'* विशेष्य है।

**क्रिया**—जिस शब्द से किसी काम का करना या होना पाया जाय उसे क्रिया कहते हैं। जैसे, राम आता है। यहाँ *'आता है'* क्रिया है।

**अव्यय**—जिस शब्द का रूप सदा एक-सा रहे और लिङ्ग, वचन और कारक में विकार न प्राप्त हो, वह **अव्यय** होता है। जैसे—यहाँ, वहाँ, अब, तब।

## संज्ञा के भेद

**संज्ञा तीन प्रकार की होती है**—(१) जातिवाचक (२) व्यक्तिवाचक और (३) भाववाचक।

**जातिवाचक संज्ञा**—वह है जिससे किसी भी जाति का ज्ञान हो। जैसे-मनुष्य, नदी, पहाड़।

**व्यक्तिवाचक संज्ञा** से व्यक्ति का बोध होता है। जैसे—राम, गंगा, हिमालय।

**भाववाचक संज्ञा**—गुण, दशा अथवा व्यापार को व्यक्त करती है। जैसे—लड़कपन, बुढ़ापा, सचाई, खड़खड़ाहट।

## लिङ्ग, वचन और कारक

हिन्दी में लिङ्ग दो होते हैं—**पुल्लिङ्ग** और **स्त्रीलिङ्ग**। **पुल्लिङ्ग** से पुरुष जाति के शब्दों का ज्ञान होता है और **स्त्रीलिङ्ग** से स्त्री जाति के शब्दों का बोध होता है। जीवधारियों का लिङ्ग-ज्ञान सुगम है, पर निर्जीव पदार्थों का लिङ्ग-ज्ञान प्रयोग पर निर्भर

करता है। जैसे, दही खट्टा है। मेरा जी अच्छा नहीं है। यहाँ *दही* और *जी* का पुल्लिङ्ग प्रयोग है।

**वचन** दो प्रकार के होते हैं-(१) **एकवचन** और (२) **बहुवचन**। **एकवचन** से एक वस्तु का बोध होता है। **बहुवचन** से एक से अधिक का बाध होता है। किसी किसी शब्द का दोनों वचनों में एक ही रूप होता है। ऐसे अवसरों पर प्रयोगानुसार उनका ज्ञान करना चाहिये।

## कारक

संज्ञा या सर्वनाम के साथ रहकर क्रिया से सम्बन्ध बतलाते हुए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं उन्हें **कारक** कहते हैं।

कारक आठ प्रकार के होते हैं—(१) कर्त्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान, (६) सम्बन्ध, (७) अधिकरण और (८) सम्बोधन।

**कर्त्ता**—वाक्य में क्रिया के करनेवाले को कर्त्ता कहते हैं। इसका चिन्ह 'ने' है। जैसे, राम ने पुस्तक ली। 'ने' का प्रयोग कर्त्ता के साथ कभी होता है, कभी नहीं।

**कर्म**—जिस वस्तु पर क्रिया का फल गिरता है, उसे कर्म कहते हैं। जैसे, राम ने पुस्तक खरीदी। यहाँ पुस्तक कर्म कारक है, इसका चिन्ह 'को' है। जैसे '*राम को पुस्तक दो*'। इसका प्रयोग प्रायः जीवधारियों के बाद होता है।

**करण**—जिसकी सहायता से क्रिया हो उसे करण कहते हैं। जैसे, चाकू से कलम बनाओ। यहाँ 'से' करण कारक का चिन्ह है।

**सम्प्रदान**—जिसके लिये कोई कार्य किया जाय। जैसे, मोहन के लिये पुस्तक लाओ। यहाँ 'के *लिये*' सम्प्रदान का चिन्ह है।

**अपादान**--जिस शब्द के द्वारा एक वस्तु का दूसरे से बिलगाव या पृथक्त्व सिद्ध हो वह अपादान कारक होता है। जैसे–पेड़ से पत्ते गिरे। यहाँ 'से' शब्द पेड़ और पत्तों में पृथक्त्व बतलाता है। अतः यह अपादान कारक है।

**सम्बन्ध**—जब एक वस्तु का सम्बन्ध किसी दूसरी से हो तब वहाँ सम्बन्ध कारक होता है। जैसे, राम की पुस्तक। यहाँ राम और पुस्तक में सम्बन्ध है। अतः 'की' सम्बन्ध कारक है।

इसके चिन्ह—*का, के, की ; रा, रे, री ; ना, ने, नी* हैं।

**अधिकरण**—जिस वस्तु से क्रिया का आधार अर्थात् समय या स्थान आदि प्रकट हो उसे अधिकरण कहते हैं। जैसे, कोठे पर जाओ। यहाँ 'कोठे पर' अधिकरण कारक में है। इसके चिन्ह, *में, पै, पर* हैं।

**सम्बोधन**—जिसे पुकारा जाय वह सम्बोधन होता है। इसका चिन्ह, *हे, हो, अरे और अय* हैं। जैसे, हे रामजी, ध्यान से सुनो! यहाँ *'हे! रामजी'* सम्बोधन में है।

## सर्वनाम

जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा के लिये हो उसे सर्वनाम कहते हैं। सर्वनाम के ६ भेद हैं:—

(१) पुरुषवाचक, (२) निश्चयवाचक, (३) अनिश्चयवाचक, (४) सम्बन्धवाचक, (५) प्रश्नवाचक और (६) निजवाचक।

१–**पुरुषवाचक** से पुरुष का बोध होता है। इसके तीन भेद हैं। **उत्तम पुरुष**—मैं, हम; **मध्यम पुरुष**—तू, तुम; **अन्य पुरुष** वह, वे। कारकों के अनुसार इन रूपों में परिवर्तन होता रहता है।

२—**निश्चयवाचक** से निश्चयात्मक बोध होता है। जैसे, यह ठीक नहीं है। इस वाक्य में *'यह'* निश्चयात्मक सर्वनाम है। *यह, ये* निकटता बतलाते हैं और *वह, वे* दूरी।

३—**अनिश्चयवाचक** से निश्चय नहीं सूचित होता है। जैसे, कोई बोल रहा है। यहाँ *'कोई'* अनिश्चयवाचक है। *'कोई'* मनुष्यों के लिये प्रयुक्त होता है और 'कुछ' जानवरों के लिये।

४—**सम्बन्धवाचक** से सम्बन्ध सूचित होता है। जैसे, वह किताब जो आपने दी थी, खो गई। यहाँ *'जो'* शब्द किताब से सम्बन्ध रखता है। अतः यह सम्बन्धवाचक सर्वनाम है। जो, सो, जौन-तौन, जो-वह सम्बन्धवाचक सर्वनाम हैं।

५—**प्रश्नवाचक** से प्रश्न सूचित होता है। जैसे, कौन आया? यहाँ *'कौन'* प्रश्नवाचक सर्वनाम है। *'कौन'* का प्रयोग मनुष्यों तथा बड़े जीवधारियों के लिये होता है। *'क्या'* निर्जीव वस्तुओं के लिये तथा छोटे प्राणियों के लिये प्रयुक्त होता है।

६—**निजवाचक** या आदरसूचक से स्वयं का बोध होता है। इसका चिह्न *'आप'* होता है। जैसे, आप क्या करेंगे? यहाँ *'आप'* निजवाचक सर्वनाम है।

## विशेषण

**विशेषण** संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाता है।

**विशेषण के ६ भेद** हैं—(१) गुणवाचक, (२) परिमाण वाचक, (३) संख्यावाचक, (४) संकेतवाचक (५) व्यक्तिवाचक और (६) विभागबोधक।

**गुणवाचक** से गुण प्रकट होता है। जैसे—काली गाय। यहाँ *'काली'* गुणवाचक विशेषण है। इसी प्रकार अच्छा, बुरा, बड़ा, छोटा सब गुणवाचक विशेषण हैं।

**परिमाणवाचक** से मात्रा का बोध होता है। जैसे—थोड़ा, बहुत, कम, तनिक, पर्याप्त आदि शब्द।

**संख्यावाचक** से निश्चित अथवा अनिश्चित संख्या का बोध होता है। जैसे, एक, दो, तीन; पहला, दूसरा, तीसरा; एक गुना, दो गुना, तीन गुना। कुछ आदमी। सब लोग। यहाँ 'कुछ' और 'सब' अनिश्चित संख्या बतलाते हैं। अतः ये अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण हैं और पहले के शब्द निश्चित संख्यावाचक हैं।

**संकेतवाचक**—जब संकेतवाचक सर्वनाम किसी संज्ञा के पहले आकर विशेषण का कार्य करते हैं तो वे ही संकेतवाचक विशेषण हो जाते हैं। जैसे, यह लड़का, वह गाय, वे आदमी। यहाँ 'यह' 'वह' 'वे' संकेतवाचक विशेषण हैं।

**व्यक्तिवाचक विशेषण**—व्यक्तिवाचक विशेषण संज्ञाओं से बनाये जाते हैं। जैसे, बनारसी साड़ी, अरबी घोड़ा।

**विभागबोधक** से विभाग का पता लगता है, जैसे—प्रत्येक आदमी। यहाँ प्रत्येक विभागबोधक विशेषण है।

सूचना—विशेषणों में कारकों की विभक्तियाँ तभी लगती हैं जब उनका प्रयोग विशेष्य की तरह होता है।

## क्रिया

जिस शब्द से किसी कार्य का करना या होना पाया जाय उसे **क्रिया** कहते हैं। क्रिया दो प्रकार की होती है—(१) **सकर्मक** जिसमें कर्म रहता है और (२) **अकर्मक** जिसमें कर्म नहीं होता। किसी क्रिया का प्रयोग दोनों प्रकार से होता है। आजकल अंग्रेजी के अनुकरण से अकर्मक क्रिया में भी लोग कर्म लगाते हैं। जैसे, वह एक दौड़ दौड़ा। पर यह प्रयोग ठीक नहीं है।

अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं में 'पूरक' का प्रयोग भी होता है।

कभी-कभी सकर्मक क्रिया में दो कर्म आते हैं। जो कर्म वाच्य-परिवर्तन में कर्म के ही स्थान पर रहता है, वह **गौण** और जो वाच्य-परिवर्तन में कर्त्ता का रूप धारण कर लेता है वह **प्रधान** कहलाता है। जैसे, मैंने राम को दस रुपये दिये। **वाच्य-परिवर्तन** में इसे इस प्रकार लिखेंगे—मेरे द्वारा राम को दस रुपए दिये गये। यहाँ 'दस रुपये' प्रधान कर्म और 'राम' गौण कर्म है।

## काल

क्रिया में तीन काल होते हैं—( १ ) **भूतकाल** (२) **वर्तमान काल और** ( ३ ) **भविष्यत् काल**।

भूतकाल के ६ भेद हैं ( १ ) **सामान्य भूत**—वह आया। ( २ ) **आसन्न भूत**-वह आया है। (३) **पूर्ण भूत**—वह आया था। ( ४ ) **अपूर्ण भूत**—वह आता था। **हेतुहेतुमद्भूत**—तुम आते तो मैं जाता। ( ६ ) **संदिग्ध भूत**-वह आया होगा।

वर्तमान काल के तीन भेद हैं—

( १ ) **सामान्य वर्तमान**—वह आता है।

( २ ) **तात्कालिक वर्तमान**—वह आ रहा है।

( ३ ) **संदिग्ध वर्तमान**—वह आता होगा।

## भविष्यत् काल

भविष्यत् काल के ४ भेद हैं—

( १ ) **सामान्य भविष्यत्**—वह आवेगा।

( २ ) **सम्भाव्य भविष्यत्**—वह खा रहा होगा।

( ३ ) **पूर्ण भविष्यत्**—वह खा चुकेगा।

( ४ ) **अपूर्ण भविष्यत्**—वह खाता रहेगा।

**पूर्वकालिक क्रिया** 'कर' या 'करके' लगने से बनती है। जैसे—वह खाकर सो गया। यहाँ 'खाकर' पूर्वकालिक क्रिया है। **समापिका क्रिया** में पूरक होता है। सकना, चुकना, डालना, जाना, लेना, देना, पड़ना, उठना, बैठना, करना, चाहना, रहना, लगना, होना, पाना आदि क्रियाएँ **सहायक क्रियाएँ** हैं। ये अन्य क्रियाओं के साथ लगाई जाती हैं।

**प्रेरणार्थक क्रिया** में कर्त्ता दूसरों की सहायता से कार्य करता है। जैसे—मोहन ने राम से चिट्ठी लिखवाई। यहाँ मोहन रामको चिट्ठी लिखने के लिये प्रेरित करता है।

जहाँ **कर्त्ता** प्रधान हो वहाँ **कर्तृवाच्य**, जहाँ कर्म की प्रधानता हो वहाँ **कर्मवाच्य** होता है।

यदि अकर्मक क्रिया का असली कर्त्ता करण कारक में रखा गया है और कर्त्ता कारक में कोई शब्द नहीं है तो वहाँ **भाववाच्य** है।

क्रिया की **पद-व्याख्या** में निम्नलिखित बातें देनी चाहियें:—अकर्मक या सकर्मक, द्विकर्मक, प्रेरणार्थक, पूर्वकालिक, काल-भेद, वाच्य और सम्बन्ध।

**नियम**—क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं।

## अव्यय

अव्यय के रूप सदा एक से रहते हैं।

अव्यय के चार भेद हैं--( १ ) **क्रियाविशषण**, ( २ ) **सम्बन्धवाचक**, ( ३ ) **समुच्चयबोधक**, ( ४ ) **इंगितसूचक या विस्मयादिबोधक**।

**क्रियाविशेषण अव्यय** क्रिया की अर्थगत विशेषता बताते हैं। इनके चार प्रकार हैं--

१ ) **काल वाचक**--अब, कब, जब, तब, अभी, कभी आदि।

( २ ) **स्थानवाचक**--यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ, तहाँ।

( ३ ) **रीतिवाचक**--जैसे, तैसे, इस प्रकार।

( ४ ) **परिमाणवाचक**--इतना, उतना, जितना।

**सम्बन्धवाचक अव्यय**—वे हैं जो किसी संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ करते हैं। **समुच्चयबोधक अव्यय** वे शब्द हैं जो शब्दों को शब्दों से, वाक्यांशों को वाक्यांशों से और वाक्यों को वाक्यों से मिलाते हैं। इसके दो भेद हैं—**संयोजक** तथा **विभाजक**।

**इङ्गितसूचक या विस्मयादिबोधक अव्यय**—शोक, पीड़ा, अभिमान आदि मनोगत भावों को व्यक्त करते हैं। जैसे, *छिः छिः* बुरा हो गया! *हाय हाय* मैं लुट गया।

**पदान्वय का अर्थ** ( पद-व्याख्या, पद-परिचय या शब्द-निरुक्ति है।

**नियम**–संज्ञा की पद-व्याख्या में लिङ्ग, वचन और कारक का क्रिया के साथ सम्बन्ध बताना आवश्यक है।

उदाहरणार्थ—**मोहन ने लड़के को छड़ी से मारा।**

**मोहन ने**—व्यक्तिवाचक संज्ञा, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्त्ता कारक, मारा क्रिया का कर्त्ता।

**लड़के को**—जातिवाचक संज्ञा, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्त्ता कारक, मारा क्रिया का कर्म।

**छड़ी से**—जातिवाचक संज्ञा, एकवचन, स्त्रीलिङ्ग, करण कारक।

**मारा**—क्रिया सकर्मक, कर्तृवाच्य, एकवचन, पुल्लिङ्ग, सामान्य भूत, इसका कर्त्ता मोहन और कर्म लड़के हैं।

## सर्वनाम का पदान्वय

सर्वनाम के पदान्वय में वे ही बातें आती हैं जो संज्ञा के पदान्वय में। केवल पुरुष अधिक बतलाना होता है।

उदाहरणार्थ—**अभी मैंने कुछ नहीं खाया है।**

**मैंने**—पुरुषवाचक सर्वनाम, उत्तम पुरुष, पुल्लिङ्ग, एकवचन, कर्त्ता कारक, '*खाया है*' क्रिया का कर्त्ता।

**कुछ**—अनिश्चयवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुष, एकवचन, कर्म कारक, '*खाया है*' क्रिया का कर्म।

## विशेषण का पदान्वय

*एक* घोड़ा *लाल* जीन के साथ *गंदी* सड़क पर जा रहा था।

**एक**—संख्यावाचक विशेषण, इसका विशेष्य घोड़ा है।

**लाल**—गुणवाचक विशेषण, इसका विशेष्य जीन है।

**गंदी**—गुणवाचक विशेषण, इसका विशेष्य सड़क है।

## अव्यय का पदान्वय

**वाह ! तुम इतना तेज दौड़े कि आगे बढ़ गये।**

**वाह**—विस्मयादिबोधक अव्यय, हर्ष सूचित कर रहा है।

**तेज**--क्रियाविशेषण, रीतिसूचक, दौड़ा क्रिया के लिए।

**कि**—समुच्चयबोधक, संयोजक। 'इतना तेज दौड़ा' और 'आगे बढ़ गये' को जोड़ता है।

**आगे**—क्रियाविशेषण अव्यय, स्थानवाचक, बढ़ गये क्रिया के लिए।

नीचे लिखे वाक्यों के प्रत्येक शब्द का पदान्वय करो—

(१) जीवन क्षणभंगुर है। (२) अतः मनुष्य को सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। (३) सद्बुद्धि न होने पर भी अपरिश्रमी से परिश्रमी अच्छा है। (४) समय का सदुपयोग करते रहने से बुद्धि भी ठीक हो जाती है और कष्ट के दिन मालूम नहीं पड़ते। (५) ईश्वर का स्मरण और अपने कर्त्तव्य का ध्यान मनुष्य को आगे बढ़ाता है।

## पदों और वाक्यों का विग्रह

**वाक्यों के प्रकार**—(१) साधारण (२) मिश्र और (३) संयुक्त (संसृष्ट वाक्य)।

**१. साधारण वाक्य**—जिस वाक्य में एक ही क्रिया हो। जैसे, मोहन खाता है।

**२. मिश्र वाक्य**—जिस वाक्य में दो या दो से अधिक वाक्यांश हों, परन्तु एक वाक्य प्रधान हो और अन्य उसके आश्रित हों, उसे **मिश्र वाक्य** कहते हैं। जैसे, मोहन ने कहा कि रमेश ईमानदार नहीं है। *'यहाँ मोहन ने कहा'* प्रधान उपवाक्य, *'रमेश ईमानदार नहीं है'* आश्रित उपवाक्य है।

**(३) संयुक्त वाक्य—**

जिस वाक्य के दोनों या सभी वाक्यांश अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हों, एक दूसरे के आश्रय में न हों वहाँ संयुक्त वाक्य

होता है। जैसे, तुम रुपया तो नहीं लाये पर तुमने मेरी बात मान ली। यहाँ दोनों वाक्यांश एक दूसरे पर आश्रित नहीं हैं। संयुक्त वाक्य में जिन वाक्यांशों का स्थान बराबर होता है उन्हें **समानाधिकरण** कहते हैं।

### आश्रित वाक्यांशों के भेद—

आश्रित वाक्यांश तीन प्रकार के होते हैं—

**( १ ) संज्ञा वाक्यांश ( २ ) विशेषण वाक्यांश और (३ ) क्रियाविशेषण वाक्यांश।**

( १ ) जब कोई वाक्यांश संज्ञा का कार्य करता है अर्थात् उसका प्रयोग किसी क्रिया के कर्त्ता के रूपमें या कर्म या करण के रूप में हो तो वहाँ **संज्ञा वाक्यांश** होता है। जैसे, मोहन ने कहा कि पाठशाला बंद है। यहाँ 'पाठशाला बंद है' *कहा* क्रिया का कर्म है, अतः यह संज्ञा वाक्यांश है।

( २ ) जब कोई वाक्यांश संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाने के लिये प्रयुक्त होता है तब वहाँ **विशेषण वाक्यांश** होता है। जैसे, जो पुस्तक आपने दी थी वह खो गई। यहाँ प्रथम वाक्यांश विशेषण वाक्यांश है। विशेषण वाक्यांश प्रायः सम्बन्धवाचक सर्वनाम से ही प्रारंभ होता है।

( ३ ) जब कोई वाक्यांश किसी क्रिया के विशेषण का काम करता है तो उसे **क्रियाविशेषण वाक्यांश** कहते हैं। प्रायः इस प्रकार के वाक्य क्रियाविशेषण अव्ययों से प्रारंभ किये जाते हैं। जैसे, जब से मेंह बरसने लगा मैं रुक गया हूं। इस वाक्य में *'मैं रुक गया हूँ'* प्रधान उपवाक्य *'जब से मेंह बरसने लगा'* क्रियाविशेषण उपवाक्य है। यह प्रधान उपवाक्य का आश्रित है।

साधारण वाक्यों का वाक्य-विच्छेद इस प्रकार होता है।

| वाक्य | भेद | संयोजक | कर्त्ता | कर्त्ताका विस्तार | कर्म | कर्म का विस्तार | पूरक | पूरकका विस्तार | क्रिया | क्रियाका विस्तार |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १–राम पाठशाला जाता है। | साधारण वाक्य | | राम | | | | | | जाता है | पाठ-शाला |
| २–मोहन ने कहा कि मैं घर जाऊँगा | मिश्र वाक्य | | मोहन ने | | | | | | कहा | |
| मोहन ने कहा कि मैं घर जाऊँगा। | प्रधान उपवाक्य आश्रित संज्ञा उपवाक्य | कि | मैं | | | | | | जाऊँगा | |
| ३–जब तुम घर जाओ तो अपना पाठ याद करो। | मिश्र वाक्य | | तुम | | | | | | | |
| जब जाओ अपना ..... याद करो। | क्रिया विशेषण उपवाक्य | जब | | | | | | | जाओ | घर |
| | प्रधान उपवाक्य | तो | तुम | | पाठ | अपना | | | याद करो | |
| ४–वह न तो आया और न उसने रुपया ही भेजा। | संयुक्त वाक्य | और | वह | | | | | | आया | |
| | | | उसने | | रुपया | | | | भेजा | |

( १ ) राम पाठशाला जाता है।
( २ ) मोहनने कहा कि मैं जाऊँगा।
( ३ ) जब तुम घर जाओ तो अपना पाठ याद करो।
( ४ ) वह न तो आया और न उसने रुपये ही भेजे।

## इन वाक्यों का विश्लेषण करो—

( १ ) यद्यपि प्रधानाध्यापक जी ने बार बार कहा कि पढ़ोगे नहीं तो पास नहीं होगे, पर उसने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह खेल-कूद में लगा था।

( २ ) जिस लड़के ने परीक्षा-भवन में नकल की थी उसे निकाल दिया गया। अतः सबको सावधान होना चाहिए।

( ३ ) या तो तुम रुपया अदा करो या कागज लिख दो। इस तरह हीलाहवाली करने से काम न चलेगा।

( ४ ) बाल्यकाल विद्याध्ययन के लिए है, जिसने इसे खो दिया वह पछताता है क्योंकि 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं'।

## समास

दो या दो से अधिक शब्द जब अपनी विभक्तियाँ छोड़कर एक में मिल जाते हैं और इससे जो नया शब्द बनता है वह समासप्रधान कहलाता है। जैसे, चन्द्रभान।

### समास के ६ भेद हैं

**( १ ) अव्ययीभाव, ( २ ) तत्पुरुष, ( ३ ) द्विगु, ( ४ ) द्वन्द्व, ( ५ ) कर्मधारय और ( ६ ) बहुव्रीहि।**

**अव्ययीभाव**—जिस शब्द का पहला शब्द अव्यय हो और उसका अर्थ प्रधान हो वहाँ **अव्ययीभाव समास** होता है। जैसे, मैं यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगा। इसमें *'यथाशक्ति'*

अव्ययीभाव समास है। जब कोई क्रियाविशेषण दो बार प्रयुक्त होता है वहाँ भी अव्ययीभाव समास होता है। जैसे, धीरे-धीरे दूर-दूर आदि।

**तत्पुरुष**—इसमें दूसरा पद प्रधान होता है। पहले पद में कर्त्ता कारक के अतिरिक्त अन्य कारक आते हैं और इनकी विभक्तियों का लोप रहता है। जैसे, सुखप्राप्त–सुख को प्राप्त। जलसिक्त-जल से सिक्त। साधु-दक्षिणा–साधु के लिये दक्षिणा। इसी प्रकार शरणागत, गृहस्वामी, जलमग्न, स्वर्गगत, तुलसीदल आदि तत्पुरुष–समास हैं।

कभी कभी समास करने में शब्दों का क्रम उलट जाता है। जैसे, भूतपूर्व—पूर्व में भूत, राजवैद्य–वैद्यों का राजा।

जब निषेधार्थक अव्यय 'अ' और 'अन्' शब्द के पहले आते हैं तो वहाँ **अनञ् तत्पुरुष** होता है। जिस शब्द का प्रथम अक्षर व्यंजन हो उसमें 'अ' लगता है और जिसका स्वर हो उसमें 'अन्' लगता है। जैसे, अकर्म और अनुपस्थित, पहले में 'अ' दूसरे में 'अन्' लगा है।

**द्विगु**—इसमें दूसरा शब्द प्रधान होता है। पहला शब्द संख्यावाचक विशेषण होता है। जैसे, त्रिफला, पंचमेल, सप्ताह।

सूचना—कहीं-कहीं संख्यावाचक विशेषण देखकर भ्रम नहीं करना चाहिये। जैसे, दशानन। यहाँ 'दशानन' रावण के लिये आया है, अतः **दशानन** बहुव्रीहि है।

**द्वन्द्व**—इसमें दोनों पद प्रधान होते हैं। उनके बीच में 'और' छिपा रहता है। जैसे, रात-दिन, सुख-दुःख।

**कर्मधारय**—यहाँ दोनों पद प्रधान होते हैं। पहला पद विशेषण होगा या विशेष्य या दोनों पद विशेषण होते हैं। जैसे,

कमल-नयन ( कमलवत् नयन ), स्याह-सफेद ( इसमें दोनों शब्द विशेषण हैं )।

इसी प्रकार कर्पूरगौर, चन्द्रमुख भी कर्मधारय समास हैं। कु, दु, सु, को भी लगाकर कर्मधारय समास बनाया जाता है। जैसे, कुसंग, दुर्व्यवहार, सुसंगति आदि।

## बहुव्रीहि

जहाँ दोनों शब्दों के अर्थों की प्रधानता हो, किन्तु उनके संयोग से एक नया अर्थ उत्पन्न हो और वह प्रधान हो अर्थात् जहाँ अन्य पद की प्रधानता हो। जैसे, चतुरानन ( चार हैं मुख जिसके यानी ब्रह्मा )। इसी प्रकार दशानन, चन्द्रचूड़ आदि हैं। अ, अन्, निः, दुः, वि, परा, सु, क, सः, सह, आदि शब्द बहुव्रीहि के पूर्वपद होते हैं। जैसे, '*असङ्ग*', नहीं है सङ्ग जिसको। '*अनागत*', नहीं आगत है जो। '*निर्भय*', नहीं है भय जिसको। इसी प्रकार दुर्भाग्य, विमुख, पराङ्मुख, सुमुखी, कुमति आदि शब्द भी हैं। जिस स्थान में मध्यम पद का लोप हो जाय, वहाँ **मध्यमपदलोपी बहुव्रीहि** होता है। जैसे **अश्वमुख** अर्थात् अश्व के मुख की तरह मुख हो जिसका। इस प्रकार मुख का प्रयोग दो बार करना पड़ा है, परन्तु समास करने में एक मुख का लोप हो जाता है।

## सन्धि

जब दो शब्द मिलकर एक हो जाते हैं तो सन्धि होती है। सन्धि का अर्थ मिलना होता है। जैसे, विद्या + अर्थी = विद्यार्थी। सत् + चित् = सच्चित्। विष्णुः + त्राता = विष्णुत्राता।

**सन्धियों के प्रकार**—( १ ) स्वर, ( २ ) व्यंजन और ( ३ ) विसर्ग।

१—स्वर के साथ स्वरों के मेल से **स्वर सन्धि** होती है।

२—जब एक व्यंजन किसी दूसरे व्यंजन या स्वर से मिलता है तब वहाँ **व्यंजन सन्धि** होती है।

३—जब विसर्ग किसी व्यंजन या स्वर से मिलता है तब वहाँ **विसर्ग सन्धि** होती है।

## स्वर सन्धि

स्वर सन्धि कई प्रकार की हैं। उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:-

**दीर्घ सन्धि**—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ, के साथ ह्रस्व या दीर्घ समान स्वर मिलने से दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे—लाभ + अर्थी = लाभार्थी, हरि + इच्छा = हरीच्छा, भानु + उदय = भानूदय।

**गुण सन्धि**—'अ' वा 'आ' के परे यदि इ, ई, उ, ऊ, या ऋ आवे तो इ या ई मिलकर ऐ, उ वा ऊ मिलकर ओ और ऋ मिलकर अर् हो जाता है। जैसे,

उप + इन्द्र = उपेन्द्र।
गंगा + उदकम् = गंगोदकम्।

**व्रण सन्धि**—ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ और ऌ के बाद कोई भी स्वर आवे तो इ का य्, उ का व्, ऋ का र् और ऌ का ल हो जाता है। जैसे—प्रति + एक = प्रत्येक। मेरु + आगत = मेर्वागत। पितृ + अर्थ = पित्रर्थ। तव + ऌकार = तवल्कार।

**अयादि सन्धि**—ए, ऐ, ओ या औ के बाद कोई भी स्वर, आवे तो ए का 'अय्', ऐ का 'आय्', ओ का 'अव्' और औ का 'आव्' हो जाता है। जैसे, ने + अन = नयन। नै + अक = नायक। पौ + अक = पावक, भो + अति = भवति।

**वृद्धि सन्धि**—जब अ अथवा आ के बाद ए या ऐ, ओ वा

औ हो तो 'ए' के स्थान में 'ऐ' और 'ओ' के स्थान में 'औ' हो जाता है।

जैसे, एक + एक = एकैक, जल + ओघ=जलौघ।

## व्यंजन सन्धि

जब दो शब्दों के अन्त में व्यञ्जन आपस में सन्धि करते हैं तो वहाँ **व्यञ्जन सन्धि** होती है।

१. यदि किसी शब्द के अन्त में क् या च् या ट् हो और बाद में किसी वर्ग का तृतीय या चतुर्थ अक्षर या ह या कोई स्वर आवे तो क् च् ट् प् अपने ही वर्ग के तृतीय अक्षर में बदल जायेंगे। जैसे दिक् + गज = दिग्गज। षट् + आनन = षडानन।

२. यदि क् च् ट् त् प् के आगे किसी वर्ग का पंचम अक्षर आवे तो क् च् ट् त् प् अपने ही वर्ग के पंचम अक्षर में बदल जायेंगे। वाक् + मात्र = वाङ्मात्र।

३. यदि स् अथवा तवर्ग के किसी वर्ण के पश्चात् श् अथवा चवर्ग का कोई वर्ण हो तो स् का श् और तवर्ग का चवर्ग हो जाता है। जैसे—पयस् + शान्त = पयश्शान्त। सत् + चित = सच्चित।

४. यदि किसी वर्ग के चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय अथवा प्रथम वर्ण के पश्चात् कोई स्वर आवे तो उस वर्ग का तृतीय वर्ण हो जाता है। जैसे, वाक् + ईश = वागीश।

५. यदि स् अथवा तवर्ग के किसी अक्षर के पश्चात् ष् अथवा टवर्ग का कोई वर्ण हो तो स् का ष् और तवर्ग का टवर्ग हो जाता है। जैसे, ओजस् + टंकार = ओजष्टंकार। तत् + टीका = तट्टीका।

६. यदि किसी शब्द के अन्त में त् हो और बाद में दूसरे शब्द के आरंभ में च् या छ्, ज् या झ्, ट या ठ्, ड् या ढ्, न् या म् और ल्, श्, ह आवें तो सबके स्थान में क्रमशः च्, ज्, ट्,

ड् , न् , ल् , च्छ और द्ध होंगे। जैसे, उत् + ज्वल = उज्ज्वल। उत् + डयन = उड्डयन, तत् + हित = तद्धित।

७. यदि किसी शब्द के अन्त में अनुस्वार हो और बाद में कोई स्वर हो तो अनुस्वार का म् हो जाता है। जैसे, सं + आचार = समाचार। सं + ऋद्धि = समृद्धि।

## विसर्ग सन्धि

विसर्ग का चिन्ह ( : ) है।

जहाँ विसर्ग के उपरोक्त चिन्ह के साथ कोई सन्धि हो तो उसे **विसर्ग सन्धि** कहते हैं।

१. यदि विसर्ग के बाद पाँचों वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पंचम अक्षर या य र ल व ह आवें तो विसर्ग के स्थान में ओ हो जाता है जैसे = मनः + हर = मनोहर, यशः + गान = यशोगान। प्रथम, द्वितीय अक्षर के आने पर कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

२. यदि विसर्ग के बाद च् या छ् , ट् या ठ् , त् या थ् हो तो विसर्ग के स्थान में च् या छ् के पूर्व श् , ट् या ठ् के पूर्व ष् और त् या थ् के पूर्व स् जोड़ दिया जाता है। जैसे, पुरः + चरण = पुरश्चरण। धनुः + टंकार = धनुष्टंकार। अन्तः + तल = अन्तस्तल।

३. यदि विसर्ग के बाद श् या स् आवे तो दो रूप बनता है, एक रूप में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता, दूसरे में विसर्ग के स्थान में 'श्' और 'स्' रख दिया जाता है। जैसे पुनः + शब्द = पुनश्शब्द। पुरः + सर = पुरस्सर।

४. यदि विसर्ग के पूर्व अ, आ के अतिरिक्त और कोई स्वर हो और विसर्ग के परे कोई स्वर या पाँचों वर्गों के तृतीय, चतुथ, पंचम अक्षर या य व ल ह हों तो विसर्ग के स्थान में र् हो जाता है। जैसे, निः + अर्थ = निरर्थ। प्रादुः + भाव = प्रादुर्भाव।

५. यदि विसर्ग के पूर्व अ, आ के अतिरिक्त और कोई स्वर हो और विसर्ग के परे र हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है और उसके पूर्व का स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे। निः + रोग = नीरोग। निः + रस = नीरस।

६. यदि विसर्ग के बाद क् ख् प् फ् ट् ठ् आवें तो विसर्ग का ष् हो जाता है। जैसे निः + कारण = निष्कारण।

यदि किसी शब्द के अन्त में र् हो और बादवाले शब्द के प्रारंभ में भी र् हो तो र के पहले का स्वर दीर्घ हो जाता है और र् का लोप हो जाता है। जैसे अन्तर् + राष्ट्रिय = अन्तराष्ट्रिय।

सूचना—पर आजकल प्रयोग में इसके स्थान पर अशुद्ध शब्द चल पड़ा है।

## कर्त्ता के 'ने' चिन्ह का प्रयोग

(१) अकर्मक क्रियाओं को छोड़ कर केवल सकर्मक क्रियाओं में, अपूर्ण भूत को छोड़कर शेष भूत कालों में कर्त्ता के साथ 'ने' का चिन्ह प्रयुक्त होता है अन्य स्थानों में नहीं आता।

(२) सकर्मक क्रिया, भूलना, लाना, बोलना के साथ कर्त्ता में 'ने' का प्रयोग नहीं होता। जैसे, मैं घर जाना भूल गया। मैं एक किताब लाया हूँ।

जब प्रधान सकर्मक क्रिया के साथ, सहायक क्रियाएँ सकना, चुकना, जाना, पड़ना, उठना, बैठना, रहना, लगना, पाना लगा कर संयुक्त क्रिया बनती है, तो कर्त्ता में 'ने' का प्रयोग नहीं होता। जैसे, मैं भोजन कर चुका।

जब प्रधान सकर्मक क्रियाओं के साथ सहायक क्रिया डालना, लेना, देना, करना, चाहना लगाकर संयुक्त क्रिया बनती है तो ने का प्रयोग कर्त्ता के साथ होता है।

## क्रिया का रूप

१–जब कर्त्ता का चिन्ह 'ने' रहता है और कर्म का चिन्ह 'को' तो क्रिया सदा पुल्लिङ्ग एकवचन में रहती है।

२–जब 'ने' तो रहता है, परन्तु 'को' नहीं तो क्रिया कर्म के अनुसार होगी।

३–यदि एक ही लिङ्गवाले कई कर्त्ता एक क्रिया में हों तो क्रिया उसी लिङ्ग की बहुवचनान्त होगी।

४–यदि कर्त्ताओं के लिङ्ग भिन्न भिन्न हों तो क्रिया अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होगी। जैसे, घोड़ा और गाय घास चर रही है। या गाय और घोड़ा घास चर रहा है।

५–यदि कर्त्ताओं के बीच में *या* और *अथवा* लगा है तो एक का ही बोध होता है और क्रिया का लिङ्ग, वचन अन्तिम कर्ता के अनुसार होता है। जैसे, मैं या तुम रहोगे।

६–आदर के प्रयोग में क्रिया बहुवचनान्त होगी। जैसे, आप तो अवश्य आवेंगे।

## कारकों का प्रयोग

यदि किसी वाक्य में एक ही कारकवाले कई शब्द हों तो साधारणतः अन्तिम शब्द में विभक्ति लगाई जाती है। परन्तु जहाँ जोर देना पड़ता है वहाँ प्रत्येक जगह लग सकती है। सर्वनामों में प्रत्येक में विभक्ति लगती है। जैसे कृष्ण, राम और श्याम ने किताबें खरीद लीं। मुझसे तुझसे क्या झगड़ा ?

## शुद्ध हिन्दी

संस्कृत भाषा के जो शब्द हिन्दी में बिगड़े रूप में प्रयुक्त होते हैं वे तद्भव कहलाते हैं और जो ज्यों के त्यों रख लिये गये हैं वे तत्सम कहलाते हैं। हिन्दी में तद्भव शब्दों का बाहुल्य है।

इसके अतिरिक्त **अर्द्ध तत्सम** भी हैं—यानी संस्कृत से प्राकृत में आने पर इनके रूपों में परिवर्तन तो हुआ, पर हिन्दी में नहीं बदला। जैसे, दैव, रात आदि शब्द।

अनुकरण के आधार पर भी शब्द बने हैं। उन्हें **अनुकृत** कहते हैं, जैसे, खट-खट से खटखटाना। विदेशी भाषा के भी बहुत से शब्द हिन्दी में अपने ढंग के हो गए हैं। जैसे, अरबी शरक से सड़क, अंग्रेजी पैन्टलून से पतलून या प्लैटून से पलटन, स्टेशन से टेसन। कोई कोई शब्द प्रयोगानुसार तत्सम और तद्भव होता है। जैसे 'कलरव' में कल **तत्सम** है, पर आनेवाले कल के लिये प्रयुक्त होने पर **तद्भव** हो जाता है, क्योंकि तब उसका सम्बन्ध **कल्य** से हो जाता है। तत्सम शब्द जिस मूल भाषा से आये हैं अर्थ के सम्बन्ध में उसी पर आधारित हैं। कभी कभी मूल भाषा में प्रयुक्त वे सभी अर्थों का द्योतन करते हैं और कभी एक या दो का। तद्भव शब्द के साथ इस प्रकार की कोई बात नहीं है।

'कंगाल' शब्द 'कंकाल' से बना है। 'कंकाल' का मतलब ठठरी होता है, पर हिन्दी में यह दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होता है।

**तत्सम** शब्द के अनेक रूप हम कर लेते हैं। जैसे, बनना, बनवाना, बनाव, बनावट, बनवाई आदि।

जब कोई शब्द बोला जाय या लिखा जाय तो उसमें रूप का ध्यान रखना चाहिए।

'पाना' क्रिया का रूप भूतकाल में पाये के साथ और भविष्यत् में पावे के साथ लिखना चाहिए। जैसे शुद्ध रूप—हमने सौ रुपये पाये थे, वह सौ रुपये पावेगा। *'पावेगा'* की जगह *'पायेगा'* गलत प्रयोग है।

अगर चिल्लाना की जगह चिचियाना का प्रयोग किया जाय तो ठीक नहीं होगा। इसी प्रकार सोना की जगह सूतना भी ठीक प्रयोग नहीं है।

प्रायः लोग शुद्ध शब्द लिखने में भूल करते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

| शुद्ध | अशुद्ध |
|---|---|
| वाद-विवाद | वादाविवाद |
| शाप | श्राप |
| अधीन | आधीन |
| आश्रय | प्रश्रय |

इसी प्रकार क्रोधित, कोपित, क्षोभित, आकर्षित, आदरित अशुद्ध प्रयोग हैं। इनके स्थान में, 'क्रुद्ध', 'कुपित', 'क्षुब्ध', आकृष्ट और 'आदृत' लिखना चाहिए।

कभी-कभी अज्ञानवश भाववाचक संज्ञाओं में लोग ता प्रत्यय लगा देते हैं। जैसे, साफल्यता, वैमनस्यता, ऐक्यता। इनके शुद्ध रूप, ऐक्य या एकता, सफलता या साफल्य और वैमनस्य हैं।

कुछ शब्द प्रयोग में गलत ही चल पड़ते हैं। जैसे, अछूतोद्धार, सजा-प्राप्त, नमूनार्थ। इस प्रकार के शब्दों का निर्माण नहीं करना चाहिए।

'कार्रवाई' की जगह कहीं-कहीं कार्यवाही भी लिख दिया जाता है। कार्यवाही का अर्थ कार्यवहन करनेवाला होता है। अतः इस प्रकार की भूलें नहीं करनी चाहिएँ। ठीक तो यह होगा कि जिस शब्द का अर्थ हम न जानें या जिसके बारे में शंका हो उसे प्रयोग में न लावें।

शब्दों के प्रयोग में घुमाव-फिराव न हो। अर्थ आसानी से समझ में आ जाय। एक ही अर्थ व्यक्त करनेवाले दो शब्द एक स्थान पर न आवें।

कहीं-कहीं व्यर्थ शब्दों के प्रयोग भी देखे जाते हैं। जैसे, उन्होंने अपनी किताब आप स्वयं पढ़कर सुनाई। यहाँ 'आप' और 'स्वयं'

एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं अतः एक ही होना चाहिए। इस प्रकार के कुछ और उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

| अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|
| सारे देश भर में यह बात फैल गई | —सारे देश में यह बात फैल गई। |
| सिवा आपको छोड़कर कोई ऐसी बात नहीं करता। | —आपको छोड़ कर कोई ऐसी बात नहीं करता। |
| इसके बाद फिर यह हुआ | —इसके बाद यह हुआ, या फिर यह हुआ। |
| थोड़ी देर बाद वे वापस लौट आये | —थोड़ी देर बाद वे लौट आये। |

शब्दों में आपस में मेल होना चाहिए, नहीं तो अर्थ दूसरा का दूसरा हो जायगा। अगर कोई कहे 'योरोप और एशिया में लड़ाई छिड़नेवाली है,' तो यह वाक्य संदिग्ध है।

**वाक्य अधूरे न हों।** जैसे, 'तुम्हारे भाई ने कल घर पर जो किया था, वही तुम भी यहाँ कर रहे हो'। इसके अन्तिम वाक्यांश में 'वही आज तुम भी यहाँ कर रहे हो' होना चाहिए।

**वाक्य स्पष्ट हो**—जैसे, प्रधानाध्यापक लड़के चुनेंगे। इस वाक्य में यह पता नहीं चलता कि प्रधानाध्यापक को लड़के चुनेंगें या प्रधानाध्यापक लड़कों को चुनेंगे।

**वाक्य के सब अंगों की संगति ठीक हो**—यदि कोई कहे कि 'आज तुमने अपनी नई चालाकी का नया नमूना दिख लाया है' तो ठीक नहीं। नई चालाकी का नमूना या चालाकी का नया नमूना होना चाहिए।

**वाक्य के अन्दर दो विरोधी बातें न हों**—जैसे, शायद यह काम ज़रूर हो जायगा। यहाँ शायद और ज़रूर दोनों शब्द एक साथ नहीं रखने चाहिएँ। इसी प्रकार 'वे

बिल्कुल चुप हैं और कह रहे हैं कि हम इस झगड़े में नहीं पड़ेंगे।' यहाँ पर 'चुप' और 'कहना' दोनों एक साथ कैसे हो सकता है ?

**शब्द सरल और सीधे होने चाहिएँ**—जैसे, श्रवणेन्द्रिय की जगह कान ही कहना अच्छा है। बोलते या लिखते समय श्रोता या पाठक की योग्यता का ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। कहावत प्रसिद्ध है कि 'आब आब कर मर गये खटिया तर रहा पानी'। एक आदमी प्यासा था पानी के स्थान पर आब, आब चिल्लाता रहा। लोगों ने इसे न समझा और वह प्यासा ही मर गया। ठंढ बर्फ और गरम आग लिखना ठीक नहीं, क्योंकि ये दोनों प्रयोग व्यर्थ हैं। 'मैं प्रातःकाल के समय वहाँ गया।' यहाँ काल और समय एक ही अर्थ रखते हैं। अतः एक ही होना चाहिए।

इसी प्रकार अन्य प्रयोगों पर भी ध्यान देना चाहिए। जैसे, वे लोग परस्पर एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।' यहाँ परस्पर और एक दूसरे को एकार्थवाची हैं अतः दोनों नहीं रखने चाहिएँ।

'कृपया आप ही बताने का अनुग्रह करें।' यहाँ कृपया के बाद अनुग्रह नहीं लिखना चाहिए। एक से ही काम चल जायगा।

'यह ऐसा कार्य है जो मुझसे संभव नहीं हो सकता'। यहाँ संभव और सकना एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं, अतः एक ही रखा जायगा।

'हमारे यहाँ सब चीजें किफायत के साथ मिलती हैं।' यहाँ 'के साथ' के स्थान में से होना चाहिए। 'हमारे यहाँ सब चीजें किफायत से मिलती हैं।

'हमें उनके द्वारा विदित हुआ' के स्थान में 'हमें उनसे विदित हुआ' अधिक उपयुक्त है। 'आप चाहे यहाँ रहें और चाहे वहाँ जायँ' इसमें और व्यर्थ प्रयोग है।

**शब्दों को मनमाने ढंग पर नहीं रखना चाहिए।** जैसे 'आप जहाँ तक हो सके इस बात का प्रयत्न करें' वाक्य ठीक नहीं है। 'जहाँ तक हो सके आप इस बात का प्रयत्न करें', यह शुद्ध व्यवहार है। यथास्थान अनुकूल शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। 'एक दिन बुड्ढे' होने पर वे कुएँ पर बैठे थे। इस वाक्य में 'बुड्ढे होने पर' के स्थान में बुढ़ापे में होना चाहिए।

'आपने एक छात्रों की सभा में भाषण किया।' यहाँ 'सभा' के पूर्व एक होना चाहिए अन्यथा दूसरा ही अर्थ हो जायगा।

'आप भोजन कर चुके क्या'? यह प्रयोग गलत है। क्या आप भोजन कर चुके? यही सही है। 'उसने अपना काम जल्दी खतम कर दिया' और 'अपना काम उसने जल्दी खतम कर दिया' इन दोनों वाक्यों के दो अर्थ हो जाते हैं।

पहले वाक्य का अर्थ होगा, औरों की अपेक्षा उसने अपना काम जल्दी खतम कर दिया। दूसरे वाक्य से मतलब निकलता है कि उसके पास और लोगों के भी काम थे, पर उसने अपना काम तो जल्दी खतम कर दिया, पर दूसरों के काम में देर की।

**साहबी हिन्दी के प्रयोग से भी बचना चाहिए।**

'मैं जाना माँगता है' यह वाक्य बेढंगा है। अंग्रेजी के पठन-पाठन से इस प्रकार के दोष हिन्दी में आगए हैं। जैसे अंग्रेजी के ढंग का यह वाक्य देखिये। 'उन्होंने शत्रुओं से हथियार रख देने की माँग की।' इसके स्थान पर होना चाहिए--'उन्होंने शत्रुओं से हथियार रख देने को कहा।' 'इस दिशा में बहुत कुछ कार्य हो चुका है' यहाँ *'दिशा'* के स्थान में *'विषय'* होना चाहिए।

'न केवल यही बल्कि वे वहाँ से चले आये।' यहाँ 'यही नहीं बल्कि वे भी वहाँ से चले आये' प्रयोग ठीक होगा। 'यह कार्य उन्हीं के हाथों

पूरा होगा, ऐसी हमें आशा है'। इसके स्थान पर होना चाहिए—हमें आशा है कि यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा।

निम्नलिखित वाक्य उर्दू के ढंग के हैं :—
हम उनका नाम आदर के *साथ* लेते हैं।
वे धैर्य के *साथ* अपना काम कर रहे हैं।
उन्होंने सरलता के *साथ* उत्तर दिया।

इन वाक्यों में 'के *साथ*' उर्दू का अनुकरण है। इन स्थानों में 'पूर्वक' रखना चाहिए।

इसी प्रकार 'के द्वारा' का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे, यह बीमारी देश में लड़ाई के द्वारा फैली थी।' लड़ाई के द्वारा लोगों ने खूब धन कमाया।' इनका शुद्ध रूप इस प्रकार है। 'देश में यह बीमारी लड़ाई के कारण फैली,' 'लड़ाई में लोगों ने खूब धन कमाया'।

'उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया' यह वाक्य **अंग्रजी के ढंग** का है। **हिन्दी का ढंग** होगा 'उस पर मुकदमा चलाया गया।'

**स्थानिक प्रयोग** प्रत्येक प्रान्त के अलग-अलग होते हैं। हिन्दी में उनका व्यवहार ठीक नहीं लगता। बिहार में लोग कहते हैं, वे दोनों शाम टहलने जाते हैं। 'शाम' का मतलब 'संध्या' होता है। यहाँ 'शाम' के स्थान में 'समय' रखना चाहिए। पूर्व इसके कि कोई हँसे, हम स्वयं हंस पड़ते हैं' यह वाक्य उर्दू के ढंग का है।

**वाक्यों की बनावट**—वाक्य चुस्त और गठे हों, जिससे अर्थ ठीक-ठीक जाना जाय। वाक्य जहाँ तक हो सके छोटे हों। एक ही वाक्य में बहुत सी बातें नहीं भरनी चाहिएँ। वाक्य का आरम्भ, मध्य और अंत एक-सा हो। जैसे—

'इतने में दूसरी ओर से कुछ आदमी आ पहुँचे और उपद्रव की चेष्टा की'। यहाँ '*और*' के बाद '*उन्होंने*' रखना चाहिए, क्योंकि

पहले अंश में अकर्मक क्रिया आई है तथा दूसरे में सकर्मक और दोनों का कर्त्ता 'आदमी' एक ही रूप में है।

'वहाँ जंगली फल, और झरने का पानी पीकर हम आगे बढ़े'। यहाँ 'पानी' के बाद 'पीकर' पूर्वकालिक क्रिया तो है, 'फल' के बाद उससे सम्बन्ध रखनेवाली कोई क्रिया नहीं है अतः वाक्य अशुद्ध है।

कुछ उदाहरण और देखिये।

यह कह कर मैंने जितने आदमी दुकान में बैठे थे उन सबको देखा' इसका ठीक रूप होगा 'यह कह कर मैंने उन सब आदमियों को देखा जो उस दुकान पर बैठे थे'।

'रास्ते में लेटर-बक्स में मैंने जो पत्र लिखा था छोड़ दिया'। यहाँ होना चाहिए 'मैंने जो पत्र लिखा था रास्ते में लेटर-बक्स में छोड़ दिया'।

'स्वतंत्रता के साथ इस देश की गरीबी का अंत हो जायगा' यह वाक्य ठीक नहीं है। लिखनेवाला कहना चाहता है कि स्वतंत्रता मिलने पर इस देश की गरीबी हट जावेगी। इसलिए इसे इस प्रकार लिखना चाहिए। 'स्वतंत्रता मिलते ही इस देश की गरीबी का अंत हो जायगा।' 'चारों ओर से चल रही हवा के झोंकों से पेड़ हिल रहे थे' यहाँ चल रही के स्थान में 'चलती हुई' या 'चलनेवाली' होना चाहिए। इतने में कोई चमककर आकर धक्का देकर निकल गया' इस वाक्य में 'कर' का प्रयोग कई बार करने से भद्दापन आ गया है अतः इस प्रकार लिखना चाहिए :—

'इतने में कोई चमक कर आया और धक्का देकर निकल गया।'

इस प्रकार के प्रयोगों से विद्यार्थियों को बचना चाहिए।

## वचन

वचन के कारण किसी भी वाक्य में संज्ञा, क्रिया, विशेषण और क्रियाविशेषण के रूप बदल जाते हैं। जैसे 'हमने बारात में

एक घोड़ा देखा था,' 'हमने बारात में दस घोड़े देखे थे' दूसरे वाक्य में 'घोड़ा' के स्थान में 'घोड़े' और 'देखा' के स्थान में 'देखे थे' हो गया है।

यदि संकेत से एक ही व्यक्ति से सम्बन्ध है तो बहुवचन करना ठीक नहीं होता। जैसे, राजा साहब बजरों पर सवार थे। राजा साहब एक ही साथ कई बजरों पर सवार नहीं हो सकते। अतः वाक्य अशुद्ध है। निम्नलिखित प्रयोगों को ध्यान से देखियेः—

| शुद्ध | अशुद्ध |
|---|---|
| उन्होंने गोलों और तोपों से आक्रमण किया। | उन्होंने गोले और तोपों से आक्रमण किया। |
| वहाँ मुझसे और उससे क्रमशः निम्नलिखित बातें हुईं। | वहाँ मुझसे और उससे क्रमशः निम्नलिखित बात हुई। |
| सभी श्रेणियों के लोग वहाँ आए थे। | सभी श्रेणी के लोग वहाँ आए थे। |
| मेरे बहुत से विचारों को लोग व्यर्थ के समझते हैं। | मेरे बहुत से विचारों को लोग व्यर्थ का समझते हैं। |

यदि वाक्य में कई संज्ञाएँ एक साथ आवें और अर्थ के विचार से सब संज्ञाएँ एक ही तरह की हों तो उन संज्ञाओं के रूप एक से होने चाहिएँ। जैसे, उन्होंने बैल, घोड़े और हाथियों के झुण्ड का व्यापार किया' जिस प्रकार व्यापार के लिए बहुत से हाथी और घोड़े आवश्यक हैं उसी प्रकार बहुत से बैल भी, अतः 'बैल' के स्थान में 'बैलों' होना चाहिए।

'पैर न उठना' मुहावरे का प्रयोग कभी-कभी लोग गलत कर देते हैं। जैसे 'मैं तो बहुत प्रयत्न करता था पर मेरे पैर ही नहीं उठते थे' यहाँ होना चाहिए 'मेरा पैर ही नहीं उठता था' क्योंकि किसी के

दोनों पैर एक ही साथ नहीं उठते। इसी प्रकार 'पैर निकाले' की जगह 'पैर निकालना' लिखना चाहिए।

दर्शन, प्राण, हस्ताक्षर और आँसू बहुवचन हैं।

अत: 'मैं आपका कल दर्शन करूँगा' अशुद्ध है, 'मैं कल आपके दर्शन करूँगा' यह शुद्ध है। 'अनेक' के स्थान में 'अनेकों' गलत प्रयोग है। कागज का बहुवचन हिन्दी में कागज होता है, कागजात नहीं।

## लिङ्ग

हिन्दी में लिङ्ग का ज्ञान करना आसान नहीं है। सुविधा के लिए कुछ बातें मान ली गई हैं।

कौआ, खटमल, मच्छर, कछुआ पुल्लिङ्ग माने गये हैं। चील, मक्खी, मैना, गिलहरी स्त्रीलिङ्ग। यद्यपि इनमें भी पुरुष जाति के लोग हैं पर हम इसके चक्कर में नहीं पड़ते। परन्तु जड़पदार्थों तथा भाववाचक संज्ञाओं के क्षेत्र में यह कठिनाई और बढ़ जाती है।

शब्द के लिङ्ग का निर्णय दो बातों से होता है, एक तो उसके रूप से और दूसरे अर्थ से। कपड़ा, पैसा, भीड़, कट्टरपन, समझौता आदि शब्दों में पुरुष और स्त्री का कोई भेद नहीं है। जिन प्राणियों में स्त्री या पुरुष का भेद निश्चित या प्रत्यक्ष होता है, उनका लिङ्ग उनके अर्थ के आधार पर निश्चित होता है। जैसे, लड़का से लड़की।

संस्कृत से आए हुए शब्दों का लिङ्ग प्राय: संस्कृत के आधार पर है। कुछ ही अपवाद हैं। अग्नि, आत्मा, और पवन संस्कृत में तो हैं पुल्लिंग, पर हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग माने जाते हैं।

'तारा' 'देवता' संस्कृत में स्त्रीलिङ्ग हिन्दी में पुल्लिङ्ग हो जाते

है। इसी प्रकार 'विन्दु' और 'तन्तु' संस्कृत में पुल्लिङ्ग हैं, पर इनसे बने शब्द बूँद और ताँत हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग माने जाते हैं।

तद्भव शब्दों का लिङ्ग-विचार हिन्दी में इस प्रकार है:—

आकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग और ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग।

जैसे—कपड़ा, बाजरा, चमड़ा, उठना, बैठना और भाव-वाचक संज्ञाएँ पुल्लिङ्ग हैं।

रोटी, टोपी, मिट्टी, गर्मी, सर्दी, अमीरी, उदासी, तैयारी, स्त्री-लिङ्ग हैं।

संस्कृत के तत्सम शब्द इस नियम के अपवाद हैं। उनमें आकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे, दया, माया, लज्जा, अजा आदि। अरबी फारसी के कुछ आकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग और कुछ स्त्रीलिङ्ग हैं। जैसे, हवा, सजा, दवा स्त्रीलिङ्ग। रोजा, तकाजा, पुल्लिङ्ग हैं।

जिन भाववाचक संज्ञाओं के अन्त में 'त्व' हो वे पुल्लिङ्ग और जिनके अंत में 'वट' या 'हट' हो वे स्त्रीलिङ्ग होती हैं। जैसे, लघुत्व, गुरुत्व पुल्लिङ्ग तथा सजावट घबराहट स्त्रीलिङ्ग हैं।

जीव-जन्तुओं का लिङ्ग-निर्णय 'नर' या 'मादा' लगा कर होता है। जैसे 'नर भेड़िया' या 'मादा भेड़िया'।

विशेषण भी लिङ्ग के अनुसार, हिन्दी में बदलते हैं। जैसे, 'लम्बा आदमी' लम्बी औरत', पर कुछ विशेषण दोनों लिङ्गों में एक ही रूप रखते हैं। जैसे, बढ़िया मकान। बढ़िया रोटी। पर 'सा' लगाने से केवल पुल्लिङ्ग और 'सी' से केवल स्त्रीलिङ्ग का बोध होगा। जैसे, 'बढ़िया-सा खिलौना' और 'बढ़िया-सी किताब'।

सुखी, श्रेष्ठ, प्रथम, द्वितीय आदि विशेषणों का रूप दोनों लिङ्गों में समान होता है।

## शब्द-रचना

कुछ शब्द उपसर्गों की सहायता से बनते हैं।

उपसर्ग निम्नलिखित हैं—

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि और उप।

**प्र**—प्रबल, प्रमुख, प्रलोभन, प्रशान्त, प्रकृष्ट।

**परा**—पराभूत, पराभव, परागत, पराजय, परायण।

**अप**—अपमान, अपराध, अपकार।

**सम्**—संग्रह, सम्मेलन, संगति, संसार।

**अनु**—अनुगामी, अनुसार, अनुहार, अनुकूल।

**अव**—अवलम्ब, अवसर, अवसान, अवगुण।

**निस्—निर्**- निश्चित, निर्बल, निर्दोष।

**दुस्—दुर्**—दुस्साहस, दुर्गति।

**वि**—विमुख, वियोग, विवाद, विचित्र।

**आ**—आजीवन, आमरण, आरंभ, आचरण।

**नि**—निडर, निबन्ध, निवेश।

**अधि**—अधिकार, अधिनायक, अधिपति।

**अपि**—अपितु

**अति**—अतिशय, अतिक्रमण, अत्यावश्यक।

**सु**—सुगति, सुकृति, सुमति।

**उत्**—उद्बोधन, उत्तम्भन, उच्चारण।

**अभि**—अभियान, अभिसार, अभिजात।

**प्रति**—प्रत्येक, प्रतिज्ञा, प्रतिकूल।

**परि**—परिचय, परिधान, परिपूर्ण।

**उप**—उपयोग, उपनाम, उपचार, उपदेश।

## प्रत्ययों के द्वारा बने शब्द

क्रिया से बननेवाले शब्द **कृदन्त** कहलाते हैं।
संज्ञा से बननेवाले **तद्धित** कहलाते हैं।

*तव्य, अनीय* और *त* प्रत्यय क्रियाओं में लगाकर शब्द बनाए जाते हैं। जैसे, कर्त्तव्य, करणीय, कार्य्य। क्त प्रत्यय से भी शब्द बनते हैं। जैसे 'कृ' से कृत, पठ से पठित। इन प्रत्ययों को कृदन्त प्रत्यय कहते हैं। जब संज्ञाओं में प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं तब उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

**अपत्यवाचक**—संतानों का नाम जब पिता के नाम से या वंश के नाम से बनाया जाता है। जैसे कुशिक का पुत्र कौशिक, द्रुपद की पुत्री द्रौपदी, पाण्डु के पुत्र पाण्डव। मत् और वत् प्रत्ययों के द्वारा जो शब्द बनते हैं वहाँ मत् के स्थान में मान और वत् के स्थान में वान् होता है। जैसे बुद्धिमान्, धनवान्, पुत्रवान्। स्त्रीलिङ्ग में इनसे बुद्धिमती, पुत्रवती रूप होगा।

इन प्रत्यय से—पाप से पापी—पापिनी।

धन + इन् = धनिन, धनी।

इत प्रत्यय—लज्जित, मण्डित, तृषित।

इक—दैहिक, भौतिक, दैविक, मौखिक। कहीं-कहीं स्वर की वृद्धि करते हैं। जैसे शिव से शैव, बुद्ध से बौद्ध।

**भाववाचक शब्द**—त्व, ता, पन, पा, वट, हट इसी से बनते हैं। जैसे गुरुत्व, लघुता, लड़कपन, बुढ़ापा, लिखावट, घबड़ाहट, गरिमा। त्व प्रत्यय से बने शब्द पुल्लिङ्ग, ता से स्त्रीलिङ्ग, इन से स्त्रीलिङ्ग, पा से पुल्लिङ्ग, पन से पुल्लिङ्ग होते हैं।

# दूसरा अध्याय

## कहावतें और मुहावरे

**अपनी करनी पार उतरनी**—( अपने कर्मों से ही उचित फल की प्राप्ति होती है ) जब विद्यार्थी ने परीक्षा में कम अंक पाए तो उसने गुरुजी से शिकायत की, किन्तु गुरुजी ने उत्तर दिया "मैं क्या जानूँ; अपनी करनी पार उतरनी।"

**अकेला चना क्या भाड़ फोड़ेगा ?** (अकेले कुछ नहीं हो सकता ) फुटबाल के मैच में जब हमारे कालेज के लड़के हार गए तो सब खिलाड़ी कप्तान को चिढ़ाने लगे, किन्तु उसने कहा, "मैं तो जी जान से खेला, पर क्या कभी अकेला चना भाड़ फोड़ेगा?"

**अरहर की टट्टी और गुजराती ताला**—( छोटी चीज के लिए बड़ा प्रबन्ध करना )—मोहन ने एक रुपये में धूप की ऐनक खरीदी और उसके लिए पाँच रुपये का सुन्दर डिब्बा। जब उसके मित्रों ने ऐनक और डिब्बा देखा तो कहने लगे—'वाह यार ! खूब रहा, अरहर की टट्टी गुजराती ताला का आदर्श तुम स्थापित कर रहे हो'।

**अपने घर पर कुत्ता भी शेर हो जाता है**—( अपने घर निर्बल भी बलवान हो जाता है )—शिवाजी ने तड़पते हुए औरङ्ग-जेब से उसके ही दरबार में कहा 'अपनी शान की डींग क्या हाँक रहे हो ? अपने घर पर कुत्ता भी शेर हो जाता है।'

**आम के आम गुठली के दाम**—( किसी वस्तु से दुगुना लाभ प्राप्त करना ) अमीर लोग अपने पुराने कपड़ों को भी बेंच कर कुछ पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार उन्हें आम के आम गुठली के दाम मिल जाते हैं।

**आम खाने हैं कि पेड़ गिनने**—(अपने मतलब से मतलब रखना)—पिता ने जब पुत्र को सुन्दर घड़ी प्रदान की तो उसने दाम पूछा। पिता ने उत्तर दिया कि तुम्हें आम खाने हैं कि पेड़ गिनने।

**आग लगे पर कुआँ खोदना**—( आपत्ति आने पर उसके निवारणार्थ प्रयत्न करना, पहले से व्यवस्था न करना )—जब परीक्षा के दस दिन बाकी रह गए तब मोहन ने पाठ्य पुस्तकों की ओर ध्यान दिया। उसका यह परीक्षा पास करने का यत्न आग लगने पर कुआँ खोदने के समान था।

**आँख फूटी पीर गई**—(झगड़ा दूर हुआ)—हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अग्नि में डाल कर सोचा आँख फूटी पीर गई, पर जब वह जीता-जागता निकल आया तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

**आगे नाथ न पीछे पगहा**—(अकेले होना)—भाई तुम्हारे आगे नाथ न पीछे पगहा है फिर भी तुम मर-मरकर रुपया किसके लिए पैदा करते हो?

**आग लगाकर पानी को दौड़ना**—(झगड़ा लगाकर मेल कराने का प्रयत्न करना)—मोहन ने हरी के पिता से उसकी शिकायत की; जब हरी के पिता हरी को मारने लगे तब मोहन उन्हें मना करने लगा। तब हरी की माता कहने लगी, 'जाओ हमारे घर के बाहर, तुम तो आग लगाकर पानी को दौड़ते हो।'

**आँख का अन्धा नाम नैनसुख**—(जैसा नाम वैसा गुण न होना)—विद्याधर बहुत ही कमजोर लड़का था; कक्षा में सब उसकी हँसी यह कहकर करते थे कि आँख का अन्धा नाम नैनसुख।

**आँख के अन्धे गाँठ के पूरे**—( कम अक्लवाला धनवान )

गिरजा ने ऊँचे भाव में फलोंकी टोकरी खरीदी और उसमें अधिकांश फल सड़े निकल गए। तब उसके पिता ने कहा—'तुम तो आँख के अन्धे गाँठ के पूरे निकले।'

**उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे**—( अपराधी अपराध का पता लगानेवाले को दोषी ठहरावे )—तब उस आदमी ने कहा वाह साहब, उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।

**अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग**— बहुत विभिन्नता होना)— भारत में गणतंत्र की सफलता में सन्देह है, क्योंकि यहाँ पर अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग है।

**अशर्फियों पर लूट कोयलों पर मुहर**—( बड़े-बड़े खर्चोंपर ध्यान न देकर छोटे-छोटे में बचत करना )—रामदास सेठ ऐश-आराम में हजारों रुपया खर्च कर देते, पर भोजनालय के लिये नमक तौलकर देते थे। उनके भण्डारी ने कहा—"सेठ जी! अशर्फियों की लूट और कोयलोंपर मुहर करके आप कितना बचा लेंगे?"

**अवसर चूकी डोमनी, गावे ताल बेताल**—(समय निकल जाने पर किसी बात का प्रभाव जाता रहता है)—वादविवाद प्रतियोगिता में कृष्णजी पहले गड़बड़ा गये जिससे निर्णायकों ने उन्हें रद्द समझ लिया। बादमें उन्होंने अपने को सँभालने का प्रयत्न किया, पर अवसर चूकी डोमनी गावे ताल बेताल की कहावत सिद्ध कर दी।

**अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना**—(अपनी बड़ाई करना)—अंगद ने रावण से कहा—'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू कौन नहीं बनता? जब दूसरे उसके गुण की तारीफ करें तभी वह गुणवान कहलाता है।'

**आसमान से गिरा खजूरपर अटका**—( देनेवाले ने तो

दिया पर बीचवाले ने हड़प लिया)--चपरासी की तनख्वाह मिल के डाइरेक्टरों ने बढ़ा दी थी, पर मैनेजर साहब ने नामंजूर कर दी तो चपरासी कहने लगा 'हजूर ! क्या आसमान से गिरा तो खजूर पर अटक गया ?'

**आगे दौड़ पीछे चौड़**—( पिछला काम बिगड़ता जाये, आगे नया होता जाये )—हुमायूँ की विजय, आगे दौड़ पीछे चौड़ के समान थी।

**इन तिलों में तेल नहीं**—( इनसे काम न निकलेगा )—देहाती ने जब गिड़गिड़ा कर कहा "पेशकार साहब. दो दिनों से भूखा हूँ आपको दो रुपये कहाँ से दूँ ?" तब पेशकार साहब समझ गए कि इन तिलों में तेल नहीं है।

**ईद का चाँद होना**—(बहुत कम दिखलाई पड़ना)-हरी के मित्र गोपाल ने हरी से कहा—'भाई तुम तो आजकल ईद के चाँद हो रहे हो, महीनों से लापता हो।'

**इधर की दुनियाँ उधर होना**—( असंभव कार्य होना )—युधिष्ठिर ने कहा "चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय मैं सत्य को नहीं छोड़ूँगा।"

**इधर के रहे न उधर के रहे**—(किसी काम का न होना)-अँगरेजी सभ्यता में रंग जानेवाले न इधर के रहते हैं न उधर के।

**अंगुली पकड़कर पहुँचा पकड़ना**—(थोड़ा सहारा पाकर पूरा अधिकार जमा लेना )-बंगाल लेने के बाद अंगरेजों ने धीरे धीरे सारे भारत पर अधिकार जमा लिया, इस तरह उन्होंने अंगुली पकड़ कर पहुँचा पकड़ा।

**ऊँट के मुँह में जीरा**—( बड़े पेट के लिये थोड़ी मात्रा में कुछ वस्तु देना)—चौबे जी जब भोजन करने बैठे तो उनको चार

लड्डुओं का ही जलपान कराया गया। बेचारे कहने लगे "अरे भाई ऊँट के मुँह में जीरा क्यों दे रहे हो ?"

**ऊँट किस करवट बैठे**—(अनिश्चित स्थिति)—न्यायाधीश की अपनी तरफ बेरुखी देख कर गरीबदास कहने लगे, 'भाई! मुकदमे के अंत का कुछ पता नहीं लगता, देखो ऊँट किस करवट बैठता है !'

**ऊँची दुकान फीका पकवान**—( दिखावट बहुत पर वास्तविकता कुछ नहीं)—मैंने सेठ नारायणदास की कोठी से कुछ साड़ियां खरीदीं जो कुछ अच्छी नहीं थीं। जब हरी ने देखा तो कहने लगा, 'मित्र ऊँची दुकान फीकी पकवान'।

**ऊँट की चोरी निहुरे निहुरे**—(बड़ा काम किसी से नहीं छिपता)—गोबरधनदास पहले सिगरेट पीता था, फिर हुक्का भी पीने लगा जिसे सब लोग जान गए। कहीं ऊँट की चोरी भी निहुरे निहुरे होती है।

**उधार खाए बैठे हैं**—( तैयार बैठे हैं)—जर्मनी फ्रान्स को लेने के लिये उधार खाये बैठा था।

**उतर गई लोई तो क्या करेगा कोई ?**—( निर्लज्ज का कोई कुछ नहीं कर सकता)—बहुत से लड़के पढ़-लिख कर उद्धत हो जाते हैं और हर बात में बड़ों को नीचा दिखाते हैं। सच है, उतर गई लोई तो क्या करेगा कोई ?

**ऊँट बहै गदहा थाह ले**—( असंभव बात करना)—कल्लू अपनी कक्षा में सबसे कमजोर था, गुरुजी ने एक बात पूछी, किसी ने उत्तर न दिया। कल्लू ने उत्तर देने को हाथ उठाया, इतने में मोहन बोल उठा—ऊँट बहै गदहा थाह ले।

**उठी पैंठ आठवें दिन लगती है**—( खोया हुआ अवसर कठिनाई से मिलता है)—जित्तन सेवक से कहने लगा कि सेठजी जो

कुछ तुम्हारी मजदूरी दे रहे हैं ले लो, नहीं तो उठी पैंठ आठवें दिन लगेगी।

**ऊधो का देना न माधो का लेना**—(किसी से कुछ सम्बन्ध न रखना)—दारोगा जी जब बिगड़ कर हरी से पूछने लगे 'बतलाओ क्या मामला है'? तो हरी कहने लगा—'हुजूर हम तो न ऊधो का देना जानते हैं न माधो का लेना।'

**ऊँट के गले में बिल्ली**—(बेजोड़ बात करना)-बहुत से लोग धन के लोभ से अपनी लड़कियों को बुड्ढों से ब्याह देते हैं। इस प्रकार वे ऊँट के गले में बिल्ली बाँधते हैं।

**एक हाथ से ताली नहीं बजती**—(एक ओर से लड़ाई नहीं होती)—मोहन कहने लगा, मास्टर साहब मैं निर्दोष हूँ, जीवन ने ही मुझे मारा है। जीवन ने उत्तर दिया-मास्टर साहब! आप तो जानते ही हैं, कहीं एक हाथ से भी ताली बजती है?

**एक अनार सौ बीमार**—(एक वस्तु के बहुत से ग्राहक होना)-भूगोल की पुस्तक स्कूल में एक ही थी, पर बहुत से विद्यार्थी लेना चाहते थे। मास्टर साहब कहने लगे कि मैं किसे दूँ किसे न दूँ? यहाँ तो एक अनार सौ बीमार हैं।

**एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं**—(एक ही तरह के हैं)—कचहरी-वाले घूस लेने में पुलिसवालों से कम नहीं हैं। सब एक-ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं।

**एक लाठी से सबको हाँकना**—(अच्छे बुरे सबको एक-ही तरह समझना) मास्टर साहब जब कक्षा में आये तो बड़ा शोर हो रहा था। उन्होंने सबको खड़ा कर दिया। रमेश ने कहा—मास्टर जी, मैं तो शान्त बैठा था, आपने मुझे भी खड़ा कर दिया। एक लाठी से सबको नहीं हाँकना चाहिए।

**ओस के चाटे प्यास नहीं बुझती**—(अधिक आवश्यकता की पूर्ति थोड़ी प्राप्ति से नहीं होती)—मोहन भूगोल के प्रश्न में बीस अंकों से फेल हो रहा था, जब उसे मालूम हुआ तो मास्टर साहब से कहने लगा कृपा करके कुछ बढ़ा दीजिए। मास्टर साहब बोले, 'भाई तुम्हारा बीस अङ्क कम है, कुछ बढ़ाने से काम न चलेगा। कहीं ओस के चाटे प्यास बुझती है।'

**ओछा घड़ा छलके बड़ा**—( नीच पुरुष बहुत घमंड करते हैं ) रावण जब बड़बड़ाने लगा तो अंगद ने कहा सच है ओछा घड़ा छलके बड़ा।

**अन्धों में काना राजा**—(अयोग्यों में कुछ जानकार ही बड़ा माना जाता है) लल्लू अपने गाँव में अकेला बी० ए० पास था। सब लोग बड़ा सम्मान करते थे। हरी को जब यह मालूम हुआ तो कहने लगा 'अन्धों में काना राजा बने हो, कहीं मित्र, शहर में होते तो गली-गली मारे-मारे फिरते, कोई पूछता तक नहीं।'

**अन्धे के हाथ बटेर लगना**—(अयोग्य को कोई बड़ी वस्तु मिल जाना)—अंग्रेजी का प्रश्न-पत्र बहुत ही सरल देख कर बहुत से विद्यार्थी कहने लगे 'आज अंधों के हाथ बटेर लग गई है।'

**काठ की हाँड़ी आग पर एक ही बार चढ़ती है**—(धोखे से काम एक ही बार लिया जा सकता है)—यदि भारतीय व्यापारी यह समझते कि काठ की हाँड़ी एक ही बार चढ़ती है तो शायद अपने माल में खोटा माल मिलाकर व्यापार न करते।

**कोयले की दलाली में हाथ काले**—( बुरे काम में हाथ देने से हानि ही होती है ) टेकचन्द ने हीरालाल के साथ लाभ करने की दृष्टि से साझा किया था, पर हीरालाल इतना चतुर निकला कि टेकचन्द का मूल भी हड़प गया। बेचारा टेकचन्द

कहने लगा 'भाई कोयलों की दलाली में हाथ भी काला करना पड़ा।'

**खूँटे के बल बछड़ा नाचे**—(सहारे से साहस बढ़ता है)—करोड़ीमल का मैनेजर लाखों रुपये का सौदा बिना उनसे पूछे कर लेता है, क्योंकि सेठजी उस पर विश्वास करते हैं। सच है, खूँटे के बल बछड़ा नाचे।

**गदहा धोने से बछड़ा नहीं होता**—(मूर्ख का स्वभाव बदला नहीं जा सकता)-सोहन इतना कुन्दजेहन था कि मास्टर साहब के अथक परिश्रम पर भी कुछ समझ न सका। तब मास्टर साहब ने निराश होकर कहा 'गदहा धोने से बछड़ा नहीं होता'।

**गंवार की अक्ल सर में**—( मूर्ख आदमी मार खाकर रास्ते पर आता है )—चोर से लाख कहा गया कि माल का पता बता दो, पर उसने नहीं बताया। आखिर जब मार पड़ी तो बच्चू बताने लगे। ठीक कहा है 'गँवार की अक्ल सर में'।

**घी खाइए शक्कर से, दुनिया ठगिए मक्कर से**—(चालाकी से काम निकालना)—महेसूराम की सिधाई से उनका बहुत काम बिगड़ता था। किसी ने उन्हें बताया 'घी खाइए शक्कर से दुनिया ठगिए मक्कर से'।

**घर की मुर्गी साग बराबर**—(अपनी वस्तु का कोई मूल्य नहीं)—मनसाराम अच्छे गायक हैं। गाँव के लोग उनसे काम कराके उन्हें कुछ देते नहीं, जबकि बाहर के गायकों को दस-बीस दे देते हैं। एक दिन मैंने उनसे कहा आप शहर में जाकर रहिए। यहाँ सबलोग आपको घर की मुर्गी साग बराबर समझते हैं।

**चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात**—( थोड़े दिन का सुख होना )—कितने ठग आजकल गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।

**चील के घोंसले में माँस कहाँ**–'असंभव कार्य होना)—घूसखोरों से दया चाहना चील के घोंसलों में मांस खोजना है।

**चूनी कहे हमें घी से खाओ**—(योग्यता से अधिक सम्मान चाहना)—बड़े-बड़े नेताओं के सम्बन्धी भी अपने को बड़ा मानने लगे हैं और चाहते हैं सब उनका आदर करें। सच है चूनी कहे हमें घी से खाओ।

**जहाँ मुर्गा नहीं क्या वहाँ सबेरा नहीं होता**—(किसी के बिना कोई काम रुकता नहीं)—मरीज घबरा रहा था पर डाक्टर साहब का पता नहीं था। वैद्य जी ने कहा 'क्यों चिन्ता करते हो? जहाँ मुर्गा नहीं होता वहाँ सबेरा नहीं होता क्या?'

**जल में रहे मगर से बैर**—(जहाँ रहे वहीं के प्रधान से वैर करना)—बहुत से शिक्षक प्रधानाध्यापक से बिगाड़ कर लेते हैं। जल में रह कर मगर से बैर नहीं करना चाहिए।

**जीती मक्खी नहीं निगली जाती**–(कोई बड़ा काम नहीं दबाया जा सकता)—हमारे गाँव में एक खून हो गया था। मुखिया ने दारोगा से कहा 'हुजूर ऐसा करो कि यह दब दबा जाय'। दारोगा जी ने कहा 'मुखिया जी जीती मक्खी नहीं निगली जा सकती। मामला टेढ़ा है'।

**जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ**—(दुर्गुणी सभी एक से होते हैं)—मोहन भी चोर है और उसका भाई भी। इसीलिए कल्लू कहता है, 'जैसे नागनाथ हैं वैसे साँपनाथ हैं।'

**जोरू चिकनी मियाँ मजूर**–(व्यर्थ की शेखी दिखलाना)—कितने विद्यार्थी गरीब होने पर भी बड़ी शान-शौकत से रहते हैं। वे जोरू चिकनी मियाँ मजूर की कहावत चरितार्थ करते हैं।

**जंगल में मोर नाचा किसने देखा**—(अन्यत्र कोई काम करने से स्वदेशवाले नहीं जानते)—हरीराम ने कहा—'गंगाधर ने तो कलकत्ते में लाखों रुपए दान किए हैं।' श्रोता कहने लगे, भाई! जंगल में मोर नाचा किसने देखा?

**तलवार की आँच बुरी होती है**—(तलवार का सामना करना कठिन है)—महाभारत की लड़ाई में जब तलवारें बजने लगीं तो कायरों के होश उड़ गए। सच कहा है—'तलवार की आँच बुरी होती है।'

**तबेले की बला बन्दर के सर**—(किसी की विपत्ति किसी दूसरे के सिर पर)—रामदेव ने सोहन का घर फूँक दिया और गाँव में हल्ला मचाया कि कल्लर ने फूँका है। इस तरह तबेले की बला को बन्दर के सर पर मढ़ दिया।

**तीर नहीं तो तुक्का**—(अनुमान से कार्य करना)—जुए पर दाँव रख ही दिया है, अगर लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का।

**तू डार डार हम पात पात**—(एक दूसरे के माफिक चतुर)—मोहन ने सोहन से कहा, 'तुम हमको क्या ठगोगे? यदि तुम डार डार चलोगे तो हम पात पात चलेंगे।'

**दिन ईद रात शबरात**—(हर समय आनन्द)—जब से उसे नौकरी मिली वह दिन ईद, रात शबरात मना रहा है।

**दूध के दाँत टूटना**—(बचपन होना)—अभी तो तुम्हारे दूध के दाँत भी नहीं टूटे और ब्याह हो रहा है।

**धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का**—(बेकार होना) जब रामलाल परीक्षा में फेल हो गया तो उसके पिता बिगड़ने लगे कि यह धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का है। पढ़ भी नहीं सकता, दूकान पर भी नहीं जाता।

**धोखे की टट्टी**—(भ्रम में डालनेवाली)—इस धोखेकी टट्टी से तुम कब तक काम करते रहोगे ?

**नदी-नाव संयोग**—(एकाएक मिल जाना)—गोवर्धनदास ने सेवकलाल से कहा—'भाई, हम तुमसे लड़ाई नहीं करना चाहते। नदी-नाव का संयोग हमारा-तुम्हारा हुआ है, फिर तो तुम कहाँ होगे और मैं कहाँ।'

**नमक छिड़कना**—(कष्ट देना)—गरीबदास तुमने मेरा अपमान भी किया और दूसरों से शिकायत भी कर रहे हो। इस तरह तुम जले पर नमक छिड़क रहे हो।

**नक्कारखाने में तूती की आवाज**—(बड़ों में छोटों की बात नहीं सुनी जाती)—कितने गरीब कलक्टर साहब के बँगले पर निवेदन करने जाते हैं, पर नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है ?

**नई नायन बाँस की नहरनी**—(अनुभव रहित होना)—बुद्धू पिता के मरने के बाद पहलेपहल ही खेत जोतने गया। उसे मालूम नहीं था कि हल टूटा है। जब औरों ने देखा तो बुद्धू से कहने लगे, 'अरे नई नायन बाँस की नहरनी।'

**न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी**—(असंभव बातें बताकर काम टालना)—हीरालाल ने अपने पिता से कहा मुझे मोटरकार खरीद दो तो मैं पढ़ने जाऊँगा। उसके पिता कहने लगे, 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'।

**नाच न जाने अँगना टेढ़**—(अपनी अज्ञानता का दोष दूसरे पर मढ़ना)—जब लड़के की हस्तलिपि सुन्दर न हुई तो उसने कहा—कलम और दावात ठीक नहीं थी। मास्टर साहब बोले—'नाच न जाने अँगना टेढ़।'

**नाम बड़े दर्शन थोड़े**— केवल नाम होना, गुण का अभाव होना)— दीनदयाल ने कहा—'ज्योतिषियों का जितना नाम है उतना काम नहीं करते।' केवल राम ने उत्तर दिया, भाई, यह तो होता ही है 'नाम बड़े दर्शन थोड़े' की कहावत नहीं सुनी है क्या ?

**नानी के आगे ननिहाल की बातें**—(अधिक अनुभवी के सामने कम का अधिक जानकार बनना)—दयाराम की माता अपनी बहू से कहने लगी, नानी के आगे ननिहाल की बातें न करो, अभी तो तुम कल ही आई हो। इस घर के बारे में जितनी बातें मैं जानती हूँ उतनी तुम नहीं।

**नाई की बारात में ठाकुर ही ठाकुर**—(छोटों के समूह में सब बड़े बनना चाहते हैं)–दयानाथ के घर विवाद था। सब लोग इस तरह के थे कि सभी मलिकाना दिखला रहे थे। उनकी यह दशा देख एक बराती कहने लगा, 'यहाँ खैर नहीं। यहाँ तो नाई की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर बने दिखाई दे रहे हैं।'

**नीम हकीम खतरेजान**—( अनुभवहीन से काम बिगड़ जाता है )–इस बढ़ई ने तो हमारी सारी लकड़ी ही चौपट कर दी। सच है नीम हकीम खतरेजान।

**नंगा क्या नहाय क्या निचोड़े**—(निर्धन कुछ नहीं कर सकता )–इस महँगाई में गरीब क्या खाये क्या बचावे ? सच है नंगा क्या नहाय क्या निचोड़े ?

**फूँक फूँक कर पैर रखना**—( सोच समझकर काम करना )–भाई, आजकल हमें फूँक फूँक कर पैर रखना है। हमारे दुश्मन सदा हमारी ताक में हैं।

**बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभानअल्लाह**—(बड़े से बढ़कर छोटा) यह नौकर मालिक से भी अधिक झगड़ालू है। ठीक कहा है बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभान अल्लाह।

**बकरे की माँ कबतक खैर मनाएगी**—( दुर्बल कभी न कभी बस में आवेगा ही )–रामयश ने रामअधार से कहा, 'देखा न देवनाथ को पंजे में ले ही लिया। अरे, बकरे की माँ कबतक खैर मनावेगी ?'

**बड़े बोल का सर नीचा**—( घमंडी का पतन होता है )–रामभोज ने अपने चाचा से कहा—'चाचा जी, बड़े बोल का सर नीचा होता है, इसलिए अधिक बातें बन्द कीजिये।'

**बजाज की गठरी पर झींगुर मालिक**—( कार्य करने के पूर्व कठिनाई रोकने का प्रबन्ध करना, दूसरों की चीज पर मलिकाना अधिकार दिखाना ) देवनाथ ने सेठजी के नौकर को डाँटते हुए कहा, 'मैं उनका रुपया दूँगा न, तुम इतना गुर्राते क्यों हो ? वाह खूब रहा ! बजाज की गठरी पर झींगुर मालिक।'

**बगल में तोसा मंजिल का भरोसा**—( तैयारी के साथ यात्रा करना )—कहीं जाने के समय यात्रा का साधन अवश्य रखना चाहिए, क्योंकि बगल में तोसा 'मंजिल का भरोसा' की कहावत ठीक कही गई है।

**बसन्त की खबर भी है**—(साधारण जानकारी होना)–अरे भाई तुम इतना फूले क्यों नहीं समा रहे हो ? बसन्त की खबर भी है। सेठजी तो मुकदमे में हार गये।

**बिल्ली के भाग से छींका टूटा**—(संयोग से ऐसा हुआ)—मोहनलाल परीक्षा में नकल करना चाहता था, पर शिक्षक बड़े सतर्क थे। संयोग से उनके सर में दर्द होने लगा और वे बाहर चले गए। मोहन का काम बन गया। कहावत ही है, 'बिल्ली के भाग से छींका टूटा'।

**बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद**—( मूर्ख गुणों की परवाह करना नहीं जानता )—उस दिन भोज में जब हीरालाल ने कहा, 'भाई, मिठाइयाँ तो ठीक नहीं बनी थीं', तो रामचन्द्रने यह उत्तर दिया, 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।'

**भरे समुद्र घोंघा हाथ**—( अधिक लाभ के स्थान पर कुछ भी न मिलना )—याचक को जब दरबार में एक रुपया दक्षिणा मिली तो वह कहता चला गया 'भरे समुद्र में घोंघा ही हाथ लगा'।

**भीख के टुकड़े बाजार में डकारना**—( अधिक बनावटीपन होना )—मोहन तुम्हारे घर खाने को भी नहीं है और तुम मोटर पर चलते हो। अरे भाई, भीख के टुकड़े बाजार में डकारना ठीक नहीं।

**भूस में आग लगाय जमालो दूर खड़ी**—( झगड़ा लगवा कर दूर हो जाना )—अंग्रेजों ने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में लड़ाई लगा दी और अब दूर से देख रहे हैं। सच है, भूस में आग लगाय जमालो दूर खड़ी।

**भैंस के आगे बीन बजाना**—( मूर्ख के आगे अच्छी बात करना )—उस सभा में सब निरक्षर भट्टाचार्य थे। प्रोफेसर साहब का भाषण वहाँ पर भैंस के आगे बीन बजाने के समान था।

**भेड़िया धसान होना**—( बिना सोचे-समझे अधिक लोगों का किसी काम में लग जाना )—भारतवर्ष में भेड़िया धसान प्रसिद्ध है।

**मांट का मांट बिगड़ गया है**—( सबकी अक्ल मारी जाना )—राधेलाल के घर के सभी बिगड़ गये हैं। सब लोग जुआरी हैं। वहाँ तो माँट का माँट बिगड़ गया है।

**मन चंगा तो कठौती में गङ्गा**—( मन की पवित्रता से सब होता है )—भाई मैं तो पर्वों पर घर में ही स्नान कर लेता हूँ। काशी, प्रयाग नहीं जाता। अरे, मन चंगा तो कठौती में गंगा।

**मियाँ की दौड़ मस्जिद तक**—( सीमित शक्ति रखना )—अरे, तुम दारोगा जी से ही जाकर न शिकायत करोगे। मेरी

कलक्टर तक पहुँच है। तब रामदास कहने लगा 'भैया! मियाँ की दौड़ मस्जिद तक हो न होगी।'

**रोजा गये छुड़ाने, नमाज गले पड़ी**—(एक आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए जाना और दूसरी गले लगना)—इस खून के मुकदमे में जब रामदुलार ने चार माह की सजा छुड़ाने की अपील की, तो जज साहेब ने उसे बढ़ाकर छः माह कर दिया। बेचारा गया रोजा छुड़ाने, नमाज गले पड़ी।

**लटा हाथी बिटौरा-सा**—(बड़ा आदमी बिगड़ने पर भी छोटे से बड़ा होता है—देवनाथ ने कहा कितना ही मैं गया गुजरा हूँ तुमसे कम नहीं हूँ। अरे, लटा हाथी बिटौरा-सा होता है।

**लड़का बगल में ढिंढोरा नगर में**—(असावधानी दिखलाना) रामजी का घोड़ा अस्तबल में था। अन्धेरे में न देखने के कारण गाँव भर खोज आये। एक पड़ोसी ने घोड़े की आवाज सुनी तो कहने लगा, 'रामनाथ कितना मूर्ख है, लड़का बगल में और ढिंढोरा नगर भर में पीट रहा है।'

**लाल गुदड़ी में नहीं छिपता**—(गुणी का गुण प्रकट हो जाता है)—आखिर वह गरीब बालक प्रथम पुरस्कार पा ही गया। इन्स्पेक्टर साहब ने उसकी बड़ी तारीफ की। सच है लाल गुदड़ी में नहीं छिपता।

**लिखे ईसा पढ़े मूसा**—(बहुत खराब लिखना)—भाई, बना कर लिखो ऐसा न हो कि लिखे ईसा पढ़े मूसा।

**लूट के मसूर भले**—(मुफ्त का माल अच्छा)—बड़े बाबू को उस गरीब ने कुछ भी देने का वादा न किया तो उन्होंने उसका लोटा ही ले लिया। सोचा लूट के मसूर ही भले।

**लोमड़ी को अंगूर खट्टे**—(जब मिलना असंभव हो तब

दोष निकालना)–जब गाड़ी में जगह न मिलने के कारण काशीनाथ प्रयाग कुम्भ में न जा सके तो कहने लगे–'अच्छा हुआ कुछ बचत ही हो गई। इतने में दया कहने लगा "लोमड़ी को अंगूर न मिले तो खट्टे लगते हैं।'

**सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है**—(जो सुख में है उसे सर्वत्र सुख ही सुख दिखलाई पड़ता है)–पूँजीपतियों के लिये भारतवर्ष में भूखे नंगे हैं ही नहीं। सच है सावन के अन्धों को हरा ही हरा सूझता है।

**साँप मरे न लाठी टूटे**—(काम हो जाय और कुछ बिगड़े न)–हरीदास यदि तुमको तंग करता है तो स्वयं उसे दंड न दो। उसके पिता से कह दो वह ठीक कर दें। काम ऐसा करना चाहिए कि साँप मरे न लाठी टूटे।

**हाथ कंगन को आरसी क्या**—(जिसे सब जानते हैं उसकी बात क्या)–अरे भाई थोड़ी ही देर में पता लग जायगा कि कौन सच कह रहा है कौन झूठ, हाथ कंगन को आरसी क्या?

**हाथी के दाँत दिखाने के और खाने के और होते हैं**–(बड़े कहते कुछ और करते कुछ और हैं)–कितने व्यापारी सत्य बोलो का पाठ पढ़ाते हैं और खुद ब्लैक मार्केटिंग करते हैं। सच है, हाथी के दाँत दिखाने के और खाने के और।

**हीरे की परख जौहरी जाने**—(गुण की परख गुणवान करता है)–उस दिन बालक को किसी विद्यालय में शरण न मिली, किन्तु हमारे हेडमास्टर साहब ने उसे होनहार समझ भर्ती कर लिया। सच है हीरे की परख जौहरी जाने।

**होनहार बिरवान के होत चीकने पात**—(होनहार का स्वरूप बाल्यावस्था से ही प्रकट होने लगता है)–महात्मा गौतमबुद्ध

बचपन में ही ध्यानस्थ हो जाते थे, सच कहा है 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।'

**हंसुवे के ब्याह में खुरपी के गीत**—(जैसा देश वैसा व्यवहार)–जब मोहनलाल ने उस देहात में कजली गानी शुरू की तो मैंने उससे कहा यह क्या गँवारू रंग अपनाते हो। उसने कहा, 'तुम नहीं जानते हंसुये के ब्याह में खुरपी के ही गीत गाए जाते हैं।'

**हाथ की मैल**—(बहुत तुच्छ चीज़)--याचक ने कहा, वाह! एक दो आने तो आपके हाथों की मैल है। कुछ तो दे दीजिये।

**हवा से लड़ना**—(अकारण लड़ना —बहुतेरी औरतें हवा से भी लड़नेवाली होती हैं।

**आँख बदलना**– (बेमुरौवत होना)—मोहम्मद गोरी ने जयचन्द को दिल्ली का राज्य देने का वायदा किया था, पर जब उसे विजय प्राप्त हो गई तो उसकी आँखें बदल गईं।

**आँखें नीली-पीली करना**—(क्रोध करना)—मोहन को साइकिल चलाना नहीं आता था और वह एक आदमी से टकरा गया। वह आदमी आँखें नीलीपीली करने लगा।

**आँखें लगी रहना**—(प्रतीक्षा करना)–वर्षा के समय किसानों की आँखें आसमान पर लगी रहती हैं कि कब वर्षा होगी।

**आसमान से बातें करना**—(बहुत ऊँचा होना)—हिमालय की चोटी एवरेस्ट आसमान से बातें करती मालूम पड़ती हैं।

**आसमान सरपर उठाना**--(असम्भव कार्य सोचना)—दुर्योधन ने श्रीकृष्ण जी से कहा—"आप आसमान सरपर उठाते हैं, मैं बिना युद्ध के एक तिल भी भूमि देने को तैयार नहीं होऊँगा।"

**आगबबूला होना**—(अत्यन्त क्रोध करना)—मानसिंह इस प्रकार अपमानित होने पर आगबबूला हो गए और राणा के सामने ही बदला लेने की उन्होंने प्रतिज्ञा करली।

**आँसू पोंछना**—(कुछ ढाढ़स के लिये प्राप्त करना)—नारायण साहु को कोई सन्तान न थी। वे नित्य इसके लिए हाय हाय करते थे। आखिर बुढ़ापे में उन्हें एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई। इस प्रकार उनके आँसू पुँछ गये।

**आँख खुल गई**—(चैतन्य होना)–दुःख के समय जब किसी ने मेरा साथ नहीं दिया तो मेरी आँख खुल गई कि जगत् में सब मतलब के साथी हैं। आपत्ति में कोई बिरले ही साथी होते हैं।

**आँखों के आगे अँधेरा छा जाना**—(कुछ न सूझना)—कठिनाइयों का पहाड़ सामने देख अर्जुन की आँखों के आगे अँधेरा छा गया, पर कृष्ण को सामने देख अर्जुन के लिए डूबते को तिनके का सहारा मिला।

**आँखों का पानी ढल जाना**—(निलेज्ज हो जाना)–घूस लेने के कारण घूसखोरों की आँखों का पानी ढल जाता है।

**आँखों में धूल डालना**–(सरासर धोखा देना)—नेता जी सुभाषचन्द्र बोस अँगरेजों की आँखों में धूल डालकर भारत के बाहर चले गये।

**आँखों में खून उतरना**—(क्रोध से आँखें लाल होना)—सन् १९४२ के विद्रोह को देखकर अँगरेजों की आँखों में खून उतर आया।

**आँखों में चर्बी छाना**—(घमंड होना)—धनियों को धन के कारण आँखों में चर्बी छाई रहती है।

**आँख मारना**—(संकेत करना)—छोटे लड़के ने आँख मार-कर अपने बड़े भाई को बाहर जाने की सलाह दी।

**आकाश पाताल एक करना**—(बहुत उद्योग करना)–मोहन के पिता ने मोहन के फेल होने पर आकाश-पाताल एक कर दिया। सैकड़ों बार हेडमास्टर से मिले। पर सब व्यर्थ हुआ।

**आँखें नीची होना**—(लज्जित होना —विद्यार्थियों द्वारा किए गए दुष्टतापूर्ण व्यवहारों को सुनकर अध्यापक की आँखें नीची हो गईं।

**अक्ल पर पत्थर पड़ जाना**—(मूर्ख बनना)—पाकिस्तान के बँटवारे के समय सभी नेताओं की अक्ल पर पत्थर पड़ गए थे।

**आसमान जमीन का अन्तर होना**—(बहुत बड़ा भेद होना)—पढ़े-लिखे और गँवार के रहन-सहन में जमीन आसमान का अन्तर होता है।

**इधर-उधर की हाँकना**—( झूठी गप्पें लड़ाना )—बहुत से लोगों में इधर-उधर की हाँकने की आदत पड़ जाती है।

**ईंट से ईंट बजाना**—(बिलकुल बरबाद कर देना)—अभि-मन्यु की मृत्यु के बाद अर्जुन ने कौरवों की ईंट से ईंट बजाने की प्रतिज्ञा की।

**उन्नीस बीस न होना**—(कुछ अन्तर न होना)—डाक्टर साहब की दवा से मर्ज कुछ भी उन्नीस बीस न हुआ।

**उँगली उठाना**—(बदनाम करना)—आजकल सभी लोग कांग्रेसवालों पर उँगुली उठा रहे हैं।

**उँगलियों पर नचाना**—(परेशान करना या जैसा चाहे वैसा करना)-पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ अपने पतियों को अँगुलियों पर नचाती हैं।

**उन्नीस होना**—(घटिया होना)–क्या मेरा घी आपसे उन्नीस हो सकता है ?

**उल्टी गङ्गा बहाना**—(असम्भव बातें करना)—गुरुदीन ब्राह्मण ने एक शूद्र कन्या से सम्बन्ध कर लिया। गाँववाले कहने लगे गुरुदीन पांडे तो आजकल उल्टी गंगा बहा रहे हैं।

**उल्लू बोलना**—(उजाड़ होना)—इस प्रकार की महामारी आई कि गाँवों में उल्लू बोल रहे हैं।

**कलई खुलना**—(भेद मालूम होना)—जब चोर का पता लग गया तो उसकी सारी कलई खुल गई।

**कलेजा पत्थर का करना**—(बहुत कठोर होना)–दशरथ जी कहने लगे, आज मेरा कलेजा पत्थर का हो गया है जो राम-वनगमन से भी नहीं फटता।

**छाती पर साँप लोटना**—(किसी दुःखद घटना के स्मरण से बहुत दुखी हो जाना)—माता को जब पुत्र की मृत्यु की याद आती है तो उसकी छाती पर साँप लोटने लगता है।

**काई सी फट जाना**—(तितर-बितर होना)—सचाई झुठाई को काई-सी फाड़ देती है।

**काठ में पाँव देना**—(व्यर्थ की झंझट में फँस जाना)—कितने बेवकूफ नासमझी से काठ में पाँव देते हैं।

**कान कतरना**—(मात करना)–आजकल यह लड़का बेईमानी से बड़ों का कान कतर रहा है।

**कान का कच्चा होना**—(दूसरों के बहकाने में आ जाना)–कान के कच्चे लोग अकसर बड़ी-बड़ी भूलें करते हैं।

**कान पर जूँ न रेंगना**—(बिलकुल ध्यान न देना)–मुहम्मद गोरी की कई चढ़ाइयों पर भी हिन्दू राजाओं के कान पर जूँ तक न रेंगी।

**कान में तेल डाले बैठना**—(बेपरवाह रहना)—शत्रु द्वार पर आ गया है, क्या कान में तेल डाले बैठे रहोगे ?।

**काले तिल चबाना**—(बहुत जीना)–हरीदास इस बुढ़ापे में भी इतना काम कर लेता है, सचमुच उसने काले तिल चबाए हैं।

**किनारा कसना**—अलग होना—(हमें दुःख में देखकर दूसरे मित्र किनारा कस जाते हैं।

**कुएँ में भाँग पड़ना**—(सबकी अक्ल मारी जाना)–जब गाँव-वालोंपर चोरों का हमला हुआ तो सब घरों में छुप गए। उस समय कुयें में भाँग पड़ गई थी, किसी को मुकाबले की न सूझी।

**कानों कान खबर होना**—(बहुत शीघ्र सबको पता लगना)–सुभाष बाबू के गायब होने की कानों कान खबर हो गई।

**कौड़ी का न पूछना**—(बेकार होना)–आजकल कितने बी० ए०, एम० ए० कौड़ी तक को नहीं पूछे जाते।

**खाक डालना**—(छोड़ देना —जो हो गया सो हो गया अब उस पर खाक डालो।

**खेत रहना**—(मारे जाना)—जर्मनी की लड़ाई में बहुत से भारतीय सैनिक खेत रहे।

**खून सूख जाना**—(डर जाना)—जमींदार को देख किसानों के खून सूख जाते हैं।

**खून का प्यासा**—(मार डालने की इच्छा रखने वाला)—

आजकल की शिक्षा-पद्धति इतनी बिगड़ गई है कि एक भाई दूसरे के खूनका प्यासा बना रहता है।

**गंगा नहाना**--(छुट्टी पाना)-हरी की दो पुत्रियाँ थीं। दोनों का विवाह कर उसने गंगा नहा लिया।

**गड़े मुर्दे उखाड़ना**--(दबी हुई बात की याद दिलाना)—भाई, तुम लोग समझौता कर लो। गड़े मुर्दे उखाड़ने से कार्य नहीं चलेगा।

**गड्ढा भरना**—(कर्ज अदा करना)—अबकी फसल अच्छी हुई तो गड्ढा भर जायगा।

**गरदन काटना**--(हानि पहुँचाना)-भाई, कल्लू ने तो मेरी गरदन काट ली। दो रुपये की चीज को बीस रुपये में दिया।

**गरदन पर सवार होना** -(हर समय सर पर चढ़े रहना)—मजदूर मालिक से कहने लगा, 'आप तो हर समय हमारी गरदन पर सवार रहते हैं। इससे काम नहीं चलेगा।'

**गर्दन फँसना**—(किसी के पंजे में फँस जाना)—इस विवाह के कारण हमारी गर्दन ऐसी फँस गई कि निकलने का कोई चारा नहीं दिखलाई पड़ता। हजारों का कर्ज सर पर है।

**गिरगिट-सा रंग बदलना**—(बात-बात में रंग बदलना)—गिरगिट-सा रंग बदलने से कार्य नहीं होगा। रुपया तुम्हें देना ही होगा।

**गला छुड़ाना**—(पिण्ड छुड़ाना)-कल शामको बरकत हुसैन हमारे घर पर आये। दो घण्टे तक बक-बक करते रहे। मेरा तो उनसे गला छुड़ाना कठिन हो गया।

**गला फाड़ना**--(अधिक चिल्लाना)—वक्ता महोदय गला

फाड़-फाड़ कर कह रहे थे कि इस महँगाई ने तो हमलोगों की कमर तोड़ दी।

**गाँठ खुलना**--(अड़चन दूर होना)-मोहनलाल ने ही हमारी गाँठ खोली और सब मतलब के साथी थे।

**गाँठ में बाँधना**--(याद रखना)-इसे गाँठ में बाँधिये। भूल मत जाइयेगा।

**गाजर मूली समझना**—(बहुत कमजोर समझना)—हीरालाल ने रामलाल से कहा 'क्या आप मुझे गाजर मूली समझते हैं कि जब चाहते खरी-खोटी सुना देते हैं'।

**गाल बजाना**—(डींग मारना)-गाल बजाते बहुतों को कुछ भी लज्जा नहीं आती।

**गुदड़ी का लाल**--(गुप्त गुणवान)-कितने गुदड़ी के लालों के त्याग से ही हमें स्वतन्त्रता मिली है।

**गुल खिलना**--(कुछ और घटित होना)-शिवनाथ ने कहा कि मैंने जीवनदास का साथ छोड़ दिया है। देखिये, आगे क्या गुल खिलता है।

**गुलछर्रे उड़ाना**--(मौज करना)--कितने नवयुवक अपने जीवन का अधिक समय गुलछर्रे उड़ाने में ही व्यतीत करते हैं।

**घर बैठे गंगा**—(बिना परिश्रम लाभ)—लापरवाहों के लिए घर गंगा लाना दूर की बात है।

**घी के चिराग जलाना**--(अधिक आनन्द करना)-भाई रमानाथ का क्या पूछना, वे तो घी के चिराग जला रहे हैं।

**घोड़े पर चढ़कर आना**--(बहुत जल्दी मचाना)-लड़के ने माँ से कहा, जल्दी खाना दो, मुझे स्कूल जाना है। माँ ने कहा, 'अब आते हो घोड़े पर चढ़े आते हो कुछ भी तो धैर्य रखा करो'।

**घर में भूँजी भांग नहीं**--(दरिद्रता का असर होना)--लड़के के खर्चीले स्वभाव को देखकर माता ने कहा घर में भूँजी भाँग नहीं है और तुम रोज सिनेमा देखने जाते हो।

**घड़ी में घड़ियाल**—(थोड़े समय में महान परिवर्तन)--कितने पूर्वी बंगाल के धनी आज भिखारी हो रहे हैं। घड़ी में घड़ियाल इसी को कहते हैं।

**घाट-घाट का पानी पीना**--(बहुत टक्कर खाकर अनुभव प्राप्त करना)—मैंने भी घाट-घाट का पानी पिया है, काठ का उल्लू मत समझिये।

**घड़ों पानी पड़ना**—(लज्जित होना)—इस बात से उसपर घड़ों पानी पड़ गया।

**घास काटना**—(मामूली काम करना)—गुरुजीने लड़के से कहा, थोड़ी मेहनत करो, क्या घास काटने आये हो?

**छटा हुआ होना**—(बहुत चालाक होना)-रहीम छटा हुआ है, वह किसी के पंजे में नहीं आने को है।

**चोरी और मुहँजोरी**—(अपराध करके भी अकड़ना)-जब रावण बहुत इधर-उधर की कह रहा था तो अंगद जी बोले, धिक्कार है तुम्हें चोरी और मुँहचोरी भी।

**चबा-चबाकर बातें करना**—(ऐंठ के साथ बातें करना --रामलाल ने हरी से कहा, 'चबा चबाकर क्यों बातें करते हो? यदि रुपया नहीं देना है तो साफ कहो।'

**चिकने घड़े बनना**--(बहुत साफ बनना)—गोरखनाथ ने कहा, 'गदाधर! चिकने घड़े मत बनो, यह सब काम तुम्हारा ही है।'

**चींटी के पर निकलना**—(नाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाना)–कल्लू कक्षा में सबसे लड़ता था। एक दिन वह मास्टर साहब से भी लड़ बैठा। लड़के कहने लगे, 'अब चींटी के पर निकल रहे हैं।'

**चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना**—(होते हुए कार्य में विघ्न डालना) मेरा काम ठीक से हो रहा था पर राधेलाल ने ऐसी पेंच मारी कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटक गया।

**चौकड़ी भूल जाना**—(अक्ल काम न करना)–परीक्षा में प्रश्नों को देखकर विद्यार्थियों की चौकड़ी भूल गई।

**चार चाँद लगना**—(अधिक शोभा होना)—विद्वानों में विनय होना उनमें चार चाँद लगना है।

**चिराग गुल हो जाना**—(सत्यानाश हो जाना)—इस महामारी ने किसानों के घरों के चिराग गुल कर दिये।

**छाती फटना**—(डाह से जलना)–दूसरों की बढ़ती देखने से कितने दुष्टों की छाती फटने लगती है।

**छठी का दूध याद आ जाना**—(बहुत कठिनाई का अनुभव करना)—इस काम को करने में कितनों को छठी का दूध याद आजायगा।

**छप्पर फाड़ कर देना**—(बिना परिश्रम अधिकप्राप्त करना)–भगवान जब किसी को देने लगता है तो छप्पर फाड़ कर देता है।

**छाँह छूने न देना**—(पास फटकने न देना)—वह गाय जबसे ब्याही है, घरवालों को छाँह भी छूने नहीं देती।

**छाती पर पहाड़ होना**—(अधिक चिन्ता की वस्तु होना)–

दहेज की प्रथा के कारण कितनी कन्याएँ पिता की छाती पर पहाड़ हो जाती हैं।

**छींकते ही नाक कटी**—(बुरे काम का फल तत्काल मिलता है)—ज्यों ही चोर ने सेंध लगायी, गाँववालों ने देख लिया। वह कहने लगा, अरे! आज तो छींकते ही नाक कटी।

**जान के लाले पड़ना**—(जान बचना मुश्किल पड़ना)—इस भुखमरी में कितने के जान के लाले पड़ गए।

**जान पर खेलना**—(किसी काम के लिए जान की भी परवाह न करना)—मुझे सफलता क्यों नहीं मिलती, मैं तो सदा जान हथेली पर रख कर काम करता हूँ।

**जड़ काटना**—(बिलकुल बर्बाद कर देना)—गोवर्धन ने सीताराम की ऐसी जड़ काटी कि बेचारा गाँव छोड़कर भाग गया।

**जड़ जमना**—(दृढ़ता प्राप्त करना)—वकील साहब की जड़ उनके पिताजी जमा गए थे।

**जबान बंद करना**—(बातों में हराना)—मैं तुम्हारी जबान एक ही बात में बन्द कर सकता हूँ, चाहे तुम लाख बड़बड़ाओगे।

**जबान में लगाम देना**—(सोच समझ कर काम करना)—तुम्हारी जबान में लगाम नहीं है, जिसको जो चाहते हो कह देते हो।

**जबान देना**—(वायदा करना)—मैंने रामजी को घर जाने की जबान दी है।

**जमीन आसमान एक करना**—(बहुत बड़ा प्रयत्न करना)—म्युनिस्पैल्टी के चुनाव में कितने लोग जमीन आसमान एक कर डालते हैं।

**जमीन पैरों तले से खिसकना**—(निराधार हो जाना)—इस बात को सुनते ही गुरुदीन के पैरों तले की जमीन खिसक गई।

**जमीन पर पैर न रखना**—(बहुत अभिमान करना)—जब से गौरीशंकर को यह नौकरी मिली है वह जमीन पर पैर नहीं रखता।

**जहर उगलना**—(द्वेषपूर्ण बातें करना)—भाई चुप रहो इस जहर के उगलने से क्या लाभ होगा।

**जहर का घूँट पीना**—(क्रोध को दबा कर शान्त बने रहना)—तुम्हारी बात सुन मैं जहर के घूँट पीकर रह गया।

**जल मरना**—(द्वेष करना)—तुम हमारी उन्नति देखकर क्यों जले मरते हो?

**जान पर आ बनना**—(संकट में पड़ जाना)—इस नौकरी से तो मेरी जान पर आ पड़ी है। चौबीस घंटे आराम नहीं है।

**जान से हाथ धोना**—(मृत्यु को प्राप्त होना)—इस काम में बहुतों को जान से हाथ धोना पड़ेगा।

**जी चुराना**—(किसी काम से भागना)—कितने लड़के मेहनत करने से जी चुराते हैं।

**जी भर आना**—(दया आना)—उनकी दीनता देखकर मेरा जी भर आया।

**जूतियाँ उठाना**—(बहुत नम्र होना)—मैं तो आपकी जूतियाँ उठाने को तैयार हूँ, पर आँख दिखलाने से नहीं।

**जौहर खुलना**—(गुण प्रकट होना)—विद्वान् के जौहर खुल के ही रहते हैं।

**झोपड़ी में रहकर महलों का स्वप्न देखना**—(शक्ति के बाहर की बातें सोचना)–बुद्धू चमार का बेटा अपने घर में रेडियो लगवाने को सोचता था। उसके पिता ने कहा "झोपड़ी में रहकर महलों का स्वप्न देखना ठीक नहीं है।"

**झंडा गाड़ना**—(अधिकार करना)–आजाद हिन्द फौज ने मनीपुर में अपना झण्डा गाड़ दिया था।

**झख मारना**–(समय व्यर्थ करना)–तुमलोग क्या यहाँ बैठे-बैठे झख मार रहे हो, घर क्यों नहीं चलते?

**झांसा देना**—(धोखा देना)–कल्लू राम ने हमें खूब झाँसा दिया। हम उसे देखते देखते हैरान हो गए पर वह आया नहीं।

**टकासा जवाब देना**—(साफ साफ इन्कार करना)–मैंने मोहन से उसकी पुस्तक दो दिन के लिये माँगी, पर उसने टकासा जवाब दिया।

**टट्टी की आड़ में शिकार**—(गुप्त रीति से बुराई करना)–दुष्ट लोग सदा टट्टी की आड़ में बुराई करते हैं।

**टेढ़ी खीर होना**—(कठिन काम होना)–परीक्षा में इस वर्ष पास होना टेढ़ी खीर है।

**टक्कर खाना**–(परेशान होना)–गरीबदास ने नौकरी खोजने के लिए कहाँ-कहाँ नहीं टक्कर खाई, फिर भी उसे नौकरी नहीं मिली।

**टक्कर का होना**–(बराबरी का होना)–हिटलर के टक्कर का वीर आधुनिक जगत में नहीं दिखलाई पड़ता।

**टाँग अड़ाना**—(बाधा डालना)–तुम तो व्यर्थ ही बीच में टाँग अड़ाते हो। अरे कुछ तो काम कर लेने दो।

**टाँयटाँय फिस**—(बेकार होना)–प्रधानाध्यापक ने लाख समझाया पर उनकी बातें सब टाँय टाँय फिस हो गईं।

**टें बोलना**–(मर जाना)–इस तरह की ठंढक पड़ी कि कितने जानवर टें बोल गए।

**ठंडी साँस भरना**–(अफसोस करना)–जब केवल राम को व्यापार में घाटा हुआ तो वह ठंडी साँस लेने लगा।

**ठठेरे ठठेरे बदलौवल करना**—( जोड़ का तोड़ होना )–मोहन ने रामू से कहा, क्या तुम ठठेरे ठठेरे बदलौवल करना चाहते हो ? हम तुमसे किस बात में कम हैं ?

**ठिकरा समझना**–(कुछ न समझना)–पराये धन को ठिकरा समझना चाहिये।

**डंके की चोट**—( खुल्मखुल्ला )–मैं डंके की चोट ऐलान करता हूँ कि तुम मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

**ढोल में पोल**–(कुछ वास्तविकता नहीं)—कितने धनियों के घर ढोल में पोल रहता है।

**तकदीर लड़ना**—(भाग्योदय होना)–अगर तुम्हारी तकदीर लड़ी तो तुम इस व्यापार में मालामाल हो जाओगे।

**तारे गिनना**—(प्रतीक्षा करना)–पुत्रों के न रहने पर माताएँ तारे गिन गिन कर रात बिताती हैं।

**तूती बोलना**—(धाक बैठना)–आजकल शेर सिंह की इन दिनों तूती बोल रही है।

**तीन तेरह हो जाना**—(इधर-उधर हो जाना)–रामदास ने इतना पैसा इकट्ठा किया था कि जिन्दगीभर खाता, पर सब तीन तेरह हो गया।

**तू-तू मैं मैं**--( झगड़ा करना )-इस तू तू मैं मैं से अच्छा होगा कि आप लोग बातचीत बन्द कर दें।

**तेली का बैल होना**—( रात दिन काम करना )-दुखहरन साहु ! क्या तेली का बैल हो रहे हो। कुछ तो आराम करो।

**तीन पाँच करना**—(इधर उधर की बातें करना)-गुरु नारायण ने राघव से कहा कि हमसे तुम्हारी तीन—पाँच नहीं लगेगी। सही बात बतला दो, तभी छुटकारा मिलेगा।

**तोता पालना**—(मर्ज बनाए रहना)--मरीज के हाथ में एक बड़ा फोड़ा देखकर डाक्टर साहब ने कहा कि यह तोता कब से पाल रखे हो ?

**तख्त उलटना**--( बरबाद करना )--लोकतंत्र ने कितने ही राजाओं के तख्त उलट दिये।

**थूक में सत्तू सानना**—(थोड़े खर्च में बड़ा काम करना)—पेशकार साहब को मोवक्किल ने जब दो आने पैसे दिखाए तो, वे 'बोले—"जाओ ! जाओ !! थूक में सत्तू नहीं सनता'।"

**थाली का बैंगन होना**—(अति शीघ्रता करना)—जो लोग थाली के बैंगन होते हैं वे अधिक उन्नति नहीं कर पाते।

**दबे पाँव निकल जाना**—(चुपके से भाग जाना )—पुलिस ने चोर देखा अवश्य, पर वह दबे पाँव निकल भागा।

**दाई से पेट नहीं छिपता**-(जानकार से भेद नहीं छिपता)-डाक्टर साहब ने कहा, रोग का कारण ठीक ठीक बतलाओ। कहीं दाई से पेट छिपता है ?

**दाँत काटी रोटी होना**—(बहुत घनिष्टता होना ) -रहीम और करीम में दाँतकाटी रोटी का सम्बन्ध है।

**दाँत खट्टे करना**—(परेशानियों में जी भर देना)—गोरा ने अलाउद्दीन से कहा कि मैं तुम्हारे दाँत खट्टे कर दूँगा।

**दाँत तले उँगली दबाना**—(आश्चर्य करना)—इस बात को सुनकर सभी दाँत तले उँगली दबा रहे हैं।

**दाँत पीसना**—(क्रोध करना)—चोर पर जब मार पड़ रही थी तो वह दाँत पीस रहा था।

**दाँत दिखाना**—(असमर्थता प्रकट करना)—जब मैंने गरीब दास से अपना रुपया माँगा तो वह दाँत दिखाने लगा।

**दाल गलना**—(स्वार्थसिद्ध होना)—जब अंग्रेजों ने देखा कि अब भारत में दाल नहीं गलेगी, तो यहाँ से जाने की तैयारी करने लगे।

**दाने दाने पर मुहर है**—(जिसके भाग्य में जो होता है वही मिलता है)—लड़के का भोजन जब बिल्ली उठा ले गई तब किसी ने कहा—"दाने दाने पर मुहर है।"

**दिन में तारे दिखलाई पड़ना**—(आश्चर्य की बात होना)—उनका यहाँ आना तो दिन में तारे दिखलाई पड़ने के समान है।

**दूध का दूध पानी का पानी**—(सच्चा न्याय होना)—विक्रमादित्य के राज्य में दूध का दूध पानी का पानी होता था।

**दूर के ढोल सुहावने**—(दूर की वस्तु अच्छी लगती है)—स्वतंत्रता स्वतंत्रता सब चिल्लाते थे। स्वतंत्रता मिलगई, लोगों की कठिनाइयाँ और भी बढ़गईं। सच है, दूर के ढोल सुहावने होते हैं।

**दमड़ी के तीन तीन होना**—(अनादर पाना)—अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग नौकरी न मिलने पर दमड़ी के तीन तीन हो जाते हैं।

**दाएँ होना**—(अनुकूल होना)—जिसका विधाता दाएँ है उसका क्या पूछना है !

**दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देना**—(अपमान के साथ दूर कर देना ) कांग्रेस ने सुभाष बाबू को दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया ।

**धता बताना**—(टाल देना ) आज तुम्हारे पिता ने हमें खूब धता बताई ।

**नाक का बाल होना**—(बहुत प्यारा होना)—आजकल तुम अपनी माता की नाक के बाल हो रहे हो ।

**नाकों चने चबाना**—(बहुत परेशान करना)—इस लड़के ने मुझसे नाकों चने चबवा दिए, जो कहता हूँ उसके खिलाफ करता है ।

**नाक काटना**—(अपमान करना)—तुमने भरी सभा में शिकायत कर मेरी नाक काट ली ।

**नाक रखना**—(लज्जा रखना)–कृपाराम ने मेरी नाकरखली, नहीं तो मेरा स्कूल तो इस मैच में हार ही गया था ।

**नाक रगड़ना**—(गिड़गिड़ाना)—तुम नाक रगड़कर हार जाओ, किन्तु तो भी तुम्हारा पिता चन्दा देने को तैयार नहीं ।

**नाक में दम भरना**—(घबड़ा जाना)–इस लड़के के मारे मेरी नाक में दम आ गया है ।

**नेकी और पूछ पूछ**–(अच्छे काम के लिए सम्मति लेना)–राजाराम के घर भोज था । कल्लू भोजन कर रहे थे । राजाराम ने कल्लू से पूछा भाई और लड्डू ? इतने में मंसाराम बोला नेकी और पूछ पूछ ।

**नानी मर जाना**—(प्राण सूख जाना)—जर्राह को देखते ही मरीज की नानी मर जाती है ।

**नाम उछालना**—(बदनामी करना)—तुम इस प्रकार का काम न करो जिससे तुम्हारे वंश का नाम उछाला जावे।

**नाम धराना**—(बदनामी कराना)—हीरालाल अपने इस काम से नाम धरा रहा है।

**नाम को मरना**—(नाम के लिए सब कुछ करना)–कितने लोग नाम के लिए मरते हैं।

**नाम पर धब्बा लगना**—(बदनाम होना)–रामदेव ने मरते समय अपने बेटे से कहा 'देखो बेटा, हमारे नाम पर कभी किसी काम से धब्बा मत लगाना।'

**पहाड़ फूँक से उड़ाना**—(बहुत बड़ी चीज को आसानी से नष्ट करने का प्रयत्न करना)–क्या तुम पहाड़ फूँक से उड़ाने चले हो

**पट्टी पढ़ाना**—(मूर्ख बनाना)—बहुतेरे लड़के शिक्षकों को पट्टी पढ़ाते हैं।

**पाँव जमीन पर न रखना**—(बहुत गर्व करना)—जब से उसका विवाह हुआ है, उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ते।

**पाँव फैलाना**—(विस्तार करना)—उतना ही पाँव फैलाओ जितनी चादर हो।

**पाला पड़ना**—(काम पड़ना)—अब तो देखना है कि किससे पाला पड़ा है।

**पाला पड़ना**—(मुरझा जाना)—सिंह को देखते ही हिरनों के झुण्ड पर पाला पड़ गया है।

**पानी में आग लगना**—(अकारण झगड़ा लगाना)—मोहन तुम ऐसे दुष्ट हो कि सदा पानी में आग लगाते हो।

**पानी पड़ना**—(शर्म करना)–इस बात से उसपर घड़ों पानी पड़ गया।

**पानी ढलना**--(निर्लज्ज बनना)--कितने लोग इतने निर्दयी होते हैं कि दीनों को देखकर जरा भी नहीं पसीजते। ऐसे लोगों की आँखों का पानी ढला हुआ होता है।

**पानी भरना पड़ा**--(हार मानना)--दुर्योधन ने कहा यदि यदि मैं धृतराष्ट्र का पुत्र हूँ तो पाण्डवों से पानी भराकर छोड़ूँगा।

**पानी पानी होना**—(लज्जित होना)—मेरी विद्वत्ता देखकर मेरे प्रतिद्वन्द्वी पानी पानी हो गये।

**पीछे पैर नहीं देना**—(भागना नहीं)—नैपोलियन ने कहा, 'वीरो! पीछे पैर नहीं, देना नहीं तो लड़ाई हार में बदल जावेगी।'

**पैरों तले से जमीन निकल जाना**—(घबरा जाना)—शेर को देखते ही शिकारी के पैर तले से जमीन निकल गई।

**पौबारह होना**—(सब प्रकार लाभ)–इस समय इस आदमी की तो पौबारह है। हमलोग देखते ही रह गए।

**पत्ता न खड़कना**—(निर्णय होना)–दुर्योधन ने जयद्रथ से कहा—चिन्ता किस बात की कर रहे हो। यहाँ पाण्डवों का पत्ता तक भी नहीं खड़क सकता।

**पत्थर का कलेजा करना**—(कठोर होना)–दशरथ ने कहा मेरा कलेजा तो पत्थर का है जो राम के चले जाने पर भी नहीं फटा।

**पत्थर की लकीर होना**—(अमिट होना)–मेरी बात पत्थर की लकीर है।

**पत्थर में जोंक लगना**—(असम्भव बात करना)–मालवीय जी ने बहुतेरे कंजूसों से रुपया माँग लिया। इस प्रकार उन्होंने पत्थर में जोंक लगाई।

**पत्थर पड़ना**—(कुछ न सूझना)—तुम्हारी अक्ल में पत्थर पड़ गया है। तुम इस काम को नहीं कर सकते।

**पर काट देना**—(असमर्थ कर देना)—गोपाल ने कहा—मैंने गनेश को इस मुकदमे में लड़ा कर उसका पर काट लिया।

**पलक पाँवड़े बिछाना**—(अत्यन्त श्रद्धा करना)—कितने लोग इतने विनयी होते हैं कि अतिथियों के आने पर पलक पाँवड़े बिछाने लगते हैं।

**पासंग होना**—(अत्यन्त तुच्छ होना)-रामनरेश ने देवनाथ से कहा, तुम मेरे लड़के की बराबरी क्या करते हो, तुम उसके पासंग भी तो नहीं हो।

**पहाड़ टूट पड़ा**—(एकाएक बड़ी विपत्ति आ जाना)—हम पर इस तरह का पहाड़ कभी नहीं टूटा था।

**पाँचों सवारों में नाम लिखाना**—(औरों के साथ अपने श्रेष्ठ बनना)—दो रुपये चन्दा देकर आप भी प्रबन्धक बन बैठे। इसी को कहते हैं पाँचों सवारों में नाम लिखाना।

**पापड़ बेलना**—(कठिन परिश्रम न करना,-इतने दिन क्या पापड़ बेलते रहे जो कुछ भी पैदा नहीं कर सके।

**पाँव की जूती**—(अत्यन्त दीन)—तुम तो आजकल अपनी स्त्री के पाँव की जूती हो रहे हो।

**पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं**—(एक वर्ग की सभी वस्तुएँ समान गुणवाली नहीं होतीं)—रामदास के पाँचों लड़कों में हीरा नालायक है। सच है, 'पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं'।

**पीठ पर होना**—(सहायक होना)—आजकल हमारी पीठ पर कोई नहीं है।

**पेट में ही दाढ़ी होना**—(कम उम्र से ही अधिक बुद्धिमान होना)—आजकल के लड़कों की बातें सुनकर यही कहना होता है कि इनके पेट में दाढ़ी है।

**फूँक निकल जाना**—(प्राण निकल जाना)—देखते देखते शोभाराम की फूँक निकल गई।

**फूँक फूँक कर पैर रखना**—(सोच समझ कर काम करना)—भाई! आजकल हमें फूँक फूँक कर पैर रखना है। हमारे दुश्मन सदा हमारी ताक में हैं।

**फूटी आखों न भाना**—(तनिक भी अच्छा न लगना)—सौतेली माँ को दूसरे लड़के फूटी आँखों भी नहीं भाते।

**फूल झड़ना**—(अच्छा लगना)—तुम जब बोलते हो तो तुम्हारे मुख से फूल झड़ने लगते हैं।

**फूल सूँघकर रहना**—(बहुत कम खाना)—मोहन ने जब हीरा से कहा, 'मैं तो एक ही रोटी खाता हूँ,' तो हीरा बोला, 'हाँ भाई, तुम तो फूल सूँघ कर रहते हो।'

**बहती गंगा में हाथ धोना**—(अवसर से लाभ उठाना)—बुद्धिमान लोग सदा बहती गंगा में हाथ धोया करते हैं।

**बनने के सब साथी**—(भले दिन में सभी मित्र होते हैं)—रामलाल की गरीबी में कोई दरवाजे पर नहीं फटकता; सच है बनने के सब साथी।

**बारह बाट होना**—(नष्टभ्रष्ट हो जाना)—हमारी सब सम्पत्ति इन दुष्टों के फेर में पड़ने से बारह बाट हो गई।

**बाल बाँका न होना**—(तनिक भी हानि न होना)—तुम हमारे साथी हो, तुम्हारा बाल बाँका न होगा।

**बाल की खाल निकालना**—(बड़ी छानबीन करना)–सौदागर ने ग्राहक से कहा, ( भाई ! हमारे यहाँ आकर बाल की खाल मत निकाला करो )।

**बावलों के गाँव में ऊँट आया**—(अज्ञानियों को साधारण वस्तु बड़ी मालूम होती है)—किसी भी गाँव में एक जादूगर बावले गाँव में ऊँट की तरह होता है।

**बावन तोले पाव रत्ती**--(बिलकुल ठीक)--तुम्हारी बात बावन तोले पाव रत्ती है।

**भाँय भाँय करना**—(सुनसान लगना)—छुट्टियों में जब विद्यार्थी स्कूल नहीं आते तो स्कूल भाँय भाँय करता है।

**भींगी बिल्ली बनना**—(चुपचाप हो जाना)–यह लड़का पहले तो बड़ा चिल्लाया करता था, पर आपके आते ही भींगी बिल्ली बन गया।

**मरता क्या न करता**--(जब जानपर आ जाती है तो सब कुछ होता है)—भाई हमको सताओगे तो हम तुमको एक दिन गोली से दाग देंगे, आखिर मरता क्या न करता।

**मान न मान मैं तेरा मेहमान**—(किसी के सर जबरदस्ती जड़ना)—भाई मैं आपको पंच नहीं चुनता, फैसला देने को उतावले क्यों हो रहे हो। मान न मान मैं तेरा मेहमान की बातें यहाँ नहीं चल सकतीं।

**मिल गये तो हर गंगा**—(मिले तो भी ठीक न मिले तो भी)—मैं दिल्ली जा रहा हूँ; यदि श्यामलाल मिल गए तो हर गंगा !

**मिट्टी छूते सोना**—(किसी काम को हाथ में लेते ही अधिक लाभ होना)—आजकल हीरालाल का क्या पूछना, वह यदि मिट्टी भी छू देता है तो सोना हो जाता है।

**मीठी और भर कठौती**—( अच्छी वस्तु सस्ते में प्राप्त करना)--गोकुल ने कहा मैंने यह लगँड़ा आम दो रुपये हजार में खरीदा है। इतने में जगन्नाथ कहने लगा कि यह गप है मीठी और भर कठौती !'

**मीठी लपलप कड़वा थू थू**—(अच्छी वस्तु ले लेना, खराब न लेना)—रामलाल और श्यामलाल जब अपने पिता की सम्पत्ति बाँटने लगे तो दो हजार कर्ज भी बाँटना था। रामलाल ने कहा मैं इसे न लूँगा। तब श्यामलाल ने कहा, 'वाह ! मीठा लपलप कड़वा थू थू।'

**मुँह पर मुहर लगाना**—(चुप करना)–हेडमास्टर साहब के आते ही लड़के मुँह पर मुहर लगा बैठ जाते हैं।

**मुँह लगाना**—(अधिक परिचित कर लेना)—मटरू लड़का आजकल सब शिक्षकों के मुँह लग गया है, यह ठीक नहीं है।

**मुँह माँगी मौत**—(चाही हुई बात)—ग्राहक ने दुकानदार से कहा अरे कुछ दाम कम कर दो, ऐसा क्या मुँह माँगी मौत भी तो नहीं मिलती, फिर आप तो माल बेचने के लिए बैठे हैं।

**मुँह काला होना**—(बदनामी होना या दोष लगना)—इस अफवाह से गाँववालों का मुँह काला हो रहा है।

**मुँह फक होना**—(हवाइयाँ उड़ना)—जब सेठजी ने सुना कि दुकान में आग लग गई, तब उनका मुँह फक हो गया।

**मुँह में पानी भर आना**—(लालच होना)–इस महँगाई में कितने लोगों को खाने-पीने की वस्तुएँ नहीं मिल पातीं। प्रायः बहुतों के मुँह में उनके देखने पर पानी भर आता है।

**मेढ़की को जुकाम**—( छोटे आदमी का बिगड़ना )–गरीब

दास भी अब मुझसे झगड़ने लगा है, क्यों न हो मेढकी को भी जुकाम कभी-कभी हो जाता है।

**मोची के मोची रहे**—(जैसे के तैसे रहे)—बारह वर्ष तक कपड़ा बुने, पर एक तौलिया भी ठीक से नहीं बना सकते, तुम मोची के मोची ही रहे।

**माथा ठोंकना**—(तकदीर को बुरा कहना)—देवनाथ ने जब सुना कि उसके ही लड़के ने गाँव में आग लगाई है, तब वह अपना माथा ठोंकने लगा।

**माथा ठनका**—(कुछ विलक्षण घटना के होने का अन्देशा होना)—इस बात को सुन कर उसका माथा ठनका और वह कुछ देर खड़ा सोचता रहा।

**रस्सी जल गई पर बल न गए**—(खराब हालत होने पर भी अकड़ना)-देवचन्द्र ने कहा—'राधेलाल को मैंने इस मुकदमे में परास्त कर दिया, पर अब भी जब मिलता है मूँछों पर ताव देते हुए। आखिर रस्सी जल गई पर बल न गया।'

**राई का पर्वत होना** (थोड़े का बहुत होना)—भगवान की कृपा से मेरे घर में राई का पर्वत हो गया है। अब किसी बात की कमी नहीं है।

**रीछ का बाल भी बहुत है**—(कंजूस से थोड़ा भी मिलना बहुत है)—तुमने रामनाथ लोहार से एक आना चन्दा वसूल ही लिया न, चलो रीछ का बाल भी बहुत है।

**रोना तो यही है**—(सच बात)-भाई इन लड़कों के बारे में रोज का रोना यही है कि ये ठीक समय पर स्कूल नहीं जाते।

**रोटियाँ लगना**—(घमण्ड करना)-इन लड़कों को माया के घर की रोटियाँ लग गईं। तभी ये बढ़-बढ़ कर बातें कर रहे हैं।

**लुटिया डुबाना**—(बहुत बदनामी कराना)-तुमने तो इस वंश की लुटिया ही डुबो दी। तुम्हें यहाँ विवाह नहीं करना चाहिए था।

**लोहे के चने चबाना**—(कठिन काम करना)-राजपूतों का सामना करना यवनों के लिये लोहे के चने चबाना था।

**लोहा मानना**—(आधिपत्य मानना)-आखिर नारायण साहु हमारा लोहा मान गए।

**लेने का देना पड़ना**—(लाभ के बदले हानि होना)-इस मुकदमे में इसकी ऐसी करारी हार हुई कि बच्चू को लेने के देने पड़ गए।

**लगाम लिए फिरना**—(ढूँढ़ना)—क्या तुम उसके फेर में अब तक लगाम लिए फिर रहे हो?

**विष की गाँठ होना**—(खराबी का कारण होना)—यह लड़की इस गाँव के लिए विष की गाँठ हो गई।

**शहद की छुरी**—(मीठी मार मारना)—भाई तुम शहद की छुरी चलाना खूब जानते हो।

**शहद लगाकर चाटना**—(व्यर्थ होना)-अब तुम इस काम को शहद लगा कर चाटो।

**सर पड़ना**—(नाम लगना या मत्थे पड़ना)—गाली किसने दी, मार किसके सर पड़ी।

**सर मूड़ना**—(ठगना)-अगर मैंने तुम्हारा सर न मूड़ा तो मेरी जात में फर्क होगा।

**सर पटकना**—(बहुत प्रयत्न करना)-सर पटक कर मर जाओगे तो भी मैं तुम्हारा कार्य न करूँगा।

**सर सेहरा होना**—(सफलता मिलना)–इस वर्ष में विजय का सेहरा हमारे ही सर ही रहा।

**सर पर भूत चढ़ना**—(किसी काम को करने की धुन होना)–आजकल बाबूजी के सर पर भूत चढ़ गया है, जब देखो पढ़ो-पढ़ो का ही रट लगाये रहते हैं।

**सर पर आसमान उठाना**—(बहुत बड़ा अन्धेर करना)–इतने छोटे से काम के लिये आपका सर पर आसमान उठाना ठीक नहीं है।

**सर मुड़ाते ओले पड़ना**—(काम प्रारम्भ करते ही घाटा होना)–उसे व्यापार प्रारम्भ करते ही दो हजार का घाटा हो गया। बिचारे के सर मुड़ाते ओले पड़े।

**सूख कर काँटा होना**—(चिन्ता के कारण दुर्बल हो जाना)–लड़के के अफसोस में देवनारायण सिंह सूख कर काँटा हो गए।

**सोने में सुगन्ध होना**—(सब प्रकार से अच्छा होना)–वह लड़का तेज है पर आलसी है। यदि आलसी न होता तो फिर सोने में सुगन्ध थी।

**स्याह सफेद करना**—(अच्छा बुरा करना)–जो कहो स्याह सफेद कर दूँ। आजकल मैं ही दुकान का मालिक हूँ।

**हाथ के तोते उड़ता**—(बहुत घबड़ाना)—जब उनकी गठरी गाड़ी में गुम हो गई, तब उनके हाथों के तोते उड़ गए।

**सर्राफे के टके**—(खरा सौदा)—भाई मेरा कार्य तो सर्राफे के टके की तरह है। जब चाहे रुपया निकल सकता है।

**सिक्का बैठना**—(रोब जमना)–मेरा सिक्का यहाँ के सब विद्यार्थियों पर बैठ गया है।

**सितारा चमकना**—(भाग्योदय होना)-इस समय बहुत से मूखों का महँगाई के कारण सितारा चमक उठा है।

**सात पर्दों में रखना**—(बहुत सम्हाल कर रखना)-उसने इस लड़के को सात पर्दों में रखा था, पर पुलिस ने इसका पता लगा ही लिया।

**सर पर पाँव रख कर भागना**—(बहुत जल्दी भागना)-वह दुकानदार इस शहर से ऐसा सर पर पाँव रख कर भागा कि उसका आज तक पता न लगा।

**हथेली पर सर रखना**--(मरने से न डरना)---लड़ाई में बहादुर हथेली पर सर रख कर लड़ते हैं।

**हाथ मल के रह जाना**—(पश्चाताप करना)-गाड़ी के छूट जाने पर मुसाफिर हाथ मलके रह जाते हैं।

**हाथ खींच लेना**-(किसी काम से अलग हो जाना)-जबसे रामदास ने उस दुकान से हाथ खींच लिया, एक भी ग्राहक वहाँ नहीं दिखाई पड़ता।

**हाथ डालना**—(किसी काम में लगना)—जब से मैंने उस काम में हाथ लगाया तब से झंझट में फँस गया हूँ।

**हाथ कटना**—(अधिकार खो देना)-तुम हस्ताक्षर करके अपना हाथ ही कटा बैठे।

**हाथ खाली होना**—(कुछ न होना)—आजकल एक पैसा भी नहीं है, इसी से हाथ खाली है।

**हाथ पर हाथ धरे बैठना**—(बिना काम बैठना)-भाई, तुम हाथ पर हाथ धरे बैठोगे तो फिर हम तो लुट गए।

**हाथ चलाना**—(मारना)-किसी निरपराध पर हाथ चलाना ठीक नहीं होता।

**हवा में बातें करना**—(बहुत तेज दौड़ना)—यह घोड़ा हवा से बातें करता है।

**हवा लगना**—(कुप्रभाव में आना)—सोहन तुम्हें भी क्या इस शहर की हवा लग गई?

**हाथ हिलाते आना**—(छूँछे हाथ आना)—मेले में गए और हाथ हिलाते आए, यह ठीक नहीं है। कुछ तो लेते आना चाहिये था।

# अपठित तथा पर्यायवाची शब्द

( १ )

आर्य सभ्यता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इह लोक तथा परलोक में सर्वाङ्गीण उन्नति तथा परम अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति बतलाया गया है। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान से मुक्त कर दे–'सा विद्या या विमुक्तये'। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में 'अध्यात्मविद्या विद्यानां' कह कर उसी के सिद्धांत का समर्थन किया है। इसी उद्देश्य से आर्य-जाति के पवित्र हृदय और समदर्शी त्रिकालज्ञ ऋषियों ने चार आश्रमों की सुन्दर व्यवस्था की थी। ब्रह्मचर्य के कठोर नियमों का पालन करता हुआ ब्रह्मचारी विद्यार्थी संयम की व्यवहारिक शिक्षा के साथ ही लौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी विद्याओं को पढ़कर सब प्रकार से शरीर, मन और वाणी से स्वच्छ एवं संयमी होकर गुरुकुलाश्रम से निकलता था और तब वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर क्रमशः जीवन को और भी संयमी तथा त्यागमय बनाता हुआ अन्त में सर्वत्याग करके परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाता था। यही आर्य संस्कृति का स्वरूप था।

प्रश्न

१. आर्य-सभ्यता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?
२. ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों के कार्य बताओ।
३. उपर्युक्त अवतरण का सारांश लिखो।
४. बड़े अक्षरों में लिखे पदों की व्याख्या करो।

( २ )

'स्वावलम्बी की सहायता ईश्वर करता है' इस कथन की सत्यता अनुभवपूर्ण है। **स्वावलंबन का बीज व्यक्ति में सच्ची तथा वास्तविक उन्नति का मूल है।** बहुतों के जीवन में इसका उदाहरण मिलता है। **बाह्य-सहायता परिणाम में दुर्बल होती है जब कि स्वयं कार्य करने से कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से होता है।** दूसरों के सहारे सदा रहने से आत्मविश्वास, आत्म-निर्भरता, साहस एवं उद्योग ऐसे गुण नहीं प्राप्त हो सकते, बल्कि उल्टे ही व्यक्ति पराधीनता एवं दुर्बलता का अनुभव करेगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति को इस दैवी गुण से लाभ उठाना चाहिए।

प्रश्न—

१. उपर्युक्त अवतरण का सारांश लिखो।
२. बड़े अक्षरों में मुद्रित पदों का अर्थ लिखो।
३. स्वावलंबन से किस प्रकार आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, साहस तथा उद्योग उत्पन्न होते हैं।
४. पदव्याख्या करो—बाह्य, दुर्बलता, स्वयं, सुचारु।

( ३ )

प्रायः सभी महान् पुरुषों में, जो उन्नति के चरम लक्ष्यों को प्राप्त कर चुके हैं, मनोबल पर्याप्त मात्रा में भरा था। दृढ़-प्रतिज्ञ होकर जो भी व्यक्ति कार्य कर रहा है, अवसरों पर दृष्टि लगाए रहता है, उसे अपने उत्थान का साधन बनाता है, **अपने अनुभवों के आधार पर जीवन-चित्र रँगता है, हृदय-द्वार को प्रत्येक सद्गुणों के लिये खुला रखता है,** जिससे उसे सदा आगे बढ़ने में उत्साह मिले, वह युवक निश्चय ही

जीवन सफल बना सकता है, इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। भाग्य-चक्र के महान् थपेड़े भी उसे अभीप्सित स्थान की प्राप्ति से नहीं रोक सकते।

प्रश्न

१. बड़े अक्षरो में मुद्रित पदों का अर्थ सरल भाषा में लिखो।
२. मनोबल से क्या समझते हो? इस पर प्रकाश डालो।
३. कुछ ऐसे महापुरुषों के नाम बताओ जो मनोबल द्वारा जीवन में आगे बढ़े हैं।
४. उपर्युक्त गद्य का सारांश लिखो।

( ४ )

समस्त जीवराशि का निरन्तर कोलाहल इस नाट्यशाला का संगीत है। एक ओर हर्ष ध्वनिपूरित 'हर्ष निस्वन', दूसरी ओर क्लेश और करुणा से भरी हुई रोने की आवाज तथा जीव-धारी रूपी अद्‌भुत् यंत्र की अनोखी तान दर्शकों के मन में एक ही साथ हर्ष और शोक में मिला हुआ अनिर्वचनीय भाव पैदा करती है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, सरित, समुद्र, अभ्रंलिह अत्युच्च शिखरवाले हिम-धवलित पर्वत इत्यादि कारण-सामग्री लाखों वर्ष की पुरानी हो जाने पर भी उसके द्वारा जो अभिनय दिखलाए जाते हैं वे सब नए और टटके से टटके होते हैं।

प्रश्न—

१. यह संसार एक नाट्यशाला कैसे है?
२. इस अवतरण का सारांश लिखो।
३. बड़े अक्षरों में मुद्रित पदों का अर्थ सरल भाषा में लिखो।

( ५ )

सामान्य, स्पन्दन, संवेदना, विषय-ग्रहण, सहज प्राकृत तर्क-बुद्धि, आडम्बरमय जीवन, शाब्दिक ज्ञान, विषयासक्ति, बाह्य जीवनार्थ कलह, भेदबुद्धि, स्वार्थ का मोह, स्वरूप की विस्मृति, पशुवृत्ति और महापतन इतने सारे दोष आज की शिक्षा के परिणामतः दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज का शिक्षितवर्ग पशु का चोंगा पहने दानव बना हुआ है। छलछद्म, असत्यता, दम्भ और पाषाण-हृदयता, जितना इनमें देखने को मिलेगा, अन्यत्र नहीं। वस्तुतः यह दोष शिक्षा का नहीं है, वरन् पात्र का है। अनाधिकारी के हाथ में विद्या जाने से यही होता है। इसीलिये पहले विद्यादान के समय शिष्य की परीक्षा होती थी, पर अब तो समय बदल गया है।

प्रश्न—

१. शिक्षित वर्ग में कौन कौन दोष हैं? उनका परिहार किस प्रकार हो सकता है?
२. 'पशु का चोंगा पहने मानव बना हुआ है' इस भाव को स्पष्ट करो
३. 'अनाधिकारी के हाथ में विद्या' का क्या तात्पर्य समझते हो?
४. बड़े अक्षरों में मुद्रित पदों का अर्थ लिखो।

( ६ )

दुःख के वर्ग में जो स्थान भय का है वही स्थान आनन्द वर्ग में उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत वस्तु स्थिति के निश्चय से विशेष रूप से दुखी और कभी कभी इस स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान होते हैं। उत्साह में हम आने-वाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निश्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म-सुख की उमंग में प्रयत्नवान होते हैं। उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ साथ कार्य में प्रवृत्त होने के आनंद का योग रहता है। साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है।

प्रश्न

१. उपर्युक्त अवतरण का सारांश लिखो।
२. उत्साह का क्या मतलब समझते हो?
३. कर्म और कर्म के उपासक से क्या समझते हो?
४. निम्नलिखित में समास बताओ—
गजानन, बारबार, मनगढ़न्त, चन्द्रमुख, मनोमालिन्य।

( ७ )

किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण और शक्ति का विकास देख उनके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं।

**श्रद्धा में महत्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ साथ पूज्य बुद्धि का सञ्चार है।** यदि हमें निश्चय हो जायगा कि कोई मनुष्य परोपकारी, बड़ा वीर, बड़ा सज्जन, बड़ा गुणी, बड़ा दानी, बड़ा विद्वान्, बड़ा धर्मात्मा है तो वह हमारे आनन्द का एक विषय हो जायगा। हम उसका नाम आने पर प्रशंसा करने लगेंगे। उसे सामने देख आदर से सिर नवाएंगे। किसी प्रकार का स्वार्थ न रहते हुए भी हम सदा उसका भला चाहेंगे। उसकी बढ़ती से प्रसन्न होंगे और **अपनी पोषित आनन्द-पद्धति में व्याघात पहुँचने के कारण** उसकी निन्दा सह न सकेंगे। इससे सिद्ध होता है जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार को वाञ्छित है। **यही विश्व-कामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।**

प्रश्न

१. श्रद्धा का रूप स्पष्ट लिखो।
२. पुष्टाक्षरों में मुद्रित पदों का अर्थ लिखो।
३. अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करो।

## ( ८ )

संकल्प या प्रवृत्ति हो जाने पर बुराई से बचानेवाले तीन मनोविकार हैं। सात्विक वृत्तिवालों के लिए ग्लानि, राजसी वृत्ति वालों को लिये लज्जा और तामसी वृत्तिवालों के लिये भय। जिन्हें अपने किए पर ग्लानि नहीं हो सकती वे लोग लज्जा से, जिनमें कोमल भाव का लेश नहीं रहता वे भय से बहुत कामों को करते हुए हिचकते हैं। प्रायः कहा जाता है कि बहुत से लोग इच्छा रखते हुए भी बुरे काम लज्जा के मारे नहीं करते। पर लज्जा का अनुभव एक प्रकार से दुःख का ही अनुभव है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि कर्म न करने पर भी अपनी इच्छा मात्र पर उन्हें दुःख होता है क्यों कि यदि ऐसा होता तो वे इच्छा रखते ही क्यों ?

### प्रश्न

१. लज्जा द्वारा बुरा काम किस प्रकार नहीं हो पाते ?
२. लज्जा कब नहीं होती।
३. आत्मग्लानि और लज्जा का सम्बन्ध बताओ ?
४. उपर्युक्त अवतरण का सारांश लिखो।

## ( ९ )

लोभ का प्रथम संवेदनात्मक अवयव है किसी वस्तु का बहुत अच्छा लगना, उससे बहुत सुख या आनन्द का अनुभव होना, अतः वह आनन्द का स्वरूप है। किन्तु केवल इस अवस्था में लोभ की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती। कोई वस्तु हमें बहुत अच्छी लगी, किसी वस्तु से हमें बहुत सुख या आनन्द मिला इतने पर ही दुनिया में यह नहीं कहा गया कि हमने लोभ किया। जब संवेदनात्मक अवयव के साथ इच्छात्मक अवयव का संयोग होगा अर्थात् जब उस वस्तु को प्राप्त करने की, दूर न करने की, नष्ट

न होने देने की, इच्छा प्रकट होगी तभी हमारा लोभ दूसरों पर खुलेगा। इच्छा, लोभ या प्रीति का ऐसा आवश्यक अंग है कि यदि किसी को कोई बहुत अच्छा या प्रिय लगता है तो लोग कहते हैं कि 'वह उसे चाहता है'।

प्रश्न

१. लोभ का पता दूसरों को कब लगता है ?
२. इच्छा और लोभ में क्या भेद है ?
३. सन्धि-विच्छेद करो—एकैक, महार्णव, महौषधि, प्रत्येक और विद्यार्थी।

( १० )

प्रलंयकारी तूफान से प्रताड़ित सरोवर की उर्मियाँ कूल का आश्रय लेने आती हैं, पर वहाँ भी उन्हें टकराना ही होता है। वहाँ से निराश होके पुनः दूसरे छोर को चल पड़ती हैं। विश्राम-स्थल की अज्ञानावस्था ही उन्हें सुखदायी होती है। यदि उन्हें ज्ञात हो जावे कि इस मरु-मरीचिका में वह स्थान ही नहीं है जहाँ विश्राम एवं शान्ति मिले तो शायद उनका वेग शिथिल और प्रयास मन्द पड़ जावे। **क्या ही प्रवंचना तथा प्रतारणा है !**

प्रश्न

१. उपर्युक्त अवतरण के भाव स्पष्ट करो !
२. 'विश्राम-स्थल की अज्ञानावस्था ही सुखदायी होती है' इसकी विवेचना करो।
३. पुष्टाक्षरों में मुद्रित पदों का अर्थ स्पष्ट करो !

( ११ )

अधिकार-सम्बन्धी अभिमान में सामर्थ्य का अनौचित्य अधिक होता है। यदि अधिकार के अनुचित उपयोग की सम्भावना दूर कर दी जाय तो स्थान स्थान पर अभिमान की जमी हुई मैल साफ

हो जावे और समाज के कार्य-विभाग चमक जावें। यदि समाज इस बात को सदा याद रक्खे कि पुलिस के ऑफिसर उन्हीं लोगों को कष्ट दे सकते हैं जो दोषी हैं, माल के ऑफिसर उन्हीं लोगों को क्षतिग्रस्त कर सकते हैं जो कुछ गड़बड़ करते हैं, तो उन्हें शेष लोगों पर जो निर्दोष हैं, जिनका मामला साफ़ और जिन्हें हर घड़ी काम पड़ता है—अभिमान प्रकट करने का अवसर कहाँ मिल सकता है? जब तक किसी कार्यालय में छोटे से बड़े तक सब अपना अपना नियमित कार्य्य ठीक से करते हैं तब तक एक के लिये दूसरे पर अपनी बड़ाई प्रकट करने का अवसर नहीं आता है।

प्रश्न

१. अधिकार का दुरुपयोग किस प्रकार होता है?
२. एक व्यक्ति अपनी बड़ाई कब प्रकट करता है?
३. उपर्युक्त अवतरण पर अपने स्वतंत्र विचार स्पष्ट करो!
५. यदि तुम्हें किसी प्रकार का अधिकार मिल जाय तो उसका उपयोग किस प्रकार करोगे?

( १२ )

अहंकार के कुफल के सम्बन्ध में सभी नीति-शास्त्र हमें सतर्क किया करते हैं। अहंकार से लोगों का पतन क्यों होता है? प्रथम कारण तो यह है कि अपने बड़प्पन पर अति विश्वास रहने से लोग दूसरों को ठीक तरह से नहीं जान सकते। जिस संसार में दस आदमियों के साथ रहना और काम करना पड़ता है वहाँ तभी सब विषयों में सफलता मिलनी सम्भव है, जब हम अपनी तुलना से दूसरों को यथार्थ रूप में जान सकें। चीन देश आत्माभिमान की प्रबलता के कारण जापान को नहीं पहचान सका। इसी से उसकी अकस्मात् दुर्गति हुई। जर्मनी से युद्ध होने के पूर्व फ्रान्स की भी वही हालत हुई थी और हमारे देश में

प्रसिद्ध ही है कि 'अतिदर्पेण हता लङ्का'। अँग्रेजी में एक प्रवाद प्रचलित है कि ज्ञान ही बल है। क्या घर में, क्या कार्य क्षेत्र में दोनों ही जगह दूसरों के सम्बन्ध में ठीक ज्ञान होना हमारा प्रधान बल है और अहंकार उस ज्ञान के विषय में अज्ञानता लाकर हमारी दुर्बलता का प्रधान कारण हो जाता है। अहंकार में एक और विपत्ति है, वह संसार को हमारे प्रतिकूल खड़ा करता है। कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो वह संसार के निकट नाना विषयों में ऋणी होता है, अतएव जो उस ऋण को विनयपूर्वक स्वीकार करना नहीं चाहता है उसके लिये आगे ऋण मिलना कठिन हो जाता है।

प्रश्न

१. अहंकार के दोष बतलाओ।
२. अहंकार के द्वारा हमारी अवनति किस प्रकार होती है?
३. उपर्युक्त अवतरण का सारांश लिखो!

( १३ )

आज जो अतृप्त उद्दाम वासनाएँ विषय के आसन पर बैठने-बिठाने के लिए हमारे राष्ट्र की शिक्षित महिलाओं को सदा ही दंश दे रही हैं, जिनके विषय से उनका **स्वर्णोज्वल शृंगार-शरीर प्रतिदिन स्याह पड़ता जा रहा है,** इसका कारण वास्तव में यह है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के विशद उपायों को ही वे भूल गई हैं। वे इतनी बहिर्मुख तथा दूसरे राष्ट्रों की ऐश्वर्यवती महिलाओं के रूप-रंग, हाव-भाव, केश-वेश आदि की ओर बढ़ी हुई हैं कि उन्हें अपनी आत्मा की ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। दर्पण में अपने ही चित्रों को वे दूसरी स्त्रियों के चित्रों में कल्पित-कर देखती हैं और उस मानसिक आदर्श से बहुत पीछे रहने के कारण अपने अम्लान रूप के पुष्प को नहीं पहचान पातीं, बल्कि उसे देखकर पाला की मारी हुई फूल की डाल की तरह मुरझा

जाती हैं। यह आत्मिक दैन्य है, जहाँ दृष्टि, **रूपमें नहीं, उसके साधनों पर पड़ती है,** जहाँ अपने ही साथ राष्ट्र की **स्वाधीनसत्ता स्वप्न के छाया-चित्रों की तरह विलीन हो जाती है** और निद्रा क्रमशः प्रगाढ़ होते हुए स्तब्धान्धकार पर सत्य का भान होने लगता है। **मरीचिका सत्य नहीं, सत्य जल ही है, और तृष्णार्त के लिए आवश्यक वही है,** पर मरीचिका की ज्योति, रम्यता तथा आकर्षण अपार एवं अतुल है। **तृष्णा की सताई हुई आत्मा में क्षणिक धैर्य के आये बिना मरीचिका की माया प्रत्यक्ष भी नहीं होती** वह उसी के पीछे भटकना अपना उद्देश्य समझती है।

प्रश्न—

१. उपर्युक्त अवतरण का आशय लिखो।
२. हमारे राष्ट्र की महिलाओं का पतन क्यों हो रहा है?
३. मोटे अक्षरों में लिखे पदों का अर्थ लिखो।
५. समास बताओ—केश-वेश, बहिर्मुख, स्तब्धान्धकार और अतुल।

## ( १४ )

संस्कृत-साहित्य में जो **विधाता की आदि शृङ्गार-सृष्टि,** वनपादपों के पाद-मूल में खड़ी सखियों के साथ आलबालों में जल सींचकर कौतुकालाप करती हुई, महाकवि की कल्पना की उज्ज्वल प्रतिमा शकुन्तला वन्यवल्कलों से अपने पीन पुष्ट भरे-उभरे हुए नवीन यौवनांगों को ढँके सजल-सप्रेम दृष्टि से चतुर्दिक् चंचल हेरती हुई मिलती है, वह केवल नाटक की प्रधान नायिका या पुराणकल्पित पात्री ही नहीं, किन्तु भारतीय राष्ट्र की सर्वोत्तम **आदर्श नारियों की ज्योतिर्मयी साहित्य की प्रधान अभिनेत्री है।** संस्कृत-साहित्य में दूसरी शकुन्तला नहीं है। उसके

सरस-कोमल मधुर उपाख्यान के स्वर्गीय प्रेम का रसास्वादन करने के साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वह तपोवन की तपस्या, प्रेममयी नारी-शिरोमणि शकुन्तला ही उस समय के एकच्छत्र भारत-सम्राट् की जन्मदात्री थी। भारत की सम्राज्ञी, भारत की सम्राट्-माता शकुन्तला के चरित्र में भारत राष्ट्र की आदर्श नारियों को अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं, जिनमें एक ही साथ **अपार रूप तथा अविचल तपस्या, एकनिष्ठ पतिपरायणता** तथा आश्चर्यकर ओज, एक ही देह की द्युति में लावण्य तथा अपार संयम की विद्युत्-शिखा, **अपांगों में अचूक सम्मोहनास्त्र,** तथा अपार धैर्य और शान्ति मिलती है। प्रेम-शृङ्गार जितना ऊँचा, त्याग भी **उतनी दूर तक समानान्तराल रेखा की तरह खिंचा चलता है।** यह तत्कालीन भारत-राष्ट्र की कल्याणी नारीमूर्ति है, जिसे देखकर कामनाएँ आप ही **मुरझा** जाती हैं, **शान्ति के रूप में स्वर्गीय सुख का अनर्गल प्रवाह बह चलता है।**

प्रश्न—

१. इस अवतरण का सारांश लिखो।
२. शकुन्तला के चरित्र से कौन-कौन शिक्षाएँ मिलती हैं ?
३. मोटे अक्षरों में लिखे पदों का अर्थ लिखो।

# तीसरा अध्याय

## पर्यायवाची शब्द

**शङ्कर**—चन्द्रशेखर, पिनाकी, प्रमथाधिप, कपर्दी, श्रीकण्ठ, शिति-कण्ठ, वामदेव, महादेव, धूर्जटी, हर, स्मरहर, त्रिपुरान्तक, गंगाधर, वृषध्वज, भव, रुद्र, उमापति, शिव, शशिनिभ, विश्वनाथ, विश्वेश्वर, काशीपुराधीश्वर, त्रिलोचन, भैरव, आशुतोष, मदनान्तक, शूलपाणि, दिगम्बर, सोम-नाथ, नन्दीश्वर।

**पार्वती**—रुद्राणी, शिवा, भवानी, शर्वाणी, उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवतीश्वरी, सर्वमंगला, दुर्गा, अपर्णा, चंडिका, अम्बिका, दाक्षायणी, आर्या, गिरिजा, मेनकात्मजा।

**गणेश**—विनायक, विघ्नराज, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन।

**लक्ष्मी**—पद्मालया, कमला, हरिप्रिया, श्री, इन्दिरा, लोकमाता, रमा।

**विष्णु**—नारायण, कृष्ण, दामोदर, हृषीकेश, केशव, माधव, दैत्यारि, स्वयंभू, गरुड़ध्वज, गोविन्द, पीताम्बर, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, पुण्डरीकाक्ष, चक्रपाणि, चतुर्भुज, पद्म-नाभ, वासुदेव, पुरुषोत्तम, वनमाली, विश्वम्भर, मुकुन्द, विश्वरूप, जलशायी।

**ब्रह्मा**—आत्मभू, सुरश्रेष्ठ, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, धाता, चतुरानन, विरंचि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, वेधा, विधाता, विधि।

**कामदेव**—मदन, मन्मथ, मार, प्रद्युम्न, मीनकेतन, कन्दर्प, अनङ्ग, पंचशर, स्मर, मनसिज, शम्बरारि, रतिपति, मकरध्वज, उषापति, पुष्पधन्वा।

**अष्टसिद्धियों के नाम**—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

**वज्र**—पवि, कुलिश, अस्त्री, स्वरु, शतकोटि, शम्ब।

**अग्नि**—बर्हि, धनञ्जय, जातवेदा, अभ्रपात, शुष्मा, वृहद्भानु, कृशानु, पावक, वायुसखा, अनल, चित्र, भानु, हुताशन।

**यम**—धर्मराज, पितृपति, समवर्ती, कृतान्त, यमुनाभ्राता, शमन, काल, दण्डधर, श्राद्धदेव।

**राक्षस**—निशाचर, यातुधान, आशठ, निशिचर।

**शरीरस्थित पञ्चवायु**—प्राण (हृदय में), अपान (गुदा में), समान (नाभि में), उदान (कंठ में), व्यान (सब शरीर में)।

**आकाश**—ख, द्यौ, दिवौ, व्योम, अभ्र, अम्बर, पुष्कर, अन्तरिक्ष, नभ, गगन, अनन्त।

**बादल**—जलद, घन, वारिधर।

**चन्द्रमा**—हिमांशु, चन्द्र, इन्दु, कुमुदबान्धव, विधु, सुधांशु, निशापति, शुभ्रांशु, ओषधीश, सोम, कलाधर, शशि, द्विजराज, नक्षत्रेश, मृगांक।

**सूर्य**—अर्यमा, आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, विभाकर, सप्ताश्व, हरिदश्व, उष्णरश्मि, अर्क, मार्तण्ड, अरुण, पूषा, तरणि, चित्रभानु, विरोचन, विभावसु, गृहपति, भानु, सविता, रवि, दिनमणि, अंशुमाली, धामनिधि, कमलपति।

पाँच प्रलय—संवर्त, प्रलय, कल्प, क्षय और कल्पान्त।

**पाप**—पङ्क, किल्विष, कल्मष, कलुष, अघ, दुष्कृत, वृजिनैन।

**शुक्लवर्ण**—शुभ्र, शुचि, विशद, अवदात, सित, गौर, धवल।

**काला**—कृष्ण, असित, श्याम, श्यामल, मेचक।

**सर्प**- भुजग, भुजंग, अहि, आशीविष, विषधर, चक्री, व्याल, सरीसृप, कुण्डली, कामोदर विलेशय, फणी, उरग, पन्नग, भोगी, जिह्मग, पवनाशन।

**समुद्र**—अब्धि, पारावार, सरित्पति, सिन्धु, सागर, अर्णव, रत्नाकर, जलनिधि, यादपति, तोयनिधि, वारीश, नीर निधि, उदधि, पयोधि, नदीश।

**जल**—आप, वारि, सलिल, पय, जीवन, भवन, वन, उदक, पाथ, पुष्कर, अम्भ, अर्ण, नीर, क्षीर, अंबु, शंधर, तोय, पानी।

**लहर**—तरंग, भंग, उर्मि, वीचि।

**मेढक**—भेक, मण्डूक, वर्षाभू, शालूर, प्लव, दादुर।

**गंगा**—विष्णुपदी, जह्नुतनया, भागीरथी, त्रिपथगा, सुरधुनि, तटिनी, त्रिस्रोता, देवनदी।

**कमल**—पद्म, नलिन, अरविन्द, पद्मोत्पल, सहस्रपत्र, शतपत्र, कुशेशय, पङ्केरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, विस-प्रसून, राजीव, पुष्कर, अम्भोरुह, सरोरुह, पंकज।

**समुद्र से निकले हुए चौदह रत्न**—श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, अमिय, शंख, गजराज, कल्पद्रुम, शशि, धेनु, धनु, धनवन्तरि, विष, बाजि।

**भ्रमर**—अलि, षट्पद, भृङ्ग, मधुकर, द्विरेफ।

**पक्षी**—विहग, खग, शकुनि, शकुन्त, द्विज, पतंग, अंडज, नभचर।

**आँख**—नेत्र, नयन।

**तन**—वय, देह, कलेवर, शरीर, विग्रह, काय, मूर्ति।

## एकार्थक शब्दों में प्रभेद

**ईर्ष्या और द्वेष**—दूसरों की बढ़ती देखकर बुरा मानना 'ईर्ष्या' है और यदि किसी कारण से कोई व्यक्ति दूसरे से घृणा करता है और उसकी बुराई करना चाहता है तो वही 'द्वेष' हो जाता है।

**श्रद्धा और भक्ति**—गुणों पर रीझ जाने से किसी बड़े के प्रति जो भाव हृदय में बैठ जाता है वह 'श्रद्धा' है। वही बढ़ते-बढ़ते 'भक्ति' का रूप धारण कर लेती है।

**स्नेह, प्रणय और वात्सल्य**—छोटे के प्रति जो प्रेम का भाव होता है वह 'स्नेह' कहलाता है। स्त्री के प्रति 'प्रणय' एवं पुत्र—शिष्य के प्रति 'वात्सल्य' कहलाता है।

**दया और कृपा**—किसी की दीनदशा पर करुणा करने को 'दया' कहते हैं और छोटों की सहायता करने की इच्छा को 'कृपा'।

**प्रार्थना और निवेदन**—बड़ों से किसी कार्य करने के लिए जो इच्छा प्रकट की जाती है 'प्रार्थना' कहलाएगी। 'निवेदन' में प्रार्थनावाली सब बातें होती हैं पर इच्छा का अभाव रहता है। कार्य करने या न करने का भार,

जिससे निवेदन किया जाता है, उस पर ही छोड़ दिया जाता है।

**आकार और रूप**—'आकार' में किसी चीज की चौड़ाई, लम्बाई और मोटाई आती है पर 'रूप' में लम्बाई-चौड़ाई, वर्ण या रंग, उतार चढ़ाव आदि सभी आते हैं।

**युद्ध और लड़ाई**—'युद्ध' सेनाओं के लिए और 'लड़ाई' साधारणतः प्रयोग में आता है।

**आयु और अवस्था**—आयु में जीवन का सब समय आ जाता है— 'अवस्था' में यह बात नहीं है।

# चौथा अध्याय

# साहित्य का इतिहास

## विषय-प्रवेश

साहित्याकाश के रवि-शशि के ही आलोक में सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक तथा सभी सांसारिक वल्लरियों का संवर्द्धन एवं पोषण होता रहा है। इनके द्वारा प्रदत्त अमृत-चषक के सुधापान से समाज में आनन्द का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, मानव पशुता से ऊपर उठकर भावों के उस क्षेत्र में अपना आसन जमाता है, जहाँ बैठने से विश्व के सभी प्राणियों में एक ही चिदात्मा की अनुभूति होती है। मानव को एक सूत्र में बाँधकर विश्वशान्ति-स्थापनार्थ अन्य कार्य उतने स्थायी नहीं हो पाए हैं जितना साहित्य के महारथियों ने शारदापीठ में बैठकर अपने स्तोत्रों से किया है। उनकी अमर वाणी आज भी हमें तमसाच्छन्न-मोह-निशा में विद्युत् की तरह झलककर पथ दिखला रही है। अतः इस परिस्थिति में साहित्य का ज्ञान वस्तुतः उसी रूप में करना, जिसमें वह है, अत्यावश्यक हो जाता है।

हिन्दी का साहित्य उस अमर वाणी की देन है जिसने विश्व को अपने वैभव से चकित किया है। कालगत विशेषता के कारण भावों का प्रस्फुटन भी उसी प्रकार हुआ है। वैभव-सम्पन्न भारत उसकी रक्षा के लिए वीररस का आवाहन करता है। हार स्वीकार करने पर भगवान् की शरण में जाता है, पुनः वृत्तियों की चंचलता प्राप्त होने पर रीति-काल की शृंगारिक भावनाएँ आती हैं। पर जब जीवन के कठोर, सत्य एवं संघर्ष का सामना करना पड़ता है तब शुष्क एवं गम्भीर आधुनिक युग का काल आता है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य चार कालों में विभक्त है :—

( १ ) **आदि-काल** ( संवत् १०५०–१३७५ )।
( २ ) **भक्ति-काल** ( संवत् १३७५–१७०० )।
( ३ ) **रीति-काल** ( संवत् १७००–१९०० )।
( ४ ) **आधुनिक-काल** ( संवत् १९००–२००८ )

## अपभ्रंश काल

हिन्दी-साहित्य का आदिकाल संवत् १०५० से १३७५ तक माना जाता है। इसके दो भाग हैं, ( १ ) **अपभ्रंशकाल** एवं ( २ ) **वीर गाथाकाल**। यह काल राजा भोज के राजत्वकाल से लेकर हम्मीरदेव के राजत्वकाल तक फैला हुआ है। इस काल में धार्मिक, नीति-विषयक, शृंगारिक और वीर रसात्मक रचनाएँ हुई हैं। चारण कवि एवं राजाश्रित कवि जैसे नीति और शृंगार की रचनाएँ राजाओं को सुनाते थे, उसी प्रकार वीररस की रचनाएँ भी सुनाते थे। इसीलिए इस काल को वीरगाथा काल कहते हैं। इस काल की रचनाएँ कुछ असंदिग्ध और कुछ संदिग्ध हैं। इसकी भाषा अपभ्रंश है जो उस समय के कवियों की भाषा है और वह भाषा, बोलचाल की भाषा से भिन्न है। यह भाषा पूर्ववर्ती कवियों की काव्य-भाषा की परम्परागत रूढ़ियों एवं व्यावहारिक प्रयोगों को लिए हुए है। **शार्ङ्गधर** और **खुसरो** यद्यपि एक ही काल में हुए फिर भी दोनों की रचनाएँ विभिन्न प्रकार की हैं। इससे प्रतीत होता है कि कुछ कवि पुरानी परिपाटी का अवलम्बन करते हुए चल रहे थे और कुछ नवीन का निर्माण करते हुए चल रहे थे। इसी प्रकार **कबीर** एवं **विद्यापति** की भाषाओं में भी अन्तर दिखलाई पड़ता है।

प्राकृत भाषा जब जनता की बोलचाल में आने लगी तभी से अपभ्रंश की रचना प्रारम्भ हुई। प्राकृत का साहित्यिक रूप ही

अपभ्रंश के नाम से विख्यात हुआ। यह नाम पहलेपहल **प्रवरसेन द्वितीय** के शिलालेख में मिलता है, जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन को (वि० सं० ६५० के पहले) संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि कहा है। इस प्रकार अपभ्रंश की रचना विक्रम की सातवीं शताब्दी से प्राप्त होने लगती है। जैन ग्रन्थकार **देवसेन** ने संवत् ९९० में "श्रावकाचार" नाम की पुस्तक दोहे और चौपाइयों में बनाई, इसकी भाषा इस प्रकार की है:—

जो जिण सासण भाषियउ सो **मईक** हियऊ सास।
जो पालई सई भाउ करि सो तरि पावई पास॥

**वज्रयान सम्प्रदाय** के सिद्धों ने भी अपनी अटपटी बानी इस भाषा में सुनाई। उनके कुछ नमूने इस प्रकार हैं:—

जँहि मन पवनन संचरइ रवि ससि नाहिं पवेस।
तहि वा चित विसराम करु सरहे कहिय उवेस॥
घोंर अंध में चन्द-मनि जिमि उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एखु कणे दुरिय असेष होइ॥
जीवनाह जोनउ जरई सो **अजरामर** होइ।
गुरु उपए से विकल भई सो पर धरना कोइ॥

इन सिद्ध योगियों ने अन्तस्साधना पर जोर दिया। इन वज्रयानी सिद्धों की बानी अटपटी एवं रहस्यमयी होती थी। इनकी सांकेतिक भाषा के कुछ स्वरूप इस प्रकार हैं:—

'काया तरुवर पंच बिडाल'।

**पंच बिडाल**—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह

काया रूपी वृक्ष पर बैठे हैं।
'गंगा जमुना माझे बहई रे नाई।'

यहाँ इंगला और पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से शून्य देश की ओर जाने के लिए संकेत है। इनकी इस प्रकार की वाणी 'संध्या' भाषा के नाम से भी कही गई है। इन बानियों से जनता की श्रद्धा शास्त्रज्ञ विद्वानों से हटकर अन्तःसाधनावाले योगियों पर जम गई। वज्रयान पंथ में धीरे धीरे अनधिकारियों के प्रवेश से कुछ विकृति आगई और पंचमकार 'मद्य, मत्स्य, मांस, मंत्र और मैथुन' का अर्थ न समझनेवाले साधकों ने बड़ी-बड़ी भूलें कीं। इन सिद्धों की संख्या चौरासी है। इसके पश्चात् नाथ-सम्प्रदाय भी चला। इन नाथों की संख्या ९ है।

नाथ-सम्प्रदाय ने शिव, शक्ति और साधना पर अधिक जोर दिया। हठयोग के आश्रय में चक्रों के भेदन से ही तत्व की प्राप्ति, इनका उद्देश्य रहा। नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धान्त-ग्रन्थों में ईश्वरोपासना के लिए आडम्बरमय प्रणाली और बाह्यविधान की उपेक्षा की गई है। इन दोनों सम्प्रदायोंमें नीची जाति के लोग थे। अतः जाति-पाँति की ओर उपेक्षा-भाव रखना इनके लिए स्वाभाविक ही था।

सिद्धों और योगियों की रचनाएँ शुद्ध साहित्यिक नहीं हैं। आगेवाले कवियों को भाषा का स्वरूप स्थिर करने में इनकी रचनाओं से सहायता मिली और उसने सामान्य जनता में भी अन्तस्साधना का बीज बोया। इस भाषा ने कबीर आदि भक्ति-कालीन कवियों की 'साखी' और 'रमैनी' की भाषा को स्थिर करने का अवसर दिया तथा निर्गुण-उपासना का मार्ग भी इनको ही ध्यान में रखकर निकाला गया। साहित्य पर इनकी रचनाओं का यही प्रभाव पड़ा। अपभ्रंश-काल के प्रतिनिधि कवि **हेमचन्द्र, जैनाचार्य, विद्याधर, शार्ङ्गधर** इत्यादि हैं। **हेमचन्द्र** की कविता के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं :—

भल्ला हुआ जो मारिया बहिण म्हारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जई भग्गा घरु एन्तु॥

( भला हुआ जो बहिन हमारा कन्त मारा गया। अगर वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी सखियों द्वारा लज्जित होती )।

जो महुँ दिण्णा दिअहड़ा दइए पवसंतेण।
ताण गणंहिए अंगुलिउँ जज्जरियाउ नहेण॥

( जो दिन प्रिय ने प्रवास जाते समय मुझे आने के लिए बतलाया था उन्हें नख से गिनते गिनते, मेरी अंगुलियाँ जर्जरित हो गईं )।

**हेमचन्द्र** ने 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' बनाया। इसके अतिरिक्त व्याकरण के उदाहरणों के लिए 'द्व्याश्रय काव्य' बनाया। इसके साथ में 'कुमारपाल-चरित' एक प्राकृत काव्य भी है। **सोमप्रभसूरि** ने 'कुमारपाल-प्रतिबोध' नामक एक काव्य लिखा जो गद्य और पद्य दोनों में है। इसकी भाषा संस्कृत तथा प्राकृत है। इनके काव्य का स्वरूप इस प्रकार है :—

रावण जायउ जहि दिअहिं दह मुँह एक सरीर।
चिंता बिपतइयहिं जणणि कवणु पियावऊं खीर॥

( जिस दिन दस मुख एक शरीरवाला रावण पैदा हुआ उसी समय उसकी माता चिंता में पड़ गई कि किस मुँह में दूध पिलाऊँ )।

**जैनाचार्य** मेरुतुंग ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक एक संस्कृत-ग्रन्थ बनाया। इसी ग्रन्थ के बीच बीच में अपभ्रंश की भी रचनाएँ हैं। अपभ्रंश का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

जामति पच्छई संपजई सामति पहिली होई।
मुंज भणई मृणालवई बिघन न बेढ़ई कोई॥

( जो मति पीछे प्राप्त होती है, वह पहले हो तो मुंज कहता है कि हे मृणालवती विघ्न किसी को न घेरे )।

**शार्ङ्गधर** की आयुर्वेद-सम्बन्धी पुस्तक 'शार्ङ्गधर-संहिता' को कौन नहीं जानता ? पर इन्हें कवि-हृदय भी प्राप्त था। 'हम्मीर रासो' नामक वीर-गाथा-काव्य जो इन्होंने लिखा है आज-कल अप्राप्य है। 'प्राकृत पिंगल सूत्र' में कुछ इसी प्रकार का वर्णन है जो हम्मीररासो से ही सम्बन्धित है :—

पअ भरदर मरु धरणि तरणि-रह धुल्लिअ झंपिअ।
कमठ पिट्ठ टर परिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ॥
को हे चलिअ हम्मीरबीर गअजुह संजुत्ते।
किअ उकट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छिअ के पुत्ते॥

( चरणों के भार से पृथ्वी दलमल उठी, सूर्य का रथ धूल से ढक गया। कमठ की पीठ तड़फड़ा उठी, मेरु मंदर की चोटियाँ कंपित हुईं। गज-यूथ के साथ वीर हम्मीर क्रुद्ध होकर चले। म्लेच्छों के पुत्र 'हा कष्ट' करके रो उठे और मूर्च्छित हो गए )।

**विद्यापति ने** भी अपभ्रंश में रचना की है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' नामक इनकी दो कृतियाँ प्राप्त हैं।

**विद्यापति** के अपभ्रंश प्राकृत की रूढ़ियों में बँधे नहीं हैं। इन्होंने टकसाली अपभ्रंश का ही स्वरूप दिखलाया है। अपभ्रंश-काल की साहित्यिक भाषा जनता की बोलचाल की भाषा से दूर थी। इसका प्रमाण विद्यापति की रचनाओं में मिल जाता है। उपकार, नगर, विद्या, वचन, उअ, आर, नआ, बिज्जा और बअण के रूप में प्रयुक्त होते थे। ज्यों ज्यों काव्य-भाषा देश-भाषा की ओर अधिक झुकती गई, त्यों त्यों शुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग घटता गया।

# वीर-गाथा काल

( वीर-गाथा-काल सं० १०५०–१३७५ तक )

भारत के इतिहास में यह वह समय था जब भारतीय-गगन-मंडल यवनों के आक्रमण से क्षुब्ध था। भारत का पश्चिमीय भाग भारतीय सभ्यता और बल-वैभव का केन्द्र हो रहा था। उधर की भाषा शिष्ट मानी जाती थी। कवि और चारण उसी भाषा में कविता करते थे। हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल का इतिहास या साहित्य जो प्राप्त है, उसका आविर्भाव उसी भूभाग में हुआ था।

उस प्रान्त के लोगों की चित्तवृत्तियों की छाप इस साहित्य वर्त्तमान है। लड़ने-भिड़ने के इस काल में जो भी रचना हुई या तो शौर्य प्रदर्शन के लिए या बैरियों से लड़नेवाले सिपाहियों को उत्साहित करने के लिए। इस काल के जो कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें खुमानरासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो विशेष प्रकार से उल्लेखनीय हैं। 'रासो' शब्द का सम्बन्ध कुछ लोग 'रहस्य' से बतलाते हैं। पर बीसलदेव रासो में काव्य के सम्बन्ध में 'रसायण' शब्द आया है। इसलिए इसी रसायण शब्द से ही रासो की उत्पत्ति कही जा सकती है। इस काल में हमें वीरगाथाओं का दो रूप प्राप्त होता है, १—प्रबन्ध-काव्य, २—वीर गीत। पृथ्वीराज रासो प्रबन्ध काव्य और बीसल-देव रासो वीर-गीतों का संग्रह है। इन दोनों प्रकार की भाषाओं में कई प्रकार के नमूने देखने को मिलते हैं। इसका मूल कारण यह है कि इन्हें चारण और भाट गाते रहे। इसलिए इनकी भाषा मूल रूप में रक्षित नहीं रह सकी। इस काल के कवियों में राजाश्रय पाकर कविता करनेवालों में निम्नलिखित कवि थे:— बीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्ह, पृथ्वीराज रासो के

रचयिता **चन्दबरदाई, भट्ट केदार, मधुकर** जो जयचन्द के आश्रय में रहते थे और **जगनिक भाट** जो कालिंजर के राजा परमाल के यहाँ रहते थे।

इसके अतिरिक्त वीरगाथा काल में हमें उस काल की असली बोलचाल में कविता करनेवाले कुछ ऐसे भी कवि मिलते हैं जिनकी रचना वीरगाथा काल से भिन्न है। इनमें एक **खुसरो** हैं और दूसरे **विद्यापति**। **खुसरो** की रचना में हमें पश्चिम की बोलचाल के गीतों की परम्परा का स्वरूप दिखलाई पड़ता है। **विद्यापति** की रचनाओं में पूर्वी भाषा का नमूना और भिन्न प्रकार की पदावलियों का स्वरूप मिलता है। इस काल के कवियों का वर्णन इस प्रकार है :—

### ( १ ) चन्दबरदायी ( १२२५–१२४९ )

ये वीरगाथा काल के महाकवि माने जाते हैं। इन्होंने पृथ्वीराज-रासो नामक एक महाकाव्य की रचना की है। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज के ये राजकवि थे और उनके जीवन के सभी कार्यों में आपका अभिन्न सम्बन्ध था। रासो एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन काल के प्रचलित सभी छन्दों का समावेश है जैसे, कवित्त, टूटा, तोमर, तोटक, गाहा और आर्या। 'रासो' में पृथ्वीराज, मुहम्मद गोरी, जयचन्द, संयुक्ता आदि की विशेष कथाओं का वर्णन है। अन्य राजाओं से भी पृथ्वीराज के युद्ध के वर्णन हैं। 'रासो' को यदि ऐतिहासिक घटना के आधार पर देखा जाय तो उसमें बहुत भूलें मालूम होती हैं। बहुत सी काल्पनिक कथाओं तथा असामयिक व्यक्तियों का वर्णन 'रासो' में पाया जाता है। इसका एक यही आधार हो सकता है कि या तो चन्द ने काव्यगत वर्णन जन-श्रुतियों के आधार पर किया हो या अधिक से अधिक व्यक्तियों को भरने की चेष्टा की हो या इस ग्रन्थ के निर्माणकर्ता बहुत से रहे हों, जिन्होंने अपनी रचना को गौर-

वान्वित करने के लिए चन्द के नाम से उसे प्रचलित कर दिया हो।

'रासो' की भाषा कई प्रकार की है। व्याकरण आदि की व्यवस्था कहीं-कहीं पर उसमें बिलकुल नहीं है। किसी-किसी स्थल पर संस्कृत और प्राकृत के अनुस्वारांत शब्दों का अनुकरण पूर्णतया दिखलाई पड़ता है। अपभ्रंश और प्राकृत की पुरानी विभक्तियाँ भी उसमें देखने को मिलती हैं। किसी-किसी स्थल पर हमें आधुनिक भाषा का भी रूप मिलता है। इस तरह हम देखते हैं कि रासो की रचना में विभिन्नता है और उनकी शैलियों में भी अन्तर है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके रचयिता बहुत से लोग रहे हैं।

'रासो' की साहित्यिक विशेषताएँ इसीलिए उच्चकोटि की नहीं हो सकती हैं। फिर भी वीररस का वर्णन अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है। वीर रस का यह छन्द पूर्ण उत्साह से भरा है:—

बज्जिय घोर निसान, ज्ञान चौहान चहूँ दिसि।
सकल सूर सामन्त सँभरि बल जन्त्र मंत्र तिस॥
उट्ठिराज पृथ्वीराज बान मनो लग्ग बीर नट्ट।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनो बीज झट्ट पट्ट॥
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भई सोनधर।
हदि हरसि बीर जग्गे हुलसि होउ रंग नव रत्त वर॥

साहित्य की आदिरचना होने के नाते 'रासो' का स्थान हिन्दी-साहित्य में स्वरक्षित है। वर्णनों की विभिन्नता और शैलियों की अनेकरूपता ने साहित्य-खोजियों के लिए बहुत सा मसाला छोड़ा है। शायद प्रयत्न करने पर 'रासो' की अनेक शैलियों पर प्रकाश डालनेवाले समालोचक भविष्य में कार्य कर पावेंगे।

## ( २ ) विद्यापति

विद्यापति के जन्मकाल एवं जीवनकाल के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। इनके सम्बन्ध में केवल इतना कहा जा सकता है कि ये सं० १४६० में तिरहुत के राजा शिवसिंह के यहाँ वर्तमान थे। इनका अधिकांश जीवन इसी राजा के यहाँ व्यतीत हुआ था। अपनी रचनाओं में इन्होंने इसका उल्लेख भी किया है। इससे प्रतीत होता है कि कवि का राजा से अति निकट का सम्बन्ध था।

सर्वप्रथम जब हम विद्यापति की अपभ्रंश रचना पर विचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि इसमें पूर्वी अपभ्रंश के शब्द विशेष हैं। क्रियाओं आदि के बहुत से रूप पूर्वी हैं। प्राकृत की शब्दावलियाँ इनमें कम पाई जाती हैं। अधिकतर उनमें देशभाषाओं का बाहुल्य है। आपके दो ग्रन्थ 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' अपभ्रंश काल के माने जाते हैं।

परन्तु जिसके कारण विद्यापति 'मैथिल-कोकिल' कहलाए वह उनकी 'पदावली' है। उनकी 'पदावली' में उस समय की व्यवहृत मैथिली भाषा का प्रयोग पाया जाता है। मैथिली भाषा के अधिकांश शब्द बंग भाषा से मिलते-जुलते हैं। इसीलिए बंग-भाषी विद्यापति को बंग भाषा का कवि मानते हैं। किन्तु मैथिली भाषा का सीधा सम्बन्ध हिन्दी भाषा से है। इनकी शब्दावलियाँ प्रायः हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखती हैं।

विद्यापति ने अपनी पदावलियों में राधा से कृष्ण के प्रेम का विचित्र चित्र खींचा है। वर्णनों में शृंगार रस की प्रधानता है। पदों की सरसता सहृदय पाठकों को आकृष्ट कर लेती है। कहीं-कहीं पर तो कवि ने सौन्दर्य का चित्र ही खींच डाला है। भाव-चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि की अनुभूति-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी और वह किसी भी मनचाहे भाव को

अधिकार के साथ व्यक्त कर सकता था। पदों की मधुरता ने शब्द-रचना में एक मिठास उत्पन्न कर दी है और कितने मैथिल बड़े प्रेम से उसे कंठ भी कर लेते हैं। कवि ने अलंकारों का प्रयोग भी बड़ी उत्तमता से किया है। लखिमा देवी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि लिखता है —

तोहर बदन सम चाँद होअथ नहि, कइयो जतन बिहि केला।
कै बेरि काटि बनावल नौके, तैयो तुलिय नहि भेला॥
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने।
से फिरि जाइ लुकइलन्ह जलमें पंकज निज अपमाने॥

चन्द्र का घटना, बढ़ना सौन्दर्य की उत्कृष्टता व्यक्त करने के लिए कवि ने किस प्रकार व्यवहृत किया है। कमलों का जल में चले जाने का कारण भी कितनी मधुर रीति से दिखलाया गया है। सौन्दर्यानुभूति के लिए ही कवि ने इस प्रकार के सादृश्य उपमानों का प्रयोग किया है। कवि की कुशलता तभी मानी जाती है जब वह अपने भावों को पाठकों तक पहुँचा दे।

विरह का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है। प्रियतम की अनुपस्थिति में वियोगाग्नि से जलती हुई नायिका कहती है—

सूनी सेज पिय सालैरे, पिय बिनु घर मोहिं आज।
बिनती करौं सुसहलिनिरे, मुहिं दहि अगिहर साज॥

वियोगकी तीव्रता का वर्णन कवि ने बड़ी स्पष्टता से किया है। वियोग में जलनेवाली नायिका सभी भौतिक सुखों से सम्पन्न रहने पर भी अपने को अशान्त ही मानती है क्योंकि जिनके सहवास से सभी वस्तुएँ आनन्ददायिनी होती हैं, उनके ही वियोग में वे दुखदायिनी हो जाती हैं। संयोग के दिनों की स्मृतियाँ बारबार हृदय में कसक उत्पन्न करती हैं।

राधा और कृष्ण के प्रेम को यदि पूर्ण जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम का प्रदर्शन माना जाय और उसकी सारी क्रियाएँ माया

की एकमात्र विलास समझी जायँ तो विद्यापति की रचना आध्यात्मिकता की पुट से सनी हुई मालूम होती है। यद्यपि शृंगार-पक्ष की पूर्ण मीमांसा उनकी रचनाओं में सर्वत्र पाई जाती है पर कहीं-कहीं उन्होंने उस अनुपम प्रेम की ओर संकेत किया है जिसकी प्राप्ति के लिए सभी चर और अचर अशान्त हैं।

## ( ३ ) खुसरो

खुसरो अपने समय के अच्छे ग्रन्थकार और फारसी के नामी कवि थे। इनका स्वभाव बहुत ही विनोदप्रिय था। उस काल में प्रचलित साधारण जनता में जिस प्रकार के दोहे आदि की तुकबन्दियाँ इन्होंने देखीं उसी ढंग के पद्य-पहेलियाँ बनाईं। इन रचनाओं में उक्ति-वैचित्र्य की प्रधानता विशेष परिलक्षित होती है। खुसरो की रचनाओं में शौरसेनी और व्रजभाषा का भी रूप दिखलाई पड़ता है। पर यह व्रजभाषा वैसी व्रजभाषा नहीं है जैसी व्रज के अन्य कवियों ने प्रस्तुत की है।

खुसरो की रचनाओं में ठेठ खड़ीबोली का स्वरूप दिखलाई पड़ता है। साधारण जनता की ओर अधिक ध्यान देने के कारण इनकी भाषा उस काल की बोलचाल की भाषा से बहुत करीब है। इसका कारण यह भी था कि खुसरो जनता का मनोरंजन भी करना चाहते थे। प्रश्न यह उठता है कि जिस भाषा का प्रयोग खुसरो ने किया है, क्या वस्तुतः वही स्वरूप उस काल में प्रचलित था या नहीं? जब कि उसी काल की रचना में 'इट्ठ', 'बसिट्ठ' आदि रूप हमको मिलते हैं, खुसरो की रचनाओं में इष्ट और वशिष्ठ रूप हमको दिखाई पड़ते है। इससे निश्चय हो जाता है कि उस काल में एक भाषा तो प्राकृत की रूढ़ियों से जकड़ी हुई थी और दूसरी उस काल की बोलचाल की भाषा थी। खुसरो के कुछ पद देखने ये यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

एक थाल मोती से भरा,
सबके सिरपर औंधा धरा,
चारों ओर वह थाली फिरै,
मोती उससे एक न गिरै। (आकाश)

चाम, मांस वाके नहिं नेक, हाड़ हाड़ में वाके छेद।
मोहिं अचम्भो आवत ऐसे, वामें जीव बसत है कैसे॥

उपर्युक्त रचनाओं में भरा, धरा, चाम, मांस आदि शब्द उसी रूप में आज भी जनता में पाए जाते हैं। निश्चय ही खुसरो ने ये शब्द उन्हीं के बीच से लिए हैं। यह उनके कोरे दिमाग की उपज नहीं हो सकती। नीचे के पद मे उनकी व्रज-भाषा का एक नमूना देखा जा सकता है :—

उज्जल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है निकट पाप की खान॥

# भक्ति-काल

## ( सं० १३७५ से १७०० तक )

यवनों का उत्तरी भारत में पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो जाने के पश्चात् हिन्दू-जनता में गौरव एवं उत्साह न रहा। उनके सामने ही उनके धर्म का अनादर होता था। उनके हृदय-मंडल में उदासीनता छा गई थी। अतः अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के लिए भगवान का एकमात्र आश्रय लेने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहा। प्रायः ऐसी स्थिति में जब मानव अपनी शक्ति की सीमा जान जाता है और कर्मक्षेत्र में असहायावस्था का अनुभव करने लगता है तब उसे ईश्वर की याद आने लगती है। अतः इस राजनीतिक कारण ने भक्ति-मार्ग के लिए रास्ता खोल दिया। भक्ति-मार्ग के लिए धार्मिक दृष्टि-कोण से विचार करना आवश्यक हो जाता है। उस काल में वज्रयानी सिद्धों ने देश में घूम घूमकर जिस प्रकार की अनर्गल बातों का प्रचार किया और वर्ण-व्यवस्था के नियमों को ठुकराकर नीच जातियों को अपनी अटपटी बानी में शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ किया, इससे धर्म को काफी क्षति पहुँची थी। वस्तुतः समाज में धर्म कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों के मेल से चलता है। ज्ञान तीक्ष्ण बुद्धि-वालों के लिए है, कर्म और भक्ति सामान्य जनता के लिए। वज्र-यानी और नाथपंथी योगियों ने सामान्य जनता के सच्चे हृदयों को शुभ कर्म और भगवद्-भक्ति से हटाकर तंत्र-मंत्र की ओर लगा दिया था। अतः इसके परिवर्तन के लिए एक बड़े प्रयास की आवश्यकता थी. समय की गति पहचाननेवाले बुद्धिमान कवियों ने जनता के हृदयों को सँभाला और उनके हृदय में दबी हुई भक्ति को जगाया। उनके प्रयत्न से भक्ति का एक ऐसा प्रवाह

फूटा जिसके वेग में केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान भी बह गए। प्रेम को आलम्बन मानकर ईश्वर के स्वरूप का अंकन जो भक्त-कवियों द्वारा हुआ उससे हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के हृदयों का भेद-भाव दूर करने में सहायता मिली। सगुण-भक्ति का स्रोत उत्तरी भारत में रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में चलनेवाले स्वामी रामानन्द ने प्रवाहित किया। विष्णु के रामावतार की उपासना पर इनका अधिक जोर रहा। इनके प्रयास से इस प्रकार की भक्ति करनेवालों का एक सम्प्रदाय खड़ा हो गया। दूसरी ओर वल्लभाचार्य ने कृष्ण की उस विश्वमोहिनी मूर्ति का स्वरूप जनता के सामने रखा जो उनके हृदयों को आनन्द-विभोर करनेवाला था। इस प्रकार रामोपासक एवं कृष्णोपासक कवियों द्वारा हिन्दी-साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन सगुणोपासना के आधार पर भक्ति-काल का एक काव्य-क्षेत्र तैयार हुआ और दूसरी ओर भगवान् के निराकार स्वरूप को लेकर भक्ति का दूसरा रूप भी खड़ा किया गया, जो निर्गुण के नाम से विख्यात है। जाति-पाँति आदि की एकता स्थापित करने के लिए इस पंथ ने साहित्य का सर्जन किया।

महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त **नामदेव** ने (सं० १३२८ से १४०८) हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का स्वरूप दिखलाया। इसके पश्चात् कबीरदास ने बड़ी तत्परता के साथ इस मार्ग को निर्गुण-पंथ के नाम से आगे बढ़ाया। कबीर के इस निर्गुण-पंथ में भारतीय वेदान्त का समावेश और सूफियों के प्रेम-तत्व का सम्मिश्रण है। वस्तुतः निराकार ब्रह्म भक्ति और प्रेम का विषय नहीं हो सकता, पर कबीर ने जनता को ऐसे मौके पर सँभाला जब वज्रयानी और नाथपंथियों के बहकाने में जनता पथभ्रष्ट होने जा रही थी। इस निर्गुण पंथ में नानक,

दादू, मलूकदास आदि अनेक कवि हुए हैं। कबीर का ज्ञान-पंथ रहस्यपूर्ण है जो ज्ञान के लिए अशोभनीय कहा जा सकता है। पर सूफियों का प्रेमतत्व जो उन्होंने लिया वह कामवासना से ग्रस्त नहीं हुआ। इससे ऊँच-नीच और भारतीय भेदभाव को दूर करने में सहायता मिली तथा ईश्वर-भक्ति के लिए सभी को समान अधिकार मिला। कबीर की यह शाखा 'ज्ञानाश्रयी' के नाम से पुकारी जाती है।

ज्ञान का दूसरा स्वरूप जो निर्गुण-पंथ के अन्तर्गत ईश्वर को प्रेमालम्बन मानकर हृदय को भक्ति-रस से सराबोर करने की क्षमता रखनेवाला हुआ, वह 'प्रेम-मार्ग' के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार की रचनाओं में साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेमतत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ( ईश्वर ) से मिलानेवाला है। इनकी रचनाओं का आधार हिन्दू-घरों में प्रचलित कहानियाँ हैं। इस प्रकार भारतीय परम्परा का पूर्ण निर्वाह फारस की शैली के साथ साथ हुआ। इस प्रकार की रचना करनेवालों में **मलिक मुहम्मद जायसी** का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सूफियों के प्रेम-बन्धन में बुद्धिवाद के लिए स्थान नहीं है। हृदय को स्पर्श करनेवाले भाव हिन्दू एवं मुसलमान दोनों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। रहस्यमय परोक्षसत्ता की ओर जगह-जगह जो संकेत पाया जाता है, वह बड़ा मनोहर है। इनकी भाषा अवधी है। हठयोग एवं रसायन की बातें भी इनकी रचनाओं में कहीं कहीं पाई जाती हैं।

सगुण धारा के अन्तर्गत **गोस्वामी तुलसीदास** का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने राम के जीवन पर पूर्ण प्रकाश डाला है। 'यद्यपि इनके पहले राम-भक्ति की पुष्टि होती चली आ रही थी पर इस भक्ति का परमोज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामीजी के द्वारा प्रस्फुटित हुआ।

इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा-काव्य की प्रचलित सभी पद्धतियों के बीच अपना अधिकार जमाया। राम-भक्ति का विशद साहित्यक स्वरूप इन्हीं भक्त-शिरोमणि गोस्वामीजी द्वारा संगठित हुआ, जिससे हिन्दी-काव्य की प्रौढ़ता का युग आरम्भ हुआ।' इनके अतिरिक्त रामभक्ति-शाखा के अन्तर्गत आनेवाले कवियों में गोस्वामी अग्रदास, नाभादास, और प्राणचन्द्र चौहान के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

वैष्णव धर्म का जो आन्दोलन उत्तरी भारत में १५ वीं एवं १६ वीं शताब्दी में प्रचलित हुआ उसके प्रवर्तक स्वामी वल्लभाचार्य थे। इन्होंने कृष्ण को ही ब्रह्म का स्वरूप माना और आनन्द का प्रादुर्भाव इन्हीं पुरुष के रूप में रहता है, ऐसा इनका अनुमान था। अतः यही श्रेष्ठ रूप है। वे अपने भक्तों के लिए व्यापी हैं और अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करते हैं, गोलोक इसी व्यापी वैकुंठ का एक खण्ड है। भगवान की इस नित्यप्रति लीला-सृष्टि में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है। वल्लभ की दृष्टि में प्रेम-साधना के लिए लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनों का त्याग बतलाया गया है। वल्लभाचार्य ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टि मीमांसा' रखा है। इस मार्ग के सभी भक्तों ने भगवान की नित्य लीला का ही मधुर रूप अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि कृष्ण का धर्म-संस्थापक रूप अछूता रह गया। जिससे रचनाओं में जीवन के गम्भीर पक्षों का विवेचन न होने के कारण मार्मिक स्थलों का समावेश न हो सका तथा कविता अधिकांश शृंगारिक हो गई। वल्लभाचार्य के इन विचारों को काव्य-स्वरूप देने का श्रेय कवि-शिरोमणि **सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, मीराँबाई, हरिदास, रसखान, एवं ध्रुवदास को है।** भक्ति-काल के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी कवि आते हैं जिन्होंने भक्ति-सम्बन्धी रचना करने के अतिरिक्त

और प्रकार की रचनाएँ की हैं। इस प्रकार के कवियों में **नरोत्तमदास, गंग कवि, केशवदास, अब्दुलरहीम खानखाना, सेनापति** तथा **सुन्दर** कवि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

## निर्गुण धारा ( ज्ञानाश्रयी शाखा )

### कबीर सं० ( १४४६—१५७५ )

कबीर का जीवनचरित विवादग्रस्त है। इनका लालन-पालन एक जुलाहे के घर काशी के लहरतारा स्थान में हुआ था। उन दिनों उत्तरी भारत में रामानन्द की बड़ी धूमधाम थी। कबीर उनके ही शिष्य हो गए। पर रामानन्द के राम और कबीर के राम में भेद है। कबीर रामानन्द के शिष्य तो थे पर जाति-गत बन्धनों के कारण बहुत से लोग आध्यात्मिक क्षेत्र में उतर नहीं सकते थे, यह बात कबीर को खलती थी। अतः इन्होंने जाति-पाँति से रहित एक ऐसे मार्ग को अपनाया जो सब वर्गों के लिए था। इसके लिए इन्होंने निर्गुण उपासना का आश्रय लिया। यह रामानन्द का अद्वैतवाद ही था जिसे सुन सुनाकर उन्होंने समझा था। अद्वैतवादियों को वह ब्रह्म प्रेम के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। सूफी-सिद्धान्त का मेल करके इस अद्वैत-वाद का एक नया रूप कबीर ने खड़ा कर दिया। ब्रह्म की प्राप्ति में उपासना, प्रेम, हठयोग सभी सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधु-सेवा और सत्संगति से जो कुछ उन्हें मिला उसे वे अपनाते गए। वस्तुतः ब्रह्म तो पूर्ण है, उसकी प्राप्ति के लिए किसी भी निर्दिष्ट पथ का आश्रय लेना कबीर का फकीर ही होना है। वह सब प्रकार से जाना जा सकता है। हठयोग के द्वारा चित्तवृत्तियों में एकाग्रता आती है। उपासना से अन्तःकरण निर्मल होता है और तब उस चेतन सत्ता का बिम्ब इस पर पड़ता है। कबीर के अद्वैतवाद की यह उपासना 'अहं ब्रह्मास्मि'

के आधार पर है। कबीर की वाणी निर्गुण होते हुए भी सगुण भाव को इसीलिए व्यक्त कर पाई। इनके वचनों में उस अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत मिलता है जिसकी प्राप्ति के प्रयत्न में जगत् सदा लगा हुआ है।

अनुभूति-जन्य ज्ञान के आधार पर जब जब जो जो भाव कबीर के निर्मल मानस में, उस रहस्यमय परब्रह्म के अक्षय सत्य का उद्घाटन करने के लिए स्फुरित हुए काव्य-स्वरूप हो गए। उनकी अटपटी बानी ने इसके लिए प्रयत्न-शील होकर काव्य का सहारा न लिया बल्कि फकीरी की मौज में वे अपने भाव व्यक्त किया करते थे। उनको विभिन्नता में एकता का भान हो गया था। इसीलिए उन्होंने पंडितों और मौलवियों, दोनों को, कुविचारपूर्ण कार्यों के लिए फटकारा है। वस्तुतः ब्रह्म शुद्ध निर्विकल्प स्वरूप में निष्क्रिय होता है। यह भाव निम्नलिखित पदों में भरा है :—

पंडित मिथ्या करहु बिचारा। ना वह सृष्टि न सिरजन हारा।
ज्योति सरूप काल नहिं उहवाँ, बचन न आहि सरीरा।
थूल अथूल पवन नहिं पावक रवि ससि धरनि न नीरा।

सम्पूर्ण सृष्टि उसी सत्ता से ओतप्रोत है। अतः प्रत्येक से पारस्परिक सोहार्द स्थापित करते हुए जीवन पावन करना चाहिए। इसीलिए कबीरदास कहते हैं :—

साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।

मंत्र-साधना के द्वारा हठयोग की सारी क्रियाएँ अपनेआप प्राप्त हो जाती हैं। इनके साथ गुरु का सम्बन्ध होने के नाते निराकार मार्ग का अवलम्बन करनेवाला साधक भी उपासना से प्रभावित होता है। यही कारण है कि कबीर का ज्ञान-मार्ग शुद्ध अद्वैतवाद का स्वरूप नहीं है। काल की विशेषता की छाप उसमें है। उस समय भारत के दो प्रमुख वर्ग, हिन्दू और मुसलमानों,

के आपसी संघर्ष मिटाने के लिए कबीर की आवश्यकता थी। मुल्लाओं को वे इसीलिए झिड़कते हैं कि—

कंकर पत्थर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।
दिन को रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय॥

हिन्दुओं को भी इसी प्रकार फटकारते हैं —

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल॥

ईश्वर के मार्ग में जानेवालों के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय ये सभी परमावश्यक है। ज्ञान, कर्म और उपासना सभी में इस अहिंसा को स्थान दिया गया है। अतः कबीर के अन्तःकरण ने जिस का अनुभव किया है वही कहा भी है। विचारों की इस एकता से हम भले ही यह समझ लें कि अहिंसा, उपासना, अद्वैतवाद आदि की सभी बातें कबीर ने दूसरे सम्प्रदायवालों से लेकर उसे अपनी बानी में रखा, पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। कबीर सच्चे साधक थे और उपनिषदों में जो भाव आए हैं, वे स्वयं उनके अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित हुए क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धता प्राप्त होने पर परम रहस्य-सत्ता का ज्ञान होने लगता है। इस रहस्य की पूर्णता में ही पूर्ण अद्वैतवाद आता है। प्रारम्भिक अवस्था में तो केवल एकांश सत्य ही जाना जाता है। इसीलिए जीवन-क्षेत्र से उद्वेलित साधना के क्षेत्र में कबीर को जो अनुभूति हुई वह अलग अलग रूप में किसी न किसी सत्य को ही व्यक्त करती है। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि कबीर अनुकरण-शीलता के चक्कर में नहीं पड़े हैं।

बुद्धि की विशालता प्राप्त होने पर वाणी में भी वैचित्र्य आ-जाता है। इसीलिए कबीर के पद कहीं कहीं अत्यन्त उत्कृष्ट विरोधाभास को व्यक्त करते हैं :—

'नैया बिच नदिया डूबति जाय'

इस प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों में वैचित्र्य अधिक है। भावात्मक रहस्यवाद की झलक इनकी वाणी में दिखलाई पड़ती है। जैसे,

मुझको क्या ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास।

इनकी वाणी बीजक नाम से प्रसिद्ध है, इसमें वेदान्त की बातें तथा हिन्दू और मुसलमानों को कड़ी फटकार. साधना काल के अनुभव, उसकी कठिनाइयाँ, सत्य का स्वरूप, बाह्य आडंम्बरों की अनावश्यकता (मूर्ति-पूजा आदि) और सांसारिक शिक्षा के भाव भरे हैं। 'साखी' की भाषा राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी बोली है। 'रमैनी' और 'सबद' में ब्रज भाषा और पूर्वी भाषा के प्रयोग दिखलाई पड़ते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर का काव्य साहित्यिक विशेषता रखते हुए भी सामाजिक एवं आध्यात्मिक विशेषता रखता है। जीवन के कटु सत्यों से अनुभूति का सम्बन्ध होने के कारण कबीर की वाणी आज भी बहुत-से लोगों के हृदयों में आनन्द का संचार करती है। ऐसा विलक्षण प्रतिभा का व्यक्ति यदि साहित्यिक ज्ञान रखता तो अवश्य किसी न किसी महाकाव्य की सृष्टि करता, पर वर्ण-व्यवस्था के कठिन बन्धनों ने उसे इस प्रकार का अवसर नहीं प्रदान किया। अतः कबीर का पूर्ण विकास नहीं हो सका। कबीर को माया का स्वरूप ज्ञात हो गया था इसीलिए वे कहते हैं :—

झानी झीनी बीनी चदरिया।

काहे का ताना काहे की भरनी कौन तार से बीनी चदरिया।
इड़ा, पिंगला, ताना, बाना सुषुमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कमल, दस चरखा डोले सात तत्व, गुन तीनी चदरिया।
दास 'कबीर' जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया॥

कोई इसे भले कबीर का अहंकार माने पर वस्तुत: सत्य का ज्ञान उन्हें हो गया था। शक्ति प्राप्त करने पर ही व्यक्ति में अहंकार का उदय होता है। धनी में धन-मद, विद्वान् में विद्वत्ता का मद, ज्ञानी में ज्ञान का अहंकार तथा इसी प्रकार सबमें गुण-विशेष होने पर अहंकार का आना स्वाभाविक है। यदि इसी अहंकार को जीत लिया गया तो सब कुछ कार्य हो गया। निर्गुण-उपासना में पूर्ण ब्रह्म के साक्षात्कार में यही अहंकार बन्धन होता है।

## गुरु नानक

( सं० १५२६–१५९६ )

गुरु नानक लाहौर के एक खत्री-कुल में पैदा हुए थे। ये बाल्यावस्था से ही भगवान् की भक्ति करने लगे थे। अतः पढ़ लिख न सके। इनकी रचनाएं भक्ति-पूर्ण हैं।

जिस निर्गुण उपासना का बीज कबीर ने बोया था, गुरु नानक ने उसे बढ़ाया। आपके भजन 'ग्रन्थसाहब' में संगृहीत हैं। इन भजनों की भाषा पंजाबी तथा देश की सामान्य भाषा है। इनके भजन सरल तथा सुबोध हैं। इनमें संसार की अनित्यता, भगवद्भक्ति, सन्तों का स्वभाव आदि वर्णित है। सिक्ख-सम्प्रदाय के आदि गुरु नानक ही थे। इनके कुछ भजन इस प्रकार हैं :—

जागो रे जिन जागना अब जागन की बारि।
फिरि के जागो नानका जब सोवे पाँव पंसारि॥

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्ब निवासी सदा अलोपी तोही संग समाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर माँह जस छाई॥
तैसे ही हरि बसें निरन्तर घट ही खोजो भाई।
बाहर भीतर एक जानौ यह गुरु ज्ञान बताई॥

इन भजनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नानक के निर्मल अंतःकरण में ज्ञान का जो स्वरूप स्पष्ट हुआ वह जगत् के सम्पर्क में रह कर ही। अतः उन्होंने उस निराकार सत्य की जो झलक दिखलाई वह सवसाधारण की बोली में है। लोगों को प्रिय भी इसीलिए लगती है कि उनके हां दोष उन्होंने अपने नेत्रों से देखा था और उसके परिहार का उपाय भी बतलाया और वह भी मधुर वाणी में। भक्त जनों के हृदय में चार प्रकार के भाव आया करते हैं; मैत्री, करुणा, मुदिता, और उपेक्षा। समान के साथ मैत्री, दीन पर करुणा, सुख-दुःख में समान भाव और दुष्टों की उपेक्षा। इन चारों भावों का सच्चा स्वरूप नानक के पदों में पाया जाता है। यद्यपि इन भावों का प्रतिपादन शास्त्रीय भाषा में नहीं हुआ है पर वे भाव उनकी ही भाषा में हैं। नानक के भजन आज भी कितनों को कंठ हैं। इसी से उनकी सर्वप्रियता जानी जा सकती है। जिस प्रकार हिन्दी-भाषा-भाषियों में तुलसी का प्रभाव है, उसी प्रकार गुरुमुखी में नानक का है। संसार की निःसारता ज्ञात हो जाने पर सद्वस्तु के ज्ञान से विश्व में एकता उत्पन्न होती है। यही एकता सुख, दुःख, बैर आदि भावों को दूर करने में सहायक होती है। इस प्रकार का ज्ञान जिसे भी होगा वह सब कालों में पूज्य होगा और उसके विचार अन्य महान् पुरुषों से मिलते-जुलते होंगे।

# प्रेमाश्रयी ( सूफी )-शाखा

## मलिक मुहम्मद जायसी—( स० १६४९-१६९८ )

इस धारा के निर्गुणोपासक भक्तोंने, फारस की मसनवियों के आधार पर 'अंह ब्रह्माऽस्मि' भगवान के निराकार स्वरूप को, प्रेम-तत्त्व का आश्रय लेकर जानने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के काव्य, लौकिक घटनाओं पर आश्रित होते हुए पारलौकिक गूढ़ तत्वों की ओर संकेत करते हैं। इन भक्तों में 'मलिक मुहम्मद जायसी' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका जन्म १६४९ के आसपास माना जाता है और मृत्यु सं० १६९८। इनकी लिखी तीन पुस्तकें हैं; पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। पद्मावत की काव्य-प्रौढ़ता, अलौकिक वर्णन-व्यंजना, आध्यात्मिक रहस्योद्घाटिनी शक्ति तथा विलक्षण रीति से वर्णनों की सरसता और गम्भीरता ने जायसी की कीर्ति अमर कर दी है।

कबीर की बानी ने अक्खड़पन के साथ हिन्दू-मुसलमान दोनों को फटकारा। अतः वे लोगों को अधिक प्रिय नहीं लगे। प्रेममार्गी सूफी कवियों ने नित्य जीवन में सम्बन्धित प्रेम-तत्त्व की व्यंजना करके मानवों के हृदयों को स्पर्श किया। आपसी कटुता को इस प्रकार बड़ी ही कुशलता से मिटाने का प्रयत्न किया। हिन्दुओं के रीति-रिवाज, आचार, व्यवहार के समीप आकर उनमें आत्मीयता का भाव भरने के पश्चात् जो कुछ भी वर्णन इस प्रकार के हुए उससे इनकी सहृदया का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। कबीर ने इतना ही बतलाया था कि 'साईं के ही जीव हैं कीरी कुंजर दोय' पर प्रत्यक्ष जीवन में यही एकता किस प्रकार स्थापित की जाय, बतलाने की आवश्यकता बनी थी। जायसी ने इसे पूरा किया। पद्मावत की कथा चित्तौड़ के राना रतनसेन और पद्मिनी

को लेकर चली है, जिसमें अलाउद्दीन के साथ संग्राम की भीषणता दिखलाकर पद्मिनी की विलक्षण शक्ति की ओर संकेत है। इस काव्य में कवि ने साधन-सम्बन्धी सभी कठिनाइयों का वर्णन स्थल-स्थल पर किया है। जिसमें मालूम होता है कि कवि ने साधना-क्षेत्र में कुछ अवश्य ही प्राप्त किया था। यही कारण था कि इनका हृदय इतना विशाल हो सका। 'जेहि जाने जग जाइ हेराई' के आधार पर ही इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव को मिटाया।

प्रेम-पक्ष के संयोग एवं वियोग दो प्रधान अंग हैं। कवि ने दोनों अंगों का वर्णन जिस सिद्धहस्तता से किया है वह बेजोड़ और अनुपम है। इनकी रचनाएँ भावना की तीव्रता बतलाने के लिए जिस सुबोध शैली का अवलम्बन करती हैं वैसी अन्य कवियों की नहीं। प्रेम की पीर को स्पष्ट करने के लिए यह दोहा कितना सुन्दर है। नागमती विरह से व्याकुल है, रतन सेन को सन्देश भेज रही है :—

पिय से कहेउ सँदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
वह तिय बिरहइ जरी मुई, तेहिक धुँआ मोहिं लाग।

भौंरा और काग क्यों काले हो गए, इसलिए कि नागमती की विरहाग्नि का धुआँ उनको लग गया। वेदना की तीव्रता का वर्णन इससे अधिक और क्या हो सकता है? बारहमासे का वर्णन भी इसी प्रकार मनोहर, रोचक तथा हृदयस्पर्शी है।

संयोग शृंगार की उक्तियाँ मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं, साथ ही साथ उनका संकेत परमार्थ की ओर भी है। अतः उनकी विशेषता द्विगुण हो जाती है। अलंकारों का वर्णन जिस स्वाभाविक दक्षता के साथ हुआ है वैसा अन्य भक्तिकालीन कवियों में कम पाया जाता है। पुस्तक के अन्त में कवि ने आध्यात्मिक लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया है :—

तन चितउर, मन राजा कीन्हा, हिय-सिंघल, बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरू सुआ जेइ पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया धंधा, बांचा सोइ नर नहि चित बंधा।

इससे यह ज्ञात हो जाता है कि उस परोक्ष-सत्ता से मिलने के लिए लोग कितने आतुर हैं। वस्तुतः मानव जगत् में सर्वत्र आनन्द ही खोजता है। यह आनन्द उसी का स्वरूप है। अतः जान में या अनजान में सभी प्राणी उसी की खोज में संलग्न हैं।

प्रेम-मार्ग का पथिक होने के नाते जायसी के सरल हृदय ने जो भी भाव व्यक्त किए वे अनूठे एवं गूढ़ व्यंजना से भरे हैं। सूर और तुलसी की तरह वे भले ही लोक-प्रिय न हो सके पर वस्तुतः उनकी रचना प्रौढ़, सजीव एवं आकर्षक है।

# रामभक्ति-शाखा

## गोस्वामी तुलसीदास ( १५५६–१६८९ )

रामानन्द के शिष्यों ने रामभक्ति का प्रवाह देश में उनकी मृत्यु के बाद भी बनाए रखा : पर हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्वल प्रकाश विक्रम की १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा-काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक स्वरूप इन्हीं भक्त-शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी-साहित्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ।

गोस्वामीजी का जन्म सं० १५५४ में बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ था। पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया। बाबा नरिहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। इन्होंने काशी आकर विद्याध्ययन किया। गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने पर स्त्री के कारण वैराग्य ले लिया। फिर तीर्थों का भ्रमण आरम्भ हुआ।

गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे और राम को सर्वस्व मानते थे। इनके द्वारा रचे गए ग्रन्थ रामचरित-मानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल,

रामललानहछू, बरवै रामायण, वैराग्य-सन्दीपनी और कृष्ण-गीतावली हैं। तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की सभी छन्दशैलियों को अपनाया है। जैसे, वीर-गाथा-काल की छप्पय शैली, विद्यापति आदि कवियों की गीतशैली, कबीरदास की दोहाशैली, गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैयावाली शैली और ईश्वरदास की दोहे-चौपाईवाली प्रबन्ध शैली। तुलसीदास ब्रजभाषा और अवधी दोनों के प्रकाण्ड पंडित थे। प्रचलित रचना-शैली पर भी उनका पूर्ण अधिकार था।

वर्णित विषयों की विवेचना करने से पता चलता है कि गोस्वामीजी ने मानव-हृदय की सभी अन्तर्दशाओं को अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से देख पाया था। यही कारण था कि गोस्वामीजी ने जो भी वर्णन किया है वह सजीव, मूर्तिमान, हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी है। व्यक्तिगत भावना के साथ लोक-पक्ष को ध्यान में रखकर रचना हुई है। निर्गुणधारा के कवियों ने लोकधर्म की उपेक्षा की थी। उसका असर समाज पर भी पड़ रहा था। गोस्वामीजी के ही प्रयत्न से यह दोष दूर हो पाया। समाज के लोगों में जीवन के विभिन्न आदर्शों की स्थापना करके सामाजिक सुधार का जो कार्य इनके द्वारा हुआ वह आजतक किसी भी धर्माचार्य ने नहीं किया। भाई-भाई का प्रेम, पिता-पुत्र का प्रेम, स्त्री-पुत्र का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, मित्र-मित्र का प्रेम, राजा-प्रजा का प्रेम, कहाँ तक कहा जाय इनकी रचनाओं द्वारा व्यवहारिक जीवनसम्बन्धी सभी बातों पर प्रकाश डाला गया है।

अव्यक्त-सत्ता को समझने के लिए सबकी बुद्धि समर्थ भी नहीं है और वह सबको प्रिय भी नहीं लगती। इसलिए तुलसीदास ने भक्तिमार्ग के अवलम्बन से ही सबको मुक्ति का मार्ग बताया। इस प्रकार उस काल में प्रचलित निर्गुण-साधना, हठयोग की प्रक्रिया में जो विकृति उत्पन्न हो रही थी उसे बहुत अंशों में दूर किया। गोस्वामीजी की भक्ति कर्म और ज्ञान दोनों

को लेकर चली है। वस्तुतः देखा जाय तो रचना-कौशल, प्रबन्ध-पटुता, सहृदयता सभी साहित्यिक गुणों की छटा रामचरित-मानस में मिलती है। प्रबन्ध-काव्य के प्रायः सब अवयव इति-वृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भावव्यंजना और संवादों का उचित समीकरण रामचरित-मानस में मिलते हैं। कथा के भीतर जो भी मार्मिक स्थल आए हैं उनके वर्णनों में पूर्ण सिद्धहस्तता है। भाषा प्रसंग के अनुकूल होती है। शृंगार के वर्णन शिष्ट हैं।

तुलसीदास के वर्णन प्रायः पूर्ववर्ती कवियों की कल्पना का आधार लिए हुए हैं। नूतन कल्पना की सृष्टि वे नहीं कर सके। इसका कारण यही हो सकता है कि वे जनता को शास्त्रीय ज्ञान बतलाकर उचित पथ दिखलाने का कार्य कर रहे थे। इससे अपनी कोई बात उसमें घुसेड़ना उनको ठीक नहीं लगा।

गोस्वामीजी की काव्य-कुशलता की झाँकी, उनके काव्य की सर्वांगपूर्णता का परिचय उनके साहित्य के अध्ययन से ही हो सकता है। उन्होंने ऊहापोह वर्णन कहीं भी नहीं किया। अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के ही लिए हुआ है। भाषा भावों की सहचरी है। भाषा के साथ खिलवाड़ किसी भी स्थल में नहीं देखा जाता है। व्यर्थ के शब्दों का प्रयोग कहीं भी नहीं मिल सकता सब रसों की सम्यक् व्यंजना इनके द्वारा हुई है और वह भी शिष्टतापूर्ण ढंग से। शृंगार आदि सभी रस अत्यन्त कुशलता से रखे गए हैं। सारांश यह कि तुलसीदास ने अपनी अलौकिक पावन बुद्धि द्वारा हमें जो भी दान दिया वह हमारे लिए सुधारस की तरह अमरत्व प्रदान करनेवाला है। सांसारिक क्षेत्र के साथ पारमार्थिक क्षेत्र में इनका कोई दूसरा सानी नहीं है। निश्चय ही इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य विश्व-साहित्य के समकक्ष हो पाया है।

हिन्दू-धर्म में ही फैली कटुता को जिस कुशलता से गोस्वामीजी ने दूर किया, वह सर्वथा सराहनीय है। इन्होंने शैव, वैष्णव तथा स्मार्त सभी सम्प्रदायों में, राम के स्वरूप को खींचकर एकता स्थापित की।

गोस्वामी जी हिन्दी साहित्याकाश के परमोज्ज्वल सितारे हैं, जिनकी प्रभा सर्वकालों में अक्षुण्ण बनी रहेगी।

# कृष्णभक्ति-शाखा

## महात्मा सूरदास

## ( १५४०–१६२० )

सूरदास का जन्म सं० १५४० के लगभग आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क पर स्थित रुनकता ग्राम में हुआ था। बहुत से विद्वान् 'सीही' को इनका जन्मस्थान मानते हैं। अष्टछाप के कवियों में पहला स्थान इन्हीं का है। इनके रचे ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

सूरसारावली, सूरसागर, साहित्यलहरी, दृष्टि-पदावली, ब्राह्मो, नलदमयन्ती, हरिवंशटीका ( अप्राप्य )।

भाषा, भाव तथा छन्दों की अनेकरूपता ने सूर का स्थान अन्य साहित्यिक कवियों में श्रेष्ठ बनाया है। ब्रजभाषा की मिठास को साहित्यिक रूप देने का कार्य सूरदास ने ही किया। इनके पूर्व के कवियों ने इस प्रकार का प्रयास न तो किया था न उनकी चेष्टा ही हुई। इनकी भाषा में सर्वत्र प्रवाह, माधुर्य, सरसता, सरलता तथा ओज भरा हुआ है। इनकी भाषा इनके भावों की सहचरी प्रतीत होती है। जिस प्रकार का स्थल होता है उसी प्रकार की भाषा दिखलाई पड़ती है। दुःख के वर्णनों की भाषा सुख के वर्णनों से भिन्न है। कहीं कहीं भाषा दृश्यों को भी स्पष्ट करने में सफल हुई है। दावानल का वर्णन इसी प्रकार का कहा जायगा। ग्रामीण शब्दों का चयन प्रायः सूरसागर में भरा पड़ा है। यही कारण है कि सूर के पद भारतीय जनता

को प्रिय हुए। मार्मिक स्थलों की भाषा इतनी प्रभावकारी तथा हृदयविदारक होती है कि पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। गोपियों के विरह-वर्णन के समय इस प्रकार की भाषा प्रायः बहुतायत से मिलेगी। इससे यह प्रतीत होता है कि सूरदास एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। भाषा का शास्त्रीय ज्ञान न रखने पर भी ये इसका प्रयोग बड़ी कुशलता से कर पाए। इनके इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग देखकर बुद्धि को कभी कभी चमत्कृत हो जाना पड़ता है। पदों के अन्दर मुहावरों का प्रयोग यत्र तत्र पाया जाता है। शब्दों के लाक्षणिक प्रयोगों पर सूर की दृष्टि विशेष रही है। यही कारण है कि वर्णित विषयों की गम्भीरता सदा एक सी सर्वत्र पाई जाती है।

सूर की रचना हृदय-पक्ष की है। अनुभूति-जन्य होने के कारण इसका प्रभाव प्रत्येक काल में स्थायी रहेगा। वैसे तो सूर ने कृष्ण की प्रायः सभी लीलाओं का वर्णन किया है पर गोपियों का विरह-वर्णन और बाललीला अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। बाल्य-चापल्य-जनित-सरलता का विशद विवेचन जिस प्रकार सूर की लेखनी द्वारा प्रसूत हुआ है वैसा आज तक हिन्दी के अन्य कवि नहीं कर पाए। बालकों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सूक्ष्म विवेचन सूर के पदों में भरा पड़ा है। जैसे, "मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी" इत्यादि कविता में बालक की स्वाभाविक जिज्ञासु प्रवृत्ति का परिचय कवि ने जिस ढंग से दिया है वह उसकी सूक्ष्म परख की परिसूचिका है। इस प्रकार के वर्णनों के आधार पर ही बहुत से लोग सूर को जन्मान्ध नहीं मानते। बाल्यकाल में खेल, कूद, ईर्ष्या, द्वेष आदि के भाव, मित्र-मंडली के हृदयोद्गार तथा ताने बाने के शब्दों का प्रयोग भी सूर के पदों में पाया जाता है। माता के प्रेम का स्पष्ट चित्रण सूर की रचना की विशेषता है। कृष्ण गोकुल से मथुरा जाते हैं। यशोदा को रह रहकर क्लेश होता

है। उन्हें याद आती है कि कौन कृष्ण को मक्खन खिलाता होगा। कंसवध का समाचार सुनने पर उन्हें विश्वास न हुआ कि मेरा सुकुमार बालक इस प्रकार का दुष्कर कार्य कर सकता है। माताओं के लिए उनका बालक सर्वप्रकार शक्तिमान होते हुए भी सुकुमार ही होता है। इसीलिए माता को वात्सल्य की शुद्ध-मूर्ति माना गया है और सूर ने इस वात्सल्य रस की सृष्टि अपने पदों द्वारा करके जननी के सहज स्नेह का परिचय देकर जीवन में इसकी महत्ता स्वीकार की है। मथुरा से भेजे हुए कृष्ण के समाचार पर यशोदा को विश्वास नहीं होता, वह समझती हैं कि मेरा पुत्र आता ही होगा, वह मेरे बिना एक क्षण भी नहीं रुक सकता। प्रेम की इस प्रकार आत्मविश्वासदायिनी शक्ति ने ही जगत के कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता की है। आशा जो जीवन की सहचरी होती है, यशोदा के हृदय में कृष्णके प्रति सर्वदा स्थायी मिलेगी।

कवि अपनी इस विशेषता के कारण साहित्य के ९ रसों के अतिरिक्त १० वाँ वात्सल्य रस बनाने में सफल हुआ है। सूर का शृंगार-वर्णन प्रेम के क्षेत्र में अपना जोड़ नहीं रखता। इनके वर्णनों की विचित्रता और अलौकिकता को देखकर विरहसम्बन्धी अन्य कवियों की उक्तियाँ इनकी जूठन सी जान पड़ती हैं। शृंगार के क्षेत्र में संयोग और वियोग दो अवयव माने गए हैं। दोनों प्रकार के इनके वर्णन अपनी सीमा का उल्लंघन करते हुए पाए जाते हैं।

कृष्ण गोकुल में निवास करते हैं और गोपियाँ उनके प्रेम में विभोर रहती हैं। कृष्ण की मूर्ति ही उन्हें सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। वे भी उनके साथ अपनत्व जोड़ने में संकुचित नहीं होते। कभी माखन चोरी करते हैं, कभी रासलीला। इस प्रकार गोपियों के हृदयों को हर्षित करते हैं। राधा के प्रति उनका प्रेम अपूर्व है। कृष्ण के साथ राधा का सम्बन्ध सूर की दृष्टि से

पावन तथा प्रेम की प्रस्तर भूमिका में ऊँचा ठहराया गया है। राधा-भाव की कल्पना भक्तों में इसीलिए प्रेम के क्षेत्र में उच्च कोटि की मानी गयी है। प्रेम के आधिक्य में प्रेमी अपनी व्यक्तिगत सत्ता भूल जाता है और दो हृदय एक होते हुए दिखलाई देते हैं। राधा द्वारा कवि ने इसी भाव की पुष्टि की है।

संयोग-शृंगार के पक्ष में कवि की उक्तियाँ उतनी ही चमत्कारिणी हैं जितनी वियोग के क्षेत्र में। गोपियों के विरह-वर्णन में इसकी झलक मिलती है। कभी गोपियों को अपने पर खीझ होती है। कभी गोपियाँ जगत के सभी कालों को दोष देने लगती हैं। ऊधो के साथ गोपियों की बातों में निराकार की जो व्यंगात्मक हँसी ली गई है, वह भक्तिमार्ग की पोषिका है। भक्ति के लिए भक्त और भगवान की आवश्यकता सर्वत्र होती है। "ऊधो, मन नाहीं दसबीस" इस दृष्टान्त के द्वारा कवि ने मन की शक्ति का विवेचन किया है। उन्हें कृष्ण के विरह में सर्वसुखस्वरूप प्राकृतिक वस्तुएँ दुखदायिनी प्रतीत होती है। शोक की तीव्रावस्था में इस प्रकार की अनुभूति का होना स्वाभाविक है। चन्द्रमा की छटा, वर्षाऋतु, काले बादल, विद्युत, पपीहा सभी गोपियों के दुख को बढ़ाते हुए मालूम होते हैं। कभी वे इन पदार्थों से सहानुभूति भी प्रकट करने लगती हैं। जैसे, "बरु ये बदराऊ बरसन आए" इसमें बादलों का अवधि के पश्चात् आने का कारण अच्छा बतलाया गया है। कृष्ण के आने की अवधि नहीं है, इसीलिए गोपियाँ कहती हैं कि 'निशि दिन बरसत नयन हमारे"। किसी के शोक में एक दिन, दो दिन रोना स्वाभाविक है पर नित्य ही एक प्रकार की तीव्रता पर चलना सबके लिए सम्भव नहीं है। सांसारिक क्षेत्र के सामान्य प्रेमियों से गोपियों का प्रेम इसी प्रकार की विशेषता रखता है। यही कारण है कि सूरदास शृंगार के क्षेत्र में बेजोड़ कवि माने गये हैं। इस क्षेत्र का कोई कोना न बचा होगा जहाँ तक इनकी पहुँच न हो सकी हो।

इन्होंने 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' की उक्ति चरितार्थ कर दी है। प्राकृतिक वर्णन सूरदास के सूरसागर में कम पाए जाते हैं। कहीं कहीं कूटों की व्यंजना करके इन्होंने बुद्धि-वैलक्षण्य का प्रदर्शन किया है। सूरदास ने राग-रागिनियों के आधार पर अनेक प्रकार के रागों का समावेश सूरसागर में किया है। भक्ति के ओज में वीणा की मधुर झंकार के द्वारा जो भी उस महा-कवि के मुख से निस्सरित हुआ वही कोई न कोई छन्द बन गया। यही कारण है कि उसमें स्वाभाविक गति और लय है।

अलंकारों के क्षेत्र में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष की सर्वत्र भरमार है। इससे यह पता चलता है कि कवि ने या तो इनका प्रयोग शास्त्र-अध्ययन के पश्चात् किया या सत्संगति के द्वारा या बुद्धि की तीव्रता के द्वारा। साङ्गोपाङ्ग रूपक का वर्णन भी इनकी रचना में पाया जाता है।

## नन्ददास

नन्ददासकी जन्म-तिथि अज्ञात है। नाभाजी द्वारा रचित पद्य से विदित होता है कि आप रामपुर ग्राम के निवासी थे। चन्द्रहास के बड़े भाई से आपकी घनिष्ट मित्रता थी आपके लिखे ग्रन्थ ये हैं:—रासपंचाध्यायी, भँवरगीत, अनेकार्थ मंजरी, नाम-माला ( प्रकाशित ), दशमस्कन्ध भागवत, रुक्मिणी मंगल, रूप-मंजरी, रसमंजरी. विरहमंजरी, नाम-चिन्तामणि-माला. अनेकार्थ-माला, ज्ञानमंजरी, श्यामसगाई, अमरगीत, हितापदेश, नासिकेत ( अप्रकाशित )।

अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का नाम लिया जाता है। इनका कविता-काल सूरदास की मृत्यु के पीछे सं० १६२५ या उसके आगे माना जा सकता है। अष्टछाप में सूर के बाद इन्हीं का नाम लेना पड़ता है। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस है। इनके सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि

"और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया"। इनकी भाषा में अनुप्रासों की छटा और संस्कृत की रीति का पद-विन्यास पाया जाता है। इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचना की जिनमें रास-पंचाध्यायी और भ्रमर गीत बहुत प्रसिद्ध हैं।

नन्ददास ने श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन प्रांजल और शुद्ध साहित्यिक भाषा में किया है। यद्यपि इनके काव्य में सूर के जैसा पद-लालित्य और भावों की मनोरम तथा मनोमुग्धकारी छटा नहीं दिखाई पड़ती फिर भी पदों की रचना तथा उनके वाक्य-विन्यास में नवीन प्रकार का आनन्द भरा हुआ है, जिसका आश्रय कृष्ण-उपासक भक्तों की साकार-पद्धति है। नन्ददास की गोपियाँ दार्शनिकता के पुट में सनी हुई एवं बुद्धि-तत्त्व की ओर झुकी हुई दिखाई पड़ती हैं जब कि सूरदास की गोपियाँ हृदय में चुभनेवाली भाषा का प्रयोग करती हैं। भक्ति की विशेषता के लिए भावों की प्रधानता अत्यन्त आवश्यक है जिसका सीधा सम्बन्ध हृदय की रागात्मक वृत्ति से है। तर्कों की शुष्क पदावली उनके लिए आवश्यक नहीं होती। नन्ददास की गोपियाँ सारे विश्व में भगवान के गुणों का प्रकाश ही पाती हैं। अतः उनको निर्गुण किसी हालत में नहीं मानतीं क्योंकि यदि वे उनको निर्गुण मान लेती हैं तो सारा संसार किसके आधार पर रहेगा और इस माया रूपा दर्पण में किसकी मुखाकृति दिखलाई पड़ेगी? इसीलिए वे कहती हैं:—

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ ते?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ ते?
वा गुन की परछाहँ री, माया-दर्पन बीच।
जल ते जल न्यारे भयौ अमल बारि मिलि कीच।
सखा सुनु स्याम के!

नन्ददास ने गोपियों के वियोग-शृङ्गार के उस मधुर

स्वरूप का दिग्दर्शन नहीं कराया है. जिसकी झलक हम सूरदास में पाते हैं। सूरदास की गोपियाँ जब यह कहती हैं कि "ऊधो. मन नाहीं दस बीस। एक हुतो सो गयो स्याम सँग को आराधै ईस" तब पाठकों को विश्वास हो जाता है कि गोपियाँ किस प्रकार अपनी बेबसी प्रकट करती हैं। किसी कार्य को करने के लिए मन का एकनिष्ठ एवं चित्त का ध्यानावस्थित होना आवश्यक है। यदि ये दोनों स्थितियाँ नहीं प्राप्त होतीं तो कार्य की सफलता में सन्देह है। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक व्याख्या भाषा की समाहार शक्ति से सम्पन्न एवं समास-शक्ति से ग्रथित नन्ददास में कम पाई जाती है। लोकपक्ष की सूक्ष्मता को पारलौकिक दृष्टि से व्यक्त करने में कवि उतना सफल नहीं हुआ है जितना कि सूरदास। संयोग शृङ्गार की मनोरम उक्तियाँ रास पंचाध्यायी में भरी पड़ी हैं।

रासपंचाध्यायी वास्तव में कृष्ण के संयोग शृङ्गार की पूरी गाथा है। कवि ने राधाभाव का ही सम्पूर्ण दिग्दर्शन कराया है, जहाँ भक्त भगवान को स्वामी रूप में मानता है और वह उससे किसी प्रकार की लज्जा नहीं रखता। प्रेम की पूर्णावस्था प्राप्त होने के पूर्व उसकी तरह-तरह की उलझने तथा तज्जनित आनन्द का निरूपण रासपंचाध्यायी में भरा पड़ा है। वास्तव में लौकिक प्रेम से उठकर ही पारलौकिक प्रेम प्राप्त होता है और लौकिक प्रेम का ज्ञान भी भगवान के अनन्य प्रेम के लिए सहायक होता है। नन्ददास के पदों को देखकर यह मालूम होता है कि कवि लौकिक प्रेम का सच्चा पारखी था। यही कारण था कृष्ण की उत्कृष्ट प्रेम-भक्ति इन्हें प्राप्त हो सकी। सूर या तुलसी जिसके भी लौकिक प्रेम की ओर देखते हैं, सभी में स्त्री-प्रेम की प्रधानता रही है। वास्तव में ईश्वर की ओर अग्रसर होने-वालों में माया का प्रबल आकर्षण होता ही है। पर वे जब माया की वास्तविकता जान जाते हैं और उसे विषवत् एवं दुखदायी

समझने लगते हैं तब स्वभावतः उससे विमुख हो जाते हैं। हाँ, कभी-कभी मोहमें पड़कर पथ से विमुख भी हो जाते हैं, जैसा कि नन्ददास के बारे में कहा जाता है कि ये किसी स्त्री के प्रेम में पागल होकर उसके घर के चारों ओर चक्कर लगाया करते थे।

प्रकृति का पुरुष के साथ संयोग होना ही पूर्णानन्द की प्राप्ति है। स्त्री और पुरुष इन दोनों के प्रतीक हैं। नन्ददास ने अपने काव्य में इसी प्रकार की भावना भरी है। जब जीव जगत्की स्थिति भूल कर जगत को एकाकार देखने लगता है तब उसके सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं और वह अक्षय शान्ति प्राप्त करके परम-पद का अधिकारी होता है।

कृष्ण-भक्ति-शाखा के सगुणोपासक कवियों ने भगवान के उस मधुर सगुण रूप का वर्णन किया है जो सरस हृदयों को प्रेमानन्द से भर देता है। नन्ददास ने भी इसी प्रकार के भाव भरे हैं। भगवान की अनेक लीलाओं का गुणगान भक्तों के आनन्द का हेतु होता है। वे सदा उसी के रस में मग्न रहा करते हैं। ईश्वर के गुणों का श्रवण, चिन्तन एवं मनन उनका एकमात्र कार्य होता है। शारीरिक विविध चेष्टाओं का आश्रय भी इसी निमित्त लिया जाता है। नन्ददास के साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह पता चलता है कि ये पूर्ण सन्त-हृदय को प्राप्त कर चुके थे। यही कारण था कि इनकी बुद्धि निर्मल एवं परिष्कृत होकर भावना के क्षेत्र को लाँघती हुई ज्ञान-क्षेत्र की भूमिका में स्थित हो पाई, पर उसे न जानकर सामान्य पाठकों ने बहुधा अर्थ का अनर्थ कर डाला है।

## मीराँबाई

इनका जन्म सं० १५७३ में चौकड़ी ग्राम में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। इनकी मृत्यु द्वारिका में संवत् १६०३ में हुई थी। बाल्यावस्था

से ही इनकी प्रवृत्ति कृष्णोपासना की ओर रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती गई। वैवाहिक सूत्र में बंधने के कुछ दिन बाद इनके लौकिक पति का देहावसान हो गया। पर इन्होंने तो "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई, जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई" का निश्चय कर रखा था।

कृष्ण-प्रेम में मदमाती मीराँ राजमहल के नियमों का कैसे पालन कर सकती थीं? भगवान का अनन्य प्रेम सभी बन्धनों से परे होता है। अतः लोकाचार के विरुद्ध इनका आचरण स्वजनों को कष्टकारी हुआ। उन्होंने इन्हें विष देने का भी उपाय रचा, पर वह मीराँ के प्राणों को इस जगत से न उठा सका, इनके लिए तो वह अमृत था।

मीराँ की उपासना माधुर्य भाव की थी। इन्होंने कृष्ण को ही अपना जीवन-धन मान लिया था और इनके सामने जगत में वे ही एक पुरुष थे जिससे वे लज्जा कर सकती थीं। इनकी उपासना में रहस्यभाव भी पाया जाता है। इनके बनाए चार ग्रन्थ कहे जाते हैं :—

१–नरसीजी का मायरा, २–गीत गोविन्द, ३–राग गोविन्द और ४–राग सोरठ।

मीराँ के पद भक्ति से पूर्ण तथा प्रेम-माधुरी से सने हुए हैं। भाषा राजस्थानी है। उसमें आम बोलचाल के शब्द भी आ जाते हैं। प्रेम की गूढ़ व्यंजना और हृदय की अन्तर्दशाओं का मार्मिक विवेचन इनके पदों में सर्वत्र भरे पड़े हैं। यद्यपि मीरा की भाषा उतनी जोरदार नहीं है जितने उनके भाव, पर राग रागिनियों के आधार पर भजनों के द्वारा उनका रसास्वादन सामान्य जन आज भी कर लेते हैं। मीरा ने अपने साहित्य द्वारा साहित्य की भले ही उत्तम सेवा न की हो पर जन-साधारण के हृदयों को पावन एवं परिष्कृत अवश्य बनाया है। इन्होंने अपनी कविता में

वह अमर प्राण भर दिया है जो अज्ञान-निशा में सोए हुए यात्रियों को मार्ग के लिए नवीन शक्ति-प्रदान करता है। देवी मीराँ के पद साहित्य के लिए गौरव की वस्तु इस अर्थ में हैं कि जनसाधारण तक भी इनका रस पान कर लेते हैं। आत्मनिवेदन के भाव से पूर्ण और अनुभूति की पुट से परिपक मीराँ की हृदयस्पर्शिनी वाणी प्रियतम के जिस अमूल्य प्रेम का दर्शन कराती है वह अत्यन्त मधुर तथा आडम्बरशून्य है। उसमें आध्यात्मिक तत्व ओतप्रोत हैं।

## रसखानि ( सं० १६४०–१६८५ )

रसखानि पठान मुसलमान थे। इनका जीवन प्रेममय था। ये बिट्ठलनाथ के शिष्य थे और जीवन के अंतिम भाग में वृन्दावन में ही रहते थे। इनका रचना-काल सं० १६६० माना जाता है। प्रेमवाटिका और सुजानरसखान इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं।

रसखानि की भाषा शुद्ध, चलती, मजी हुई ब्रजभाषा है। भगवद्-भक्ति से ओतप्रोत इनकी रचना इनके हृदय की पवित्रता स्पष्ट करती है। मुसलमान होकर भी कृष्ण के प्रेम में विभोर होनेवाले रसखान ने अवश्य ही कृष्ण के द्वारा कुछ पाया था जिससे इतने उदार होकर उनका गुणगान कर सके। इनकी रचनाओं में भावों की छटा सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। भगवान प्रेम के वशीभूत हैं, इस भाव को इस सवैये में कितनी अच्छाई से ये व्यक्त करते हैं :—

ब्रह्म मैं ढूँढ्यों पुरानन गानन, वेद-रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यों सुन्यों कबहूँ न कहूँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‍यो, रसखान बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन॥

प्रेम की गूढ़ व्यंजना से पूर्ण रचना भावुकों के हृदय के लिए कंठहार है।

इनकी भाषा चलती, सरस और शब्दाडंबर-मुक्त होती थी। इनकी कृतियाँ संख्या एवं परिमाण में अधिक न होने पर भी रसिकों को आह्लादकारी हैं। भगवान के लीला-पक्ष को लेकर आपने मनोरम रचनायें की हैं। व्रजभूमि आपको अत्यन्त प्यारी है। इन दोनों सवैये में आपके ये भाव व्यक्त हैं :—

'मानुष हौं तो वही रसखान बसौं सँग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर-धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि के सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
रसखान सों नैनन सों रसखान जबै व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

# भक्तिकाल के फुटकल कवि

## आचार्य केशवदास

केशवदास का जन्म सं० १६१८ और मृत्यु १६७४ के आस-पास हुई। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके घराने में संस्कृत के विद्वान् होते आए थे। केशवदास के साहित्य-क्षेत्र में उतरने के पूर्व हिन्दी में रस, अलंकार आदि विषयों पर ग्रन्थों की रचना हो गई थी। संस्कृत का पूर्ण ज्ञान होने के कारण इनका ध्यान लक्षण-ग्रन्थों की ओर गया। संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित काव्यांगों का पूर्ण परिचय हिन्दी में देनेवाले सर्वप्रथम यही महानुभाव थे।

केशवदास द्वारा रचित रससम्बन्धी पुस्तक **रसिक-प्रिया** और अलंकारसम्बन्धी पुस्तक '**कवि प्रिया**' है। अलंकार की बहुत सी बातें इन्होंने दण्डी के काव्यादर्श, अमर-रचित काव्यकल्पलता-वृत्ति और केशव मिश्र लिखित अलंकारशेखर से ली है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की सामग्री किसी न किसी संस्कृत के लेखकों से ली है, और उसको ठीक से समझा नहीं पाया है। केशव-लिखित निम्नांकित इन ग्रन्थों का पता चलता है; कविप्रिया, रसिक-प्रिया, रामचन्द्रिका, वीर सिंह देव चरित, विज्ञानगीता, रतन-बावनी, और जहाँगीर-जस-चन्द्रिका।

कवि-हृदय के बिना कोरी पंडिताई के बल पर कविता उच्च कोटि की नहीं होती। केशवदास यद्यपि पूर्ण पंडित थे पर भाव के क्षेत्र में उनकी पहुँच नहीं के बराबर थी। यही कारण है कि इनके काव्य अधिक मर्मस्पर्शी, रसपूर्ण और मधुर नहीं हो पाए। अशक्त, फालतू शब्दों के प्रयोग जो आडम्बर को बढ़ाने के लिए हैं, अर्थ को विकृत करने के अतिरिक्त और कुछ कार्य

नहीं करते। कथा-प्रवाह में सम्बन्धसूत्र जोड़ने का कार्य भी इनसे नहीं हो सका है। संस्कृत-ग्रन्थों से अनुवाद करने में इनकी स्वतंत्र प्रवृत्ति बाधक हुई है। सरल स्थलों का ही अनुवाद ठीक से हो सका है।

प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में केशव की रामचन्द्रिका ही प्रसिद्ध हो सकी। वीरसिंहदेव-चरित काव्य केवल चाटुकारता ही प्रदर्शित करता है। केशव की रचना को देखने से पता चलता है कि कवि शब्द-क्रीड़ा कर रहा है। साथ ही ये कविता में चमत्कार लाने के लिए उक्ति-वैचित्र्य का आश्रय प्रायः लिया करते थे। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केशव प्रबन्ध-काव्य लिखने की क्षमता नहीं रखते थे। एक तो वे प्रबन्ध काव्य के कथा-प्रसंग के सम्बन्ध का निर्वाह नहीं करते थे, दूसरे कथा के अन्दर आनेवाले विशेष भावुक और मार्मिक स्थलों को परखने की शक्ति नहीं रखते थे और तीसरे कथा में आए हुए दृश्यों का वर्णन स्वाभाविक ढंग से नहीं कर पाते थे।

रामचन्द्रिका का पाठ करने से राम की जीवनसम्बन्धी घटनाओं का पूर्ण ज्ञान हमें इसलिए नहीं होता कि कवि किसी स्थान का वर्णन करने के बाद उछलकर दूसरे स्थान पर चला जाता है। विभिन्न स्थलों को जोड़ने के लिए जिस प्रणाली का अवलम्बन किया गया है वह आकर्षणरहित, अशक्त तथा केवल खानापूर्ति के लिए है। शब्द-साम्य के आधार पर उपमानों की भरमार करके आलंकारिक प्रदर्शन की भावना भर देने का कार्य केशवदास जानते थे। कहीं २ तो इन्होंने उचित-अनुचित का कुछ भी विचार नहीं किया है, और स्थलों को बिना समझे-बूझे उपदेश इत्यादि भर दिये हैं। राम के वन-गमन के समय राम द्वारा माता को पातिव्रत धर्म का उपदेश देना सभी पाठकों को खटकता है। रामचन्द्रिका के लम्बे-चौड़े वर्णनों को देखकर पता चलता है कि कवि को जितने नगरों की सजावट, तड़क-भड़क,

सेना का विस्तृत वर्णन आदि प्रिय हैं, उतने जीवन के गम्भीर और मार्मिक स्थल नहीं। अलंकारों के चक्कर में पड़कर कवि ने काव्य को दुरूह बना दिया है। इसीलिए इनके विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "कवि को दीन न चहै बिदाई, पूछे केशव की कविताई"। इसी हृदयहीनता के कारण कोई-कोई इन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कहते हैं।

कहीं कहीं तो उपमेय और उपमान इतने बेमेल हो गए हैं कि पढ़ने से हँसी आती है। "बिन्दु किधौं मुख फेनन को किधौं राज-सिरी स्रव मंगल लाजनि" यहाँ यह कहना कि वे रत्न मुख-फेन की तरह हैं कवि के ओछेपन को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार के बहुत से वर्णन रामचन्द्रिका में मिलेंगे। रामचन्द्रिका के वर्णन में इन्हें कहीं सफलता यदि मिली है तो केवल संवादों में, इसका कारण यह है कि ये दरबारी कवि थे और वाक्पटुता और दाव-पेंच को पूरी तरह से जानते थे। केशव की रचना में भोले पाठकों के हृदय को रमानेवाली वह सरस धारा, जो सूर और तुलसी में पाई जाती है, नहीं है, जिससे हृदय खिल उठे। पर काव्यांगों का विस्तृत विवेचन करके इन्होंने आनेवाले कवियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। अतः इनका यह कार्य अवश्य सराहनीय है। इनकी कविता के कुछ उद्धरण दिए जाते हैं :—

राघव को चतुरंग-चमूचय को गनै केसव राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझे पग तुंग पताकनि की पटसाजनि।
टूटि परे तिनतें मुकत धरनी उपमा बरनी कविराजनि।
बिन्दु किधौं मुख फेनन को किधौं राजसिरी स्रव मंगल लाजनि॥

गाहियो सिन्धु सरोवर सो जेहि बालि बली बरसों बर पेख्यो।
ढाहि दिए सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जातन हेख्यो।
साल समूल उखारि लिए लवड़ासुर पीछे तें आय सो टेख्यो।
राघव को दलमत्त करीश्वर अंकुश दै कुश केशव फेख्यो॥

## रहीम

भक्ति-काल के फुटकल कवियों में रहीम अत्यन्त जनप्रिय हैं। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ था और मृत्यु १६८३ में। इन्हें हिन्दी, अरबी, फारसी और संस्कृत का पूर्ण ज्ञान था। ये बहुत बड़े दानी थे। इनकी दानशीलता इनके उदारचेता होने का प्रमाण थी। अर्थाभाव के कारण जब आए हुए याचक को कुछ दे न सके थे, तभी की उनकी यह उक्ति है :—

तब ही लगि जीबो भलो दीबो होय न धीम।
बिनु दीबो जीबो जगत मोहिं न रुचत रहीम॥

अपने विस्तृत अनुभव के आधार पर जो कुछ इन्होंने लिखा है, वह वास्तविकता से सना हुआ जगत का सच्चा रूप व्यक्त करता है। जीवन के सच्चे पहलुओं का दिग्दर्शन जिस अनूठेपन से किया गया है वह बेजोड़ है। वस्तुस्थिति को समझने की शक्ति तथा उसे काव्यांगों में ढालने की क्षमता इनमें थी। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने भारतीय हृदय की व्यंजना भली प्रकार की है। कल्पना के साथ आपने कभी खिलवाड़ नहीं किया है। भाषा के विविध अंगों पर इस कवि का अधिकार गोस्वामी तुलसीदास के समान ठहरता है। इनकी चुभती हुई उक्तियाँ रीतिकाल के कवियों ने ज्यों की त्यों रखने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की है। शृङ्गार आदि विषय का वर्णन भी सौंदर्यमय है। 'बरवै नायिका भेद' में कविने इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं :—

भोरै बोलि कोइलिया बढ़वति ताप,
घरी एक भरि अलिया रहु चुप चाप।
बाहर लेके दियवा बारन जाइ,
सासु ननदि घर पहुँचत देति बुझाइ।
पिय आवत उठि कै अँगनैया लीन,
बिहँसति चतुर तिरियवा बैठक दीन्ह।

प्रीतम एक सुमिरिनियाँ मोहि देइ जाहु,
जेहि जपि तोर बिरहवा करब निबाहु।

इनके नीतिविषयक दोहे भी अत्यन्त प्रिय हैं। उनके नमूने निम्नलिखित हैं :—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भयो धीम।
केहि की प्रभुता नहीं घटी पर घर गए रहीम॥

## सेनापति

ये अनूप शहर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १६४६ में माना जाता है। सेनापति का रचित केवल एक ही ग्रन्थ 'कवित्त-रत्नाकर' प्राप्त है। इनकी काव्य कला में सहृदयता है। विरहाग्नि में जलती हुई नायिका के दुखों का वर्णन ऋतुओं के अनुसार बहुत से कवियों ने किया है, पर इनके वर्णनों के सामने सबका वर्णन फीका पड़ जाता है। पावस ऋतु का वर्णन करते हुए कवि लिखता है :—

दूरि जदुराई "सेनापति" सुखदाई देखो,
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ,
दरकीं सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ।
आई सुधि बर की, हिए में आनि खरकी
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भईं बावन की सावन की रतियाँ॥

इनके पदविन्यास अत्यन्त ललित तथा मनोहर हैं। इनका प्रकृति-वर्णन अनुभूतिपूर्ण है। इनकी कविता हृदय को स्पर्श करती हुई

चलती है। रचना की प्रौढ़ता ने साहित्य में इनका स्थान और उच्च कर दिया है। किसी किसी स्थान पर तो भावुक कविने अपनी चमत्कार-प्रणाली के द्वारा बड़ी विशेषता ला दी है।

श्लेषका आश्रय लेकर कवि ने निम्नांकित रचना कितनी सुन्दर की है :—

नाहीं नाहीं करै, थोरै मांगे सब दैन कहै
मंगन को देखि पट देत बार बार हैं।
जिनके मिलत भली प्रापति की घटी होति
सदा सुभ जन मन भाये निरधार हैं।
भोगी ह्वै रहन बिलसत अवनी के मध्य
कन कन जौरे दान पाठ परवार हैं।
'सेनापति' बचनन की रचना निहारि देखो
दाता और सूम दोनों कीन्हें एकसार हैं।

अनुप्रास एवं यमक की भी अधिकता इनकी रचनाओं में पाई जाती है। विशेषता यह है कि इनके प्रयोगों से रचना का महत्व बढ़ गया है। व्यर्थ के शब्दों का प्रयोग तथा ऊलजलूल बातें इनकी रचना में नहीं आने पाई हैं। भक्ति-सम्बन्धी इनकी रचनाएँ भक्ति का प्रवाह उँड़ेलती चलती हैं, जैसा कि इन पंक्तियों से प्रकट होता है, "आपने करम करिउतरौंगो पार तौ तो हौं ही करतार करतार तुम काहे के ?" भक्त अपनी आकुलता व्यक्त करने के लिए ही ये भाव व्यक्त करता है। वह सत्य का पूर्ण सामीप्य अल्प काल में ही प्राप्त करना चाहता है। इसीलिए वह अधीर हो उठता है। कवि के उपयुक्त पद में व्यथामिश्रित अधीरता स्पष्ट झलकती है। सारांश यह कि सेनापति ने भक्ति की फुटकल रचना करनेवाले कवियों में अधिक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया है। इनके भाव मार्मिक, गहन तथा स्वाभाविक हैं। इनकी भाषा प्रौढ़, प्राञ्जल तथा मधुर है।

# रीतिकाल

( १७००–१९०० )

हिन्दी काव्य प्रौढ हो चुका था। केशवदास के रस-निरूपण और अलंकार-निरूपण ने हिन्दी में काव्यांगों का सम्यक् समावेश कर दिया था पर रीतिकालीन अखंड काव्य की परम्परा केशव से न चल कर चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। यह काल केशव की कविप्रिया से पचास वर्ष बाद समझना चाहिये। त्रिपाठी जी ने स० १७०० के लगभग काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु और काव्य-प्रकाश की रचना द्वारा काव्य के सभी अंगों पर प्रकाश डाला। आगे चलकर इस प्रकार के लक्षणग्रंथों की भरमार सी हो चली। कवि अपनी रचना में पहले लक्षणग्रंथो की विशेषता दिखलाता है, फिर उसकी पुष्टि के लिये कवित्त, सवैया या दोहा लिखता। इसप्रकार के ग्रन्थों में काव्यांगों का विस्तृत विवेचन देखने को नहीं मिलता। अलंकार या जो भी रस व्यक्त हुए हैं पूर्णतया अस्पष्ट तथा प्रयासरहित सिद्ध हुए। इस प्रकार के लक्षण-ग्रंथ निर्माण करने वाले प्रायः सभी कवि अपनी कृतियों द्वारा साहित्य-शास्त्र का बोध पाठकों को कराने में असमर्थ रहे। अतः उन्हें आचार्यत्व की पदवी नहीं मिल सकी। काव्यांगों का स्वतन्त्र विवेचन न होने के कारण हिन्दी में संस्कृत की तरह अलंकारवाद, रसवाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद आदि नहीं आए। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि उस काल के कवि भावुक और सहृदय थे, कविता-क्षेत्र में कुशल कवि थे। उनके द्वारा अलंकार एवं रसों का जो विस्तृत विवेचन हुआ उससे साहित्य की वृद्धि हुई। इस प्रकार के वर्णन इतने हृदयग्राही हैं कि एक बार सुनने पर सदा के लिये हृदय-पटल पर बैठ जाते हैं। अलंकार के अतिरिक्त नायिका-भेद की

ओर कवियों की प्रवृत्ति होने के कारण शृंगार की बहुत ही मनोरम रचनाएँ देखने को मिलती हैं। नखशिख वर्णन जो नायिका को आलम्बन मानकर शृंगार के भीतर किये गए हैं, अत्यन्त ही उत्कृष्ट हैं। षट्ऋतु-वर्णन, बारहमासा-वर्णन भी नायिका को ही केन्द्र मान कर किए गये हैं।

रीतिकाल की इस सकुंचित मनोवृत्ति ने साहित्य को बहुत सुन्दर नहीं होने दिया। प्रकृति की मनोहर छटा, मानवी प्रकृति की सूक्ष्म दशाओं एवं संसार के अनेक गूढ़ तत्वों का निरूपण कवि नहीं कर सके। साहित्य एक बँधी हुए लीक पर चलने लगा, जिससे वह निष्प्राण सा हो गया। कवि लोग लीक का अनुगमन करने के कारण अपनी व्यक्तिगत विशेषता नहीं दिखला सके। अतः साहित्य की सर्वांगीण उन्नति अवरुद्ध हो गई। भाषा की प्रौढ़ता प्राप्त होने पर भी कवि उसे व्याकरण के नियमों में बाँध नहीं सके। बहुत से कवियों ने तो व्रज भाषा एवं अवधी का सम्मिश्रण करके व्याकरण के लिए एक समस्या खड़ी कर दी। सूरदास की भाषा में भी पूर्वी के प्रयोग मिलते हैं। बिहारी की भाषा में कवि दीन दिखलाई पड़ता हैं। दास जी ने अपने 'काव्य निर्णय' में भाषा पर भी प्रकाश डाला है। इनकी दृष्टि से वही कवि अच्छा है जो अपने काव्य में कई भाषाओं का मेल दिखला सके, इसीलिये उन्हों ने लिखा है :—

तुलसी गंग दुवौ भये सुकबिन के सर्दार।
इनके काव्यन में मिली, भाषा बिबिध प्रकार॥

इस दोहे के अर्थ के अनुसार तुलसीदास अन्य कवियों के सर्दार इसलिये माने गए कि उनके काव्यों में अनेक प्रकार की भाषा मिलती है। भाषा के आधार पर ही कवि की परख करने की यह चेष्टा कहाँ तक प्रशंसनीय कही जा सकती है? भाषा-संबंधी मीमांसा न होने के कारण कविलोग मनमाने शब्दों के

प्रयोग में स्वतन्त्र थे। अपने सुभीते के अनुसार वे 'करना' के भूतकाल के लिये किन्हों, कन्यो, करियो, किय और कीन तक भी रखा है। इसके परिणाम-स्वरूप भाषा में स्थिरता नहीं आई। मुसलमानों के संसर्ग में आने से विदेशी शिष्टाचार और सभ्यता का अनुकरण हुआ और फारसी के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ। शब्दों के प्रयोग से आगे चलकर विदेशी भावों को भी स्थान मिलने लगा और शैली की पूरी अलंकार-सामग्री कवियों की कृतियों में दिखालाई पड़ने लगी। बिहारी ऐसे परम उत्कृष्ट कवि भी फारसी भावों के प्रभाव से नहीं बचे हैं। पर उनकी विशेषता यह है कि इस प्रकार के विदेशी भावों में उनका अपनापन झलकता है। रीतिकाल के इन कवियों ने भी अपना प्रिय छन्द कवित्त और सवैया ही रखा। शृंगार और वीर रस के लिये ये छन्द अधिक उपयुक्त माने गए। नाद-सौन्दर्य की विशेषता के कारण सवैया और कवित्त ही कवियों को अधिक आकृष्ट कर पाए। जनरुचि का ख्याल न करके इन कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा-महराजाओं के मनोरंजनार्थ कविताएँ कीं। इसलिये काव्य-क्षेत्र विस्तृत न हो पाया। इस काल के मुख्य कवियों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

## बिहारी ( १६६०——१७२० )

इनका जन्म ग्वालियर के समीप बसुवा गोविन्दपुर ग्राम में हुआ था। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है। ये जयपुर के महाराज जयसिंह के दरबार में रहते थे।

रीतिकाल के अर्थ-लोलुप वासनामय जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कवियों में बिहारी को ही हम इन अवगुणों से कुछ दूर पा सकते हैं। पर समय के प्रभाव से बचकर चलनेवाले बिरले ही हुआ करते हैं। कालचक्र के वेग में बड़े से बड़े महा-पुरुष तक भी बह जाया करते हैं तो बिहारी की कोई बात ही नहीं। फिर भी बिहारी एक स्वाधीनचेता व्यक्ति थे। राजाश्रय

प्राप्त करने पर भी इन्होंने अपने को राजाओं का दास कभी नहीं माना। काव्य-रस-माधुरी के मधुव्रती कविवर बिहारीलाल अपने दोहों में जो कुछ भी काव्य-पीयूष भर गए हैं, वह साहित्य-सेवियों के लिए चिर आह्लादकारी एवं स्फूर्तिदायक बना रहेगा। यद्यपि बिहारी में प्रतिभा-शक्ति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है और यदि वे उसका प्रयोग किसी भी प्रबन्ध काव्य के लिए करते तो पूर्ण सफल हो सकते थे पर उधर की ओर शायद इनकी प्रवृत्ति ही नहीं थी। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं, प्रबन्ध काव्य लिखनेवाले कवियों के लिए सतत कर्मठ जीवन, अध्यवसाय, अनुशीलन एवं विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति की विशेष आवश्यकता पड़ती है। मुक्तक रचना करने वाले कवि बिना लगाम के घोड़े की तरह हुआ करते हैं जिनकी उड़ान दूर तक तो होती है पर उसमे भावों की गम्भीरता तथा गहनता नहीं पाई जाती है। इस प्रकार के कवि भोजन में केवल चटनी का कार्य करते हैं, उनसे पूर्ण तृप्ति की आशा नहीं की जा सकती। अतः यह बात कुछ स्पष्ट सी हो जाती है कि राजाश्रय प्राप्त करने के कारण बिहारी अन्य साहित्य-महारथियों की भाँति अध्यवसायी और कर्मठ नहीं रह गए थे। उनकी मुक्तक रचना के लिए जो दूसरा कारण है उस साहित्य की परिधि में बँधना था। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की परख करने वाले कवि ही प्रबन्ध काव्य लिखने में सफल हो हा सकते हैं। इस प्रकार के कवियों में जीवन-सम्बन्धी अनुभूति, प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्ति और विचारों की गहनता विशेष प्रकार से पाई जाती है। बिहारी स्वतन्त्र विचारधारा के व्यक्ति अपने को साहित्य के नव रसों एवं अनेकानेक भावों में फँसाना श्रेयस्कर नहीं समझते थे। इनकी कविता केवल इनके आनन्द के लिए थी। स्वान्तः सुखाय कविता करनेवाले बिहारी समाज के हित की दृष्टि नहीं रखते थे। इनको शायद याद नहीं था कि कवि का कार्य महान् होता है। यदि ठीक चला तो कवि पथ-द्रष्टा नहीं

तो पथ-भ्रष्ट होगा ही। यदि कवि इस उच्चादर्श को समझने में सफल हुआ होता तो शृङ्गारविषयक इतनी उक्तियाँ उनकी सतसई में हमें उपलब्ध न होतीं।

पर बिहारी इसलिए क्षम्य हैं कि एक राजा के द्वारा प्राप्त धन से अपनी जीविका चलाते थे। वह राजा भी उस प्रकार का त्यागी एवं आदर्श राजा नहीं था जिसकी कल्पना हमारे आर्य-ग्रन्थों से मिलती है। अतः राजा के मनबहलाव के लिए बिहारी को भी अपने साहित्य का झंडा नीचा करना पड़ा। कुछ तो संगति का प्रभाव कहा जा सकता है और कुछ वैभव का। वैसे तो बिहारी ने भक्तिभाव, वैराग्य, अहंकार इत्यादि विषयों पर भी अपनी प्रतिभा का परिचय किया है। पर नायक-नायिका के अनेक भेदों का चित्रण करनेवाली उनकी दोहावलियों को विशेष ख्याति प्राप्त है। प्रेम के क्षेत्र में कवि की परख अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमयी है। प्रेमी के लिए उसका प्रेमालम्बन सब कुछ होता है। वह उसीके लिए जीता है और उसका स्वर्ग भी वही है। यही भाव नीचे की कविता में दर्शाया गया है:—

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुख दीन।
जो लहिए सँग सजन, तो धरक धरकहू की न।

प्रेमी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये नरक में भी रहना पसन्द करता है। पर उसके बिना उसे मोक्ष भी प्यारा नहीं है। सूर की गोपियों में भी हमें इसी प्रकार भावना मिलती है। पर इस प्रवाह के वेग में सूर के भाव पाठकों के हृदय पर चिर अंकित हो जाते हैं और उनकी सुमधुर लय-स्मृति सदा पाठकों के हृदय में बनी रहती है। बिहारी केवल हृदयवीणा के तार को ही हिलाकर रह जाते हैं, पाठकों को समझने का प्रयास करना पड़ता है। यही कारण है कि इनके बहुत से भाव सामान्य पाठकों के बुद्धि के परे हो जाते हैं। नायक के विरह में नायिका व्याकुल है,

शरीर की ज्वाला को आँसुओं से धोती है, पर फिर भी शान्ति नहीं मिलती। कवि की उक्ति सराहनीय है। विरोधाभास-मूलक यह दोहा अत्यन्त सुन्दर है :—

नेह न नैनन को कछू उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय।

प्रेमाधिक्य की अन्तर्दशा का वर्णन कवि ने इस दोहे में बड़ी उत्तमता से किया है। प्रेमातिरेक में प्रेमी का सामीप्य ही सुखद एवं आनन्दवर्द्धक होता है। नेत्रों को भी सदा उसको देखने की चाह रहती है। उसके दर्शन के बिना वे अशान्त रहते हैं, आँसू बहाते हैं। सौन्दर्यानुभूति के कारण ही कवि कहीं-कहीं विशेष प्रकार से सफलता प्राप्त कर पाया है। प्रेमी के लिए प्रेमिका का सौन्दर्य चिरनवीन हुआ करता है। इस दोहे में यही भाव है: —

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

प्रतिक्षण सुन्दरता बढ़ने के कारण चित्र नहीं खींचा जा सका। सुन्दरता की भी सीमा होती है। ससीम पदार्थों के सौन्दर्यवर्द्धन की इस प्रकार गति जगत में देखने को शायद कहीं न मिलेगी। चन्द्र की कला तो नित्य बढ़ती है पर बिहारी की नायिका के सौन्दर्यवर्धन की इस प्रकार की गति जगत में देखने को शायद कहीं न मिलेगी। बिहारी की नायिका का सौन्दर्य प्रतिक्षण बढ़ता है। कल्पना की इस प्रकार की औंधी उड़ान से साहित्य में कवि तो वाहवाही प्राप्त कर लेता है पर सहृदय पाठकों के लिए चिरस्मरणीय नहीं होता। इस प्रकार की पद्धति का उत्कर्ष हमें निम्नांकित दोहे में मिलता है :—

पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँपास।
नितप्रति पूनो ही रहत आनन-ओप उजास॥

उस नायिका के पड़ोसियों को पंचाङ्ग की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार की अतिशयोक्ति हमें उर्दू-साहित्य में विशेष मिलती है। एक शायर कहता है।—"तुम्हारी मुहब्ब से पैदा हुआ ग़म व दर्द, हमें पूरी तरह मिल जाय तो वह इतना बढ़ जाय कि प्रलय मच जाय"। इस प्रकार का प्रलय दर्द-दिलों में अधिक पाया जाता है। हो न हो बिहारी भी इन्हीं किन्हीं दर्द-दिलवालों में से न हों। मुसलमानों की सल्तनत का प्रभाव केवल राजाओं पर ही नहीं पड़ा था बल्कि प्रजा भी इससे प्रभावित थी। बिहारी के दोहे इसके प्रमाण स्वरूप हैं। नवोढ़ा, ऊढ़ा, अभिसारिका आदि नायिकाओं के प्रति भी कवि की रचनाएँ विशेष सराहनीय हैं। इस प्रकार की अनुभूति कवि को राजाश्रय प्राप्त करने में ही हो सकती थी। शृङ्गार की अनूठी उक्तियाँ सरस हृदयों में उल्लास भर देती हैं। रीति-काल की इस रीति का निर्वाह करनेवाला यदि कोई हुआ तो बिहारीलाल।

जीवन के अन्तिम दिनों में कवि जीवन से ऊबकर भगवद्-विषयक रचनाओं में प्रवृत्त होता है —

या अनुरागी चित्त की गति, समुझे नहीं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े स्याम रँग त्यों त्यों उज्वल होय॥

ईश्वर के प्रेम में तल्लीन होनेवाले भक्त का हृदय स्वच्छ हो जाता है। उनको प्राप्त करने के लिए कवि कहता है:—

तब लगि या मन सदन में हरि आवैं किहि बाट।
बिकट जरे जौ लगि निपट खुलैं न कपट कपाट॥

कहीं कवि ईश्वर से खीझता है:—

कब को टेरत दीन ह्वै हो न स्याम सहाय।
तुमहू लागी जगत गुरु जग नायक जग बाय॥

इसीलिए वह कहता है:—

मोहूँ दीजै मोख जो अनेक पतितन दिये।
जो बाँधे ही तोष तो बाँधो अपने गुननि॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी में वैचित्र्य, ऊहापोह-कथन, अलंकारों का सूक्ष्म विन्यास, शृंगारविषयक उक्तियों की गहनता, भक्ति एवं वैराग्य की उत्कृष्ट रचनाएँ भरी पड़ी हैं। विशेषता यह है कि कवि अपने भावों को नपे-तुले शब्दों में कहता है। समासोक्ति-प्रधान इस प्रकार की भाषा का प्रयोग रीति-काल के अन्य कवियों में हम नहीं पाते। भाषा के सरस उद्यान में यदि बिहारी भावों की बहारें प्रस्फुटित नहीं कर पाए तो इससे क्या, हमें उस उद्यान की सैर तो करा ही दी।

सतसई में भाव-व्यंजना या रस-व्यंजना अथवा वस्तु-व्यञ्जना सभी उत्कृष्ट हैं। व्यंगार्थ को स्फुट करने के लिए जो भी दोहा लिखा गया है कल्पना-क्लिष्ट हो गया है। कहीं-कहीं बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है।

अलंकारों की योजना भी निपुणता से भरी है। एक-एक दोहे में कई अलंकार और सब यथास्थान ठीक रखे गए हैं। व्यंग्य-अलंकार के उदाहरण भी अच्छे मिलते हैं। विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त बिहारी ने सूक्तियाँ भी लिखी हैं। भाषा चलती और साहित्यिक है।

बिहारी में 'देव' और पद्माकर की गंभीरता एवं मार्मिकता नहीं है। यही कारण है कि भावों का उदात्त स्वरूप इनकी रचना में नहीं मिलेगा। शृंगार-प्रधान रचनाएँ निम्नकोटि के भावों तक ही सीमित है, वे प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुँच पा सकी हैं।

## भूषण

भूषण का जन्म सं० १६७० में और परलोक-वास सं० १७७२ में माना जाता है। इन्हें कई राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था।

अन्त में महाराज शिवाजी के यहाँ आश्रय मिला था। छत्रसाल के यहाँ भी इन्हें विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था।

'कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू' के अनुसार हम कह सकते हैं कि भूषण रीतिकाल के शृंगारिक कवियों की लीक छोड़कर चलने वालों में से थे, जिन्होंने गिरते हुए भारतीयों के चरित्र को अपने काव्य-बल से ऊँचा उठाया है। कवि अपनी ही कृतियों से अमर एवं पूज्य होता है। भूषण के लिए यह सत्य सर्वथा घटित है। आपकी लिखित रचनाएँ शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल-दशक (प्राप्य) भूषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण-हजारा (अप्राप्य) हैं। भूषण की कविताओं में वीर-रस का जो प्रशस्त एवं दर्पपूर्ण प्रवाह मिलता है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। भाषा में ओज है पर शब्दों का बिगाड़-बनाव भाषा को विकृत करता पाया जाता है। व्याकरण आदि नियमों का उल्लंघन भी कवि ने किया है। इनकी रचना प्रौढ़, प्रभावकारी एवं सशक्त है। रचना के नमूने कुछ नीचे दिए जाते हैं :—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअम्भ पर
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदंड पर चीता मृग झुंड पर
'भूषण' बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों मलेच्छबंस पर शेर शिवराज है।

भूषण का काव्य नाद-सौन्दर्य एवं अलंकार-छटा से पूर्ण है। कल्पना की तीव्र उड़ान ने उसमें और भी शक्ति भर दी है। यही कारण है कि भावुक हृदय उनकी रचनाएँ सुनकर वीर रस में झूमने लगते हैं।

भूषण वीर रस के ही कवि थे। शृंगार आदि रसों पर जो भी एक-दो रचनाएँ प्राप्त हैं नगण्य ही हैं। 'रीतिकाल' के कवि होने के कारण भूषण ने अपना प्रधान ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ के रूप में बनाया पर अलंकारों का निरूपण उक्त ग्रंथ में ठीक से नहीं हो सका है।

## देव

आपका जन्म सं० १७३० में इटावा में हुआ था। १६ वर्ष की अवस्था से ही आप कविता करने लगे थे। आपके रचित २५ ग्रन्थ मिलते हैं :—

भाव विलास, भवानी विलास, कुशल विलास, रस विलास, राधिका विलास, पावस विलास, वृक्ष विलास, अष्टयाम, सुन्दरी-सिन्दूर, सुजान विनोद, प्रेम तरंग, राग रत्नाकर, देव चरित्र, प्रेम चन्द्रिका, काव्य रसायन, सुखसागर तरंग, देवमाया प्रपंच, ब्रह्मदर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, तत्वदर्शन पचीसी, जगद्दर्शन पचीसी, नीति शतक, नखशिख, प्रेमदर्शन, रसानन्द-लहरी, प्रेम दीपिका, सुमिल विलास।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में सबसे अधिक ग्रन्थों का निर्माण देव ने किया है। कोई-कोई इनके ग्रन्थों की संख्या ५२ और कोई ७२ बताते हैं। ये आचार्य एवं कवि दोनों रूप में हमारे सामने आते हैं। आचार्यत्व पद के लिए रीतिकाल के कवियों में कोई पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हुआ है। पर इसमें आश्चर्य नहीं कि देव में कवित्व-शक्ति पर्याप्त थी और वे मौलिक कवि थे। किसी रुचिविशेष के कारण इन्हें काव्यक्षेत्र में इतनी सफलता नहीं मिल सकी जितनी चाहिए थी। अनुप्रासों के आडम्बर के कारण भावों की गाड़ी कीचड़ में फँस जाती है, परन्तु भाषा में प्रवाह सर्वत्र पाया जाता है। अलंकार-विधान की ओर दृष्टि रखने के कारण इन्हें शब्द-व्यय अधिक करना पड़ा

है, जिससे कहीं-कहीं अर्थ में संकोच आ जाता है। तुकान्त एवं अनुप्रासों के लिये कहीं-कहीं शब्दों का तोड़-मरोड़ करने से वाक्यों में बेढंगापन आ गया है। जहाँ पर वांछित भाव को व्यक्त करने के लिये इनकी शैली बाधक नहीं हुई है, वहाँ रचना बहुत सरस हुई है। ये शृङ्गार रस और शान्त रस दोनों के क्षेत्र में अपना विस्तृत स्थान रखते हैं। शृङ्गार रस में इनकी यह उक्ति प्रेमी के प्रेम को व्यक्त करने में कितनी समर्थ है। प्रेमी के प्रथम-मिलन में वे काबू में नहीं रहते और बरबस प्रेम-पात्र की ओर खिंच जाते हैं, वहाँ से हटने का नाम नहीं लेते। कवि कहता है:—

धार में धाय धँसी निरधार ह्वै जाय फँसी उकसीं न उधेरी।
री अँगराय गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहीं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

प्रेम की अन्तर्दशा के वर्णन में कवि पूर्ण सफलता प्राप्त कर पाया है। विरह की अग्नि शेषनाग की जिह्वा की तरह दिखलाई गई है। गोपियाँ कृष्ण के विरह-ज्वाल में दिन-रात जलती हैं और कहती हैं:—

सांवरे लाल को सांवरो रूप में नैनन को कजरा करि राखो।

वियोगिनी की स्थिति का वर्णन कवि कुशलता से कर पाया है:—

दीजिये दरस देव, कीजिये सँजोगिनि ये,
योगिनि ह्वै बैठी हैं वियोगिन की अँखियाँ'।

प्रिय के वियोग में प्रकृति की सारी वस्तुएँ विपरीत कार्य करती हुई दिखलाई गई हैं:—

कन्त बिनु बासर बसन्त लागे अंतक से,
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन।

सान धरे सार से चन्दन घनसार लागे,
खेद लागे खरे मृगमेद लागे महँकन ॥
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी से गुलाल
अरु गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।
अंग अंग आगि ऐसे केसर के नीर लागे,
चीर लागे जरन अबीर लागे दहकन ॥

इसी प्रकार गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में जगत् की परवाह नहीं करतीं। प्रेमाधिक्य के कारण लोक-लज्जा का भाव उठ जाता है। वेदनाशील हृदय के लिए प्रिय की प्राप्ति परम सुखदायिनी होती हैं। इसीलिए एक गोपी कहती है :—

कोऊ कहै कुलटा कुलीन अकुलीन कहै,
कोऊ कहै रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे नरलोक परलोक बरलोकन में,
लीन्हीं मैं अलीक लोक लीकनि ते न्यारी हौं ॥
तन जाउ मन जाउ देव गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
बृन्दाबनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीतपटवारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥

संयोग तथा वियोग शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन कवि ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है। भाव-व्यंजना और रस व्यंजना के अतिरिक्त वस्तु-व्यंजना का भी सहारा लिया है। इस प्रकार के वर्णन प्रेम की अन्तर्दशा का चित्रण करते हैं। बहुत से स्थानों पर कवि बुद्धि की विलक्षणताके कारण बहुत सरल एवं स्निग्ध रस-प्रवाह बहाने में समर्थ हुआ है। काव्याङ्गों का पूर्ण पंडित होने के कारण देव की कविता साधारण पाठकों के लिए क्लिष्ट हो जाती है। यही कारण है कि देव का प्रभाव साधारण पाठकों पर नहीं पड़ सका। फिर भी इनके अधिकांश ग्रंथों की रचना प्रौढ़ एवं काव्य-गुण-

युक्त है। यदि शब्द-वैचित्र्य चमत्कार की रुचि कवि में न होती और भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिए ऊहापोह पद्धति का सहारा न लिया गया होता, सीधी साधारण उक्तियों द्वारा भाव प्रकट किए गये होते तो निश्चय ही कवि को रीतिकाल में सर्वप्रथम स्थान मिलता।

जीवन के उत्तर पक्ष में कवि भक्ति के प्रवाह में बहता हुआ दिखलाई पड़ता है। शृंगार रस का कवि भक्ति में किस प्रकार सफल हो सकता है, किसी को देखना हो तो देव को देख सकते हैं। कवि जागतिक प्रेम से उठकर उस उच्च भूमि पर जा विराजता है जो पावन एवं पुनीत है तथा जहाँ पहुँचने के लिए जगत् के सारे प्राणी व्यक्त या अव्यक्त रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। संसार की असारता, विविध वर्णों का आडम्बरयुक्त जीवन, ऊँच-नीच के भेदभाव, कर्तव्य-पथ की अवहेलना कवि को समाज में खटकती हैं। यही कारण है कि ये इस प्रकार के भाव भी अपनी कविता में भर पाए। पर जो भी हो, भाषा-भाव एवं अलंकार-प्रयोग की दृष्टि से देव किसी भी रीतिकाल के कवि से पीछे नहीं हैं। शब्द-योजना एवं अलंकार-योजना भले ही कहीं कहीं कुछ विकृत हो गई हो पर काव्यों में पांडित्य का प्रदर्शन सर्वत्र मिलता है। कल्पना की उड़ान में कवि की सूक्ष्म परख ने कमाल कर दिखाया है। इनकी कविता शुद्ध ब्रजभाषा में है। कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य सर्वत्र पाया जाता है। इनकी दृष्टि सर्वव्यापी है।

छन्दों में इन्होंने विशेषतः सवैया और कवित्त को ही अपनाया है। इससे पता चलता है कि कवि भाषा में लय की प्रधानता रखनेवाला था। सरस कंठ से कहने में श्रोता और वक्ता दोनों आनन्द का अनुभव करते हैं। कविताओं में कहीं-कहीं अतिशयोक्तियाँ भी पाई जाती हैं जो रीति काल के कवियों की विशेषता है। अनुभूति के क्षेत्र में देव का स्थान बिहारी से

निम्न है। यद्यपि देव में भाषा की समाहार-शक्ति के साथ भावों की समाहार-शक्ति नहीं थी और ये थोड़े में बहुत कुछ प्रकट न कर सके पर इन्होंने जो कुछ लिखा है वह स्थायी एवं सरस है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि में देव को पूर्ण सफलता मिली है। कहीं कहीं तो केवल उदाहरणों का संकलन ही हुआ है जिससे उनकी मौलिकता पर धप्पा लग जाता है।

## पद्माकर

( सं० १८१०—१८९० )

रीतिकाल के कवियों में इतनी मधुर और सरस कविता करने-वाला, जो पाठकों के हृदय में आनन्द की लहर फैला दे पद्माकर को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। बिहारी में भी इस प्रकार की शक्ति थी पर छन्दों के प्रवाह और गति में पद्माकर का स्थान बिहारी ऊँचा उठ जाता है। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इन्हें जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंह ने कविराज-शिरोमणि की उपाधि दी थी।

इनके लिखे हुए निम्नांकित ग्रन्थ हैं, हिम्मत बहादुर-बिरदावली, जगत विनोद, गंगा-लहरी, पद्माभरण, गनगौर, प्रबोध पचासा तथा रामरसायन। हिम्मत बहादुर-विरदावली में कवि ने बड़ी ओज-स्विनी भाषा का व्यवहार किया है। भाव भी तदनुकूल हैं। महाराज प्रतापसिंह के पुत्र महाराज जगतसिंह के नाम पर इन्होंने जगतबिनोद बनाया। प्रबोध-पचासा वैराग्य एवं भक्ति से भरा एक ग्रन्थ है। 'पद्माभरण' अलंकार-ग्रंथ है। 'गंगालहरी' गंगाजी की महिमा व्यक्त करती है। 'रामरसायन' वाल्मीकि-रामायण के आधार पर लिखा गया है। पद्माकर का 'जगतबिनोद' शृंगार रस का एक बेजोड़ ग्रन्थ है। कल्पना और भावों का समन्वय इस पुस्तक में कवि ने बड़ी उत्कृष्टता से किया है।

इनकी रचनाओं को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

कवि का अधिकार भाषा की सभी शैलियों पर रहा है। भावों की सजीवता ने अलंकारों के मिश्रण से जो रूप खड़ा कर दिया है वह पाठकों को हर्षातिरेक से भर देता है। सभी प्रकार के भावों को व्यक्त रने का प्रयास कवि ने किया है, जिसके लिए भाषा सहचरी के रूप में सदा उनके पास खड़ी रहती है। कहीं कहीं अनुप्रासों की दीर्घ शृंखला भी कवि ने बैठा दी है। पर उससे वर्णनों में भद्दापन नहीं आने पाता। मधुर कल्पना को व्यक्त-करनेवाली भाषा जिन भाव-लहरियों में अठखेलियाँ करती चलती है वह देखते ही बनता है। शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग भी इनकी भाषा में प्रायः पाए जाते हैं। कहना न होगा कि कवि का हृदय विशाल एवं अनुभूति-शक्ति तीव्र थी। किसी भी बात को ये इस तरह व्यक्त कर सकते थे जो सबको प्रिय हो।

अनुकूल प्रसंगों के साथ भाषा और भाव का मेल करके कवि ने जन्मजात कवि-प्रतिभा अपने में रखने का परिचय दिया है। आपकी रचना रूढ़ियों की परम्परा का पालन करती हुई मालूम नहीं पड़तीं। शृंगारविषयक इनकी रचनाएँ सहृदय पाठकों की कण्ठहार हैं। प्रबन्ध काव्य में कवि यद्यपि सफल नहीं हुआ है पर इसके कई कारण हो सकते हैं। सम्भव है कवि की रुचि उधर न रही हो। भक्तिपूर्ण कविताएँ शुद्ध सात्विक प्रेम को व्यक्त करती हैं। कवि जिस अनन्यता से गंगा की प्रार्थना करता है वस्तुतः वह हृदय-पटल खोलनेवाली है। भावों का इतना परिमार्जित स्वरूप आप ही की रचनाओं में पाया जाता है।

आपकी कविता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

चालो सुनि चन्दमुखी चित्त में सुचैन करि
तित बन बागन घनेरे अलि घूमि रहे॥
कहैं पद्माकर मयूर मंजु नाचतु हैं,
चख से चकोरनी चकोर चूमि चूमि रहे॥

कदम अनार आम अगर अशोक थोक
लतनि समेत लोने २ लगि भूमि रहे ॥
फूलि रहे फलि रहे फबि रहे फैलि रहे
झपि रहे झूलि रहे झुकि रहे झूमि रहे ॥

गंगा-लहरी के कवित्त के नमूने देखिए :—

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह
एरे, चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै ॥
कहैं 'पद्माकर' नरक सब मूँदि करि
मूँदि दरवाजन को तजि यह थान दै ॥
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, याते
दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान दै ।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ
खाता खति जान दै बही को बहि जान दै ॥

# रीतिकाल के अन्य कवि

## घनानन्द ( आनन्दघन )

( जन्म सं० १७४६ के लगभग मृत्यु सं० १७९६ )

घनानन्द कायस्थ-कुल में पैदा हुए थे। इनके रचित ग्रन्थ सुजान-सागर, कृपाकांड, विरह-लीला, कोकसार और रसकेलि-बल्ली हैं।

घनानन्द साक्षात् रसावतार और ब्रजभाषा के प्रधान कवि कहे जाते हैं। इनकी भाषा विशुद्ध, सरस एवं शक्तिशालिनी है। इस प्रकार की भाषा लिखने में कोई सफल नहीं हो पाया है। रचना की प्रौढ़ता एवं भावों की सरसता सर्वत्र विराजती है। शृङ्गार के वियोग-पक्ष की उक्तियाँ सरस हृदयों में कसक उत्पन्न कर देती हैं। इनकी रचनाओं में 'प्रेम की पीर' सर्वत्र झलकती है। शृंगार के क्षेत्र में इस प्रकार की प्रवीणता और विदग्धता प्राप्त करनेवाला ब्रजभाषा का कोई दूसरा कवि नहीं हुआ। इनके सम्बन्ध में यह उक्ति बहुत ही उचित है:—

नेही महा ब्रज-भाषा प्रवीन औ सुन्दरताहु के भेद को जानै।
जोग वियोग की रीति में कोविद भावनाभेद स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीजो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्ति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहे, सो घन जू के कवित्त बखानै॥

प्रेम की अन्तर्दशाओं का वणन इस कवि ने जितनी बारीकी से किया है, वैसा हिन्दी के अन्य शृङ्गारी कवि नहीं कर पाए।

जिनको नित नीके निहारत हीं, तिनको अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल पांवड़े पाइनि चाइनि सों अँसुवान की धारन धोवति हैं।
'घन आनद' जान सजीवन को सपने बिनु पाइए खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परें दुख ए कछु हाय जगे पर सोवति हैं॥

विरह वेदना से व्यथित हृदय, विरहाग्नि में किस प्रकार तड़पता है, कवि ने इसे बारीकी से दिखलाया है। प्रेमी की आकांक्षा रहती है कि उसकी तड़पन, जलन और उसासों का पता उसके प्रेमाश्रय को लग जाय। इसीलिए वह तरह-तरह के प्रयत्न करता है। कवि ने मेघ के सहारे इसी प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति की है--

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ है दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ॥
'घनआनँद' जीवन-दायक हौ कछु मेरियौ पीर हिए परसौ।
कबहूं वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहु लै बरसौ॥

इनकी रचनाओं में कोरे विभाव पक्ष का चित्रण कम मिलता है, सर्वत्र भावों की प्रधानता ही दिखलाई पड़ती है। हृदय पर प्रेम के आधिपत्य का स्वरूप इस कविता से स्पष्ट हो जाता है:—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।
'घन आनँद' प्यारे सुजान सुनो, इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

इनके विरोधाभासों से प्रेम की अनिर्वचनीयता का पता चलता है। प्रेम के अन्तर्दाह में अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह घनानन्द की नायिका सेज से उछल-उछल कर नहीं भागती अपितु हृदय में ज्वाला को छिपाए हुए वह मुस्कराती रहती है।

ब्रज-भाषा पर जैसा पूर्ण अधिकार घनानन्द का था वैसा अन्य कवियों का नहीं। अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से वे जहाँ चाहते थे उसे वहीं मोड़ लेते थे। भाषा इनके साथ में रहकर अधिक बलवती हो गई। अपने भावों की अनूठी व्यंजना के लिए इन्होंने स्वतन्त्र पथ का अवलम्बन किया है। कविताओं में लक्षक एवं व्यंजक अर्थों की प्रचुरता देखकर यह कहना पड़ता है कि स्थलों

की पूर्ण परख इनमें थी। लाक्षणिक मूर्त्तिमत्ता और वर्णन वैचित्र्य इनकी रचना में सर्वत्र भरे पड़े हैं। इनकी भाषा अत्यन्त चलती हुई एवं प्रांजल है। साहित्य की बँधी हुई रूढ़ियों में न रह कर इन्होंने अपने निजी निराले मार्ग का अवलम्बन किया। प्रेम की स्वाभाविक छटा इनकी पंक्तियों में सर्वत्र देखने को मिलेगी। जैसे,

निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी छबि रंग भरि मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहै, ढरिगो हिय ढोर निबाहनि की॥
चट दै करि पैवट प्रान गए गति सो मति में अवगाहनि की।
'घन आनँद' जान लख्यो जबते जक लागि पै मोहि कराहनि की॥

अंतिम तीन चरणों में कवि ने प्रेमी और प्रेमिका के स्वाभाविक मिलन का वर्णन किया है। नायक की एक दृष्टि नायिका के हृदय में किस प्रकार अन्तर्दाह प्रकट करती है, उपर्युक्त रचना से स्पष्ट हो जाता है। 'जक लागि पै मोहिं कराहनि की', 'सुर चाहनि की', और 'तकि मोरनि' से इसके भाव और भी तीव्र हो जाते हैं। देखा भी गया है, नायक और नायिका किसी स्थान पर मिलते हैं तो एक दूसरे को मुड़ कर देखते हैं और स्मृति की सरस एवं दुःखद रेखा छोड़ कर चले जाते हैं। दोनों के हृदय की व्यथा का वर्णन इतनी गहराई एवं उत्तमता से घनानन्द ने जो किया है, उसका एक कारण यह भी था कि वे प्रेम-मार्ग के पुजारी थे। 'सुजान' के प्रति इनका अनन्य प्रेम साहित्यिक-जगत् में सदा अटल रहेगा। सारांश यह है कि भावों की उत्तम छटा, भाषा का सरस, स्निग्ध, प्रांजल एवं प्रौढ़ प्रवाह घनानन्द की काव्य-धारा में सर्वत्र पाया जाता है। भाषा की शक्ति को विस्तृत करने में घनानन्द अपना सानी नहीं रखते। विरोधमूलक वचन-वक्रता कवि की पूर्ण सिद्धहस्तता प्रकट करती है। प्रेम की अन्तर्दशाओं का विवेचन कवि आचार्य पद से करता मालूम होता है। कहते हैं कि घनानन्द का लौकिक प्रेम आगे चलकर पारलौकिक प्रेम में परिणत हो गया था।

## बाबा दीनदयाल गिरि

### ( १८५९ से १९१५ )

इनका जन्म काशी के एक गोसाईं-परिवार में हुआ था। इन्होंने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन किया था। ये एक सहृदय और भावुक कवि थे। इनकी अन्योक्तियाँ हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ हैं। भाषा परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित है। अन्योक्ति के क्षेत्र में आप की प्रतिभा का स्फुरण स्तुत्य है। इसकी मार्मिकता तीव्र तथा सौन्दर्यभावना से पूर्ण है। इन अन्योक्तियों की विशेषता इसलिए और भी बढ़ जाती है कि सांसारिक तथा पारलौकिक दोनों पक्षों में वे घटित होती हैं।

कोमल पद-विन्यास के साथ शब्द-चमत्कार का मेल भाषा और भाव दोनों को मनोहर कर देता है। यमक और श्लेष के मेल से इसे और भी शक्ति मिल जाती है। कला के साथ हृदय का मेल इनकी रचनाओं में मिलता है। रचना-पद्धतियों की अनेक प्रणालियों पर इनका अधिकार था। इनकी लिखी निम्न-लिखित पुस्तकें प्राप्त हैं, अन्योक्ति कल्पद्रुम, अनुरागबाग, वैराग्य-दिनेश, विश्वनाथ-नवरत्न और दृष्टान्त-तरङ्गिणी। इनकी अन्यो-क्तियों के कुछ नमूने दिए जाते हैं :—

जेते फल ते नमत हो, ऐ हो धीर रसाल।
ते ते ऊँचे होत हौं, सोभा होति विसाल॥
सोभा होति विशाल, बात तव है सुखदायक।
रस तें करो निहाल, तुम्हें सेवें द्विजनायक॥
बरनै 'दीनदयाल' हिए हरि सों हित चेतो।
धरे रहै छवि स्याम नमितरस देखें जेतो॥
रतनाकर महि माँह तुम अति अथाह गम्भीर।
है प्रवाह दुस्तर, भरे ग्राह प्रबल तो नीर॥

ग्राह प्रबल तो नीर, तीर पैठत बुध हारे।
धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे।
बरनै 'दीनदयाल' जौन मरजीवा जाकर।
लै मुकतन को कढ़ै, सोइ धन हे रतनाकर॥

## गिरिधरदास

### ( १८९० से १९१७ तक )

इनके ग्रंथों की संख्या चालीस बतलाई जाती है। कहते हैं कि इनकी रचनाएँ एक तो भक्तिसम्बन्धिनी हैं, दूसरी काव्य-कौशल से पूर्ण। चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति जहाँ रही है वहाँ यमक और श्लेष का प्रयोग दिखलाई पड़ेगा, जिससे भाषा में क्लिष्टता आ गई है। ये कोरे सूक्तिकार थे जहाँ काव्यत्व का पूर्ण अभाव है। नीति और उपदेश सम्बन्धी इनकी उक्तियाँ आज भी कितने लोगों को कण्ठस्थ हैं।

# आधुनिक काल

## पूर्व-परिचय

### ( सं० १९०० से आज तक )

आधुनिक काल के पूर्व गद्य का जो कुछ स्वरूप उपलब्ध होता है वह व्रजभाषा में ही है। संवत् १४०० के आस-पास की व्रज-भाषा का नमूना 'गोरख की बानी' से उद्धृत किया जा रहा है:—

"श्री गुरु परमानन्द तिन को दण्डवत है, हैं कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप हैं शरीर जिनको, जिनके नित्य गाये रहे शरीर चेतन और आनन्दमय होत है। मैं जो हौं गोरिष सो मछंन्दरनाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसो वे मछंदरनाथ आत्म ज्योति निश्चल है अंतहकरन जिनके अरु मूल द्वार तैं छह चक्र जिनो नीकी तरह जानै हैं।"

इस के पश्चात् भक्ति-काल में कृष्ण-भक्ति-शाखाके भीतर कुछ गद्य ग्रन्थ मिलते हैं। श्री वल्लभाचार्य के पुत्र गुसाईं बिट्ठलनाथ ने 'शृंगार रस-मण्डल' नामक एक ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखा। उनकी भाषा का स्वरूप इस प्रकार है:—

"प्रथम की सखी कहतु हैं जो गोपीजन के चरन विषय सेवक की दासी करी जा इनको प्रेमामृत में डूबिकै इनके मन्द हास्य ने जीते हैं। अमृत समुद्र ताकरि निकुंज विषे शृंगार रस श्रेष्ठ रचना कीनो सो पूर्ण होत भई"।

देखने से प्रतीत होता है कि यह गद्य कितना अपरिमार्जित और अव्यवस्थित है। इसके पश्चात संवत् १६६० के आस-पास नाभादासजी ने 'अष्टयाम' नामक एक पुस्तक गद्य में लिखी, जिसमें भगवान् राम का वर्णन है। उसकी' भाषा इस प्रकार है—

"तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महराज के चरन छुई प्रनाम करते भये। फिर अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करते भये"।

सं० १६८० के लगभग बैकुंठमणि शुक्ल द्वारा लिखित 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख-सप्तक' ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप बतलाते हैं:--

सं० १६६० के उपरान्त ब्रजभाषा गद्य में लिखा हुआ 'नासिकेतोपाख्यान' पाया गया है। लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। जिसकी भाषा इस प्रकार की है:—

हे रिषीस्वरो! सुनो मैं देख्यो है वो कहूँ काल बर्न महा:दुख के रूप जम किंकर देखे। पंथ में पाप कर्मों को जमदूत चलाय के मुदगर और लोहे के दण्ड मार देत हैं, आगे और जीवन को त्रास देत देख्यो हौं, सो मेरो रोम रोम खरे होत हैं'। सं० १९६७ के आसपास सूरत मिश्र ने 'बैताल पचीसी' लिखी, जिसको बाद में लल्लूलाल ने खड़ी बोली का रूप दिया। सं० १८५२ में हीरालाल ने 'आइने-अकबरी' 'भाषा वचनिका' नामक पुस्तक लिखी। इसमें बोलचाल की भाषा के साथ अरबी और फारसी के बहुत से शब्द मिले हुए हैं। इस प्रकार की पुस्तकों को देखने से यह प्रतीत होता है कि अब तक गद्य का कोई विकास नहीं हो पाया था। यही कारण था कि खड़ी बोली को अपनाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। गद्य लिखने की परिपाटी का पूर्ण प्रचार न होने के कारण ब्रजभाषा गद्य का जो स्वरूप मिलता है वैसा फिर आगे देखने को नहीं मिलता। सं० १९७२ की लिखी जानकीप्रसादवाली 'रामचन्द्रिका' की प्रसिद्ध टीका की भाषा का स्वरूप इस प्रकार है :—

"राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।"
हंस सबल अंस सहित मानहु उड़ि के गयो॥

सबल कहैं अनेक रंग मिश्रित है, अंश कहै किरण जाके ऐसे जे सूर्य्य हैं, तिन सहित मानो जो कलिन्द गिरी शृङ्ग ते हंस कहे हंस-समूह उड़ी गयो है। यहाँ जाती विषय एकबचन है। हंसन के सदृश स्वेत छत्र हैं "सूर्य्य के सदृश अनेक रंग है नग जटित मुकुट है।"

## खड़ीबोली का गद्य

मुसलमानों के फैलने से उनकी दरबारी शिष्टता भी शिष्ट-समुदाय के द्वारा व्यवहार में आने लगी थी। खुसरो ने अपनी कुछ पहेलियाँ चौदहवीं शताब्दी में बनाई थीं। औरंगजेब के समय में भी खड़ीबोली की रचनाएँ मिलती हैं। खड़ीबोली का यह स्वरूप मौलवी और मुल्लाओं से नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि इसका स्वरूप पहले भी देखा जाता है। भाज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय तक अपभ्रंश काव्यों की परम्परा में खड़ी बोली की कुछ झलक दिखलाई पड़ती है। जैसे—

'भला हुआ जो मारिया बहिणि महारा कन्तु।'

भक्ति-काल के आरंभ में भी कबीर आदि ने सधुक्कड़ी भाषा में खड़ी बोली का प्रयोग किया है। जैसे, "आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा, गुरु के शबद रम रम रहूँगा।" अकबर के समय में भी इस प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। विक्रम सं० १७९८ में **रामप्रसाद निरंजनी** द्वारा लिखित "भाषा योग-वाशिष्ठ" नामक पुस्तक खड़ी बोली का साफ सुथरा स्वरूप स्पष्ट करती है। इस गद्य का नमूना इस प्रकार है।

"अगस्त जी के शिष्य सुतीक्षण जी के मन में एक सन्देह पैदा हुआ तब वे उसके दूर करने के कारण अगस्त मुनि के आश्रम को जा विधि सहित प्रणाम करके बैठे और बिनती कर प्रश्न किया कि हे भगवन आप सब तत्वों और सब शास्त्रों को जाननेहारे हैं मेरे एक सन्देह को दूर करो।"

इसकी भाषा कितनी सरल और व्यवस्थित है। इससे पता चलता है कि इस भाषा का साहित्य पहले ही से रहा है। अगर ऐसा न होता तो योगवाशिष्ट और 'पद्मपुराण' ऐसे ग्रन्थ इस भाषा में न प्राप्त होते।

जब अंगरेजों को भारत में भाषा सीखने की आवश्यकता हुई तब उन्होंने उर्दू और हिन्दी की शुद्ध खड़ी बोली को ही अपनाया। परन्तु इसके पूर्व ही खड़ी बोली में बहुत सी रचनाएँ हो चुकी थीं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अंगरेजों के ही द्वारा खड़ी बोली के गद्य का प्रादुर्भाव हुआ। मुंशी सदासुखलाल की 'ज्ञानोपदेशवाली पुस्तक और इंशाअल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी' अंगरेजों द्वारा पुस्तकें लिखने के पहले ही निकल चुकी थीं।

फोर्ट विलियम कालेज में अंगरेजों के आश्रय में रहकर लल्लूलाल जी गुजराती ने खड़ी बोली के गद्य में 'प्रेम सागर' और सरल मिश्र ने "नासिकेतोपाख्यान" लिखा। इस प्रकार मुंशी सदासुखलाल, सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र के द्वारा खड़ी बोली का प्रसार आरम्भ हुआ।

ये चारों लेखक सं० १८६० के आसपास हुए। इनमें से **इंशा** की भाषा अधिक चटकीली भड़कीली और मुहावरेदार है इनकी भाषा पर उर्दू का प्रभाव है। **मुंशी सदासुखलाल** की भाषा अधिक संयत और गम्भीर है। **लल्लूलाल** की भाषा ब्रजमिश्रित खड़ीबोली है। यह भाषा कथावार्ता के ही काम की है। इसको हम नित्य व्यवहार में नहीं ला सकते और विचारधारा भी इस प्रकार की है, जो इस खिचड़ी भाषा में पूर्णतया नहीं स्पष्ट की जा सकती। इन्होंने उर्दू, खड़ी बोली और ब्रज तीनों में ग्रन्थ-रचना की है। **सदल मिश्र** ने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया। इन्होंने अधिकतर स्थलों

पर खड़ी बोली ही लिखी है। मुंशी जी एवं मिश्र जी की भाषा विकसित होकर आज के गद्य की भाषा हो सकी है। ईसाइयों ने भी अपनी धर्म-पुस्तकों द्वारा हिन्दी का प्रचार किया। इनलोगों ने एक प्रेस भी मिर्जापुर में खोल रखा था।

अदालतों की भाषा उर्दू होने के कारण हिन्दी को बहुत क्षति पहुँची। शिक्षा के क्षेत्र में घोर विरोध होते हुए भी हिन्दी को स्थान मिल ही गया। गद्य-साहित्य के आविर्भाव काल में **राजा शिवप्रसाद** 'सितारेहिन्द' तथा **राजा लक्ष्मणसिंह** का कार्य स्तुत्य है। पंजाब में **नवीनचन्द्र राय** भी हिन्दी का सेवा करते रहे थे। इस समय तक हिन्दी गद्य अपना ठाठ खड़ा कर पाया था पर सुव्यवस्थित और परिमार्जित गद्य का अभाव था। **भारतेन्दु** के आगमन से इस प्रकार भी कमी पूरी हो गई। भारतेन्दु ने हिन्दी की सर्वाङ्गीण उन्नति की। क्या भाषा, क्या भाव, क्या साहित्य सभी स्थलों में उनके कार्य प्रशंसनीय हैं। भाषा का निखरा हुआ रूप भारतेन्दु के ही समय में प्रकट हुआ। इन्होंने साहित्य की ओर शिक्षित जनता को आकृष्ट किया और बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ निकालकर लेखकों की भी सृष्टि की। इस प्रकार रचनाओं के बाहुल्य से हमें लेखकों की शैलियाँ भी देखने को मिलने लगीं। भारतेन्दु की शैली दो प्रकार की होती थी। एक तो जब वे किसी भाव के आवेश में कुछ कहते थे तो भाषा साधु और गंभीर होती थी और तथ्य-निरूपण के अवसरों की भाषा में संस्कृत के शब्दों का उपयोग दिखलाई पड़ता है। इस काल के लेखकों में **पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरी नारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट** मुख्य हैं। इन सभी लेखकों के प्रयत्न से हिन्दी-गद्य का शुद्ध साहित्यिक स्वरूप और भी निखर गया। इनके वर्णनों में सजीवता, चपलता, स्वच्छन्दता और उमंग है। इस

गद्य-परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ। पर भारतेन्दु के बाद नाटकों की यह परम्परा प्रायः लुप्त सी हो गई। नाटक और निबन्धों के पश्चात् उपन्यासों का भी क्रम चला। **लाला श्री निवासदास** ने मौलिक उपन्यास लिखा। **राधाकृष्णदास प्रतापनारायण मिश्र, कार्तिक प्रसाद खत्री** ने अन्य भाषाओं के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। पत्र-पत्रिकाओं का जो ताँता इस काल में चला वह बाद में क्षीण हो गया।

## खड़ीबोली का इतिहास

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल से ही खड़ीबोली का रूप थोड़े अंशों में बराबर चला आ रहा है। आदिकाल के वीर-काव्य "भला हुआ जो मारिया बहिण महारा कन्त" इसी रूप में मिलते हैं। १४ वीं शताब्दी में खुसरो की पहेलियों में खड़ी-बोली का बहुत कुछ रूप मिलता है। "एक नार पिया को मानी, तन वाको सगरो ज्यों पानी। चूक भई कछु वासों ऐसी, देस छोड़ भयो परदेसी" ऐसे रूप मिलते हैं। भक्ति-काल में कबीर आदि निर्गुण पंथी साधु कवियों के सधुक्कड़ी भाषा में भी खड़ी बोली का पुट पाया जाता है। जैसे 'कबिरा मन निर्मल भया ज्यों गंगा का नीर' आदि मिलते हैं। पर व्यापक रूप में खड़ीबोली में गद्य पं० रामप्रसाद निरंजनी के 'योग वाशिष्ठ' में मिलता है। इसकी भाषा संस्कृतिगर्भित और विशुद्ध आज की खड़ी बोली है। इसके बाद खड़ीबोली के चार बड़े लेखक पैदा हुए। इन्होंने खड़ी बोली के विकास के लिए सफल प्रयास किया। इनके प्रयास योजनास्वरूप थे। इनलोगों ने आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य किया है। इनके नाम, **सदा-सुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र एवं लल्लूलाल** हैं।

## सदासुखलाल

आप मिर्जापुर जिले के अन्तर्गत चुनार में एक कम्पनी के अधीन एक अच्छे पद पर थे। ये उर्दू, फारसी के अच्छे विद्वान थे। ६५ वर्ष की अवस्था में आपने नौकरी छोड़ दी और प्रयाग को अपना निवास-स्थान बनाया। यहीं पर इन्होंने अपनी सारी रचनाएँ की हैं। इन्होंने किसी की प्रेरणा से रचना नहीं की बल्कि स्वतः की है। आपने अपने समय के हिन्दुओं की प्रचलित बोलचाल की भाषा में रचना की है। इनकी रचनाओं में संस्कृत के तत्सम शब्द मिलते हैं। संस्कृतिगर्भित भाषा को मुसलमान 'विभाषा' कहते थे और इसी भाषा का प्रचार होते देखकर बहुतेरे ने रोकथाम भी की।

## इंशाअल्ला खाँ

आपका निवास-स्थान लखनऊ में था। सं० १८५५ में जब नवाब सआदतअली खाँ गद्दी पर बैठे तब आप उनके दरबार में आने जाने लगे। दरबार में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी किन्तु अन्त में कुछ मनमुटाव सा हो गया। सं० १८५५ और १८६० के बीच इन्होंने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। कहानी लिखने का कारण यह था कि कहानी विशुद्ध हिन्दी भाषा में लिखी जाय। इन्होंने भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से दूर रखा है। १—बाहर की बोली ( अरबी, फारसी और तुर्की ) २—गँवारी भाषा ( ब्रजभाषा, अवधी आदि ) और ३—संस्कृत शब्दों का मेल। तात्पर्य यह कि इन्होंने अपनी भाषा को विभाषाओं से दूर रखने का प्रयास किया है। किन्तु कुछ मुअल्लापन आही गया है। कहानी में फारसी के ढंग का वाक्य-विन्यास देखा जाता है।

जैसे 'सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ, अपने बनानेवाले के सामने जिसने सबको बनाया है इस सिर झुकाने के साथ हो दिनरात जपता हूँ अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को'।

आरम्भकाल के चारों लेखकों की भाषा में 'इंशा' की भाषा चटकीली मुहावरेदार एवं चलती है।

## लल्लूलाल

ये आगरे के रहनेवाले गुजराती ब्राह्मण थे। इनमें संस्कृत का विशेष ज्ञान तो दिखलाई नहीं पड़ता है पर भाषा-कविता का अभ्यास इन्हें अच्छा था। ये उर्दू भी जानते थे। सन् १८६० में जानगिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने प्रेमसागर को खड़ी बोली गद्य में लिखा। यद्यपि इन्होंने इंशा अल्ला खां की तरह ठेठ हिन्दी लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की थी किन्तु इनकी भाषा को देखने से ज्ञात होता है कि इन्होंने विदेशी शब्दों को भाषा में आने से रोका है। वे ही विदेशी शब्द आ सकते थे जो जानकारी के परे थे। जैसे 'बैरक' शब्द तुर्की का है जिसका अर्थ झंडा है। इसका प्रयोग इन्होंने किया है। जैसे—

**शिवजीने एक झंडा बाणासुर को देकर कहा कि इस बैरक को लेजा'**। मुंशी जी की भाषा साफ सुथरी खड़ी बोली है। पर लल्लूलाल की भाषा कृष्णोपासक व्यासों की तरह ब्रजरंजित खड़ीबोली है। लल्लूलाल ने उर्दू, खड़ी बोली, और ब्रजभाषा तीनों में गद्य की पुस्तकें लिखी हैं।

## सदल मिश्र—

आप बिहार के रहनेवाले थे। आप ने फोर्टविलियम कालेज के अधिकारियों के अनुसार 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयास किया है। इनकी भाषा साफ सुथरी नहीं है। ब्रजभाषा के रूप और पूर्वी बोली के कुछ शब्द विशेष मिलते हैं। जैसे—

"कूलन के बिछौने चहुँदिसि सुनि" आदि। प्रयोग ब्रजभाषा के हैं। इहाँ, मतारी, बारते थे, जुड़ाई आदि पूर्वी शब्दों के प्रयोग भी इनकी भाषा में मिलते हैं।

## प्रतापनारायण मिश्र—

ये कानपुर में रहते थे। इनका जन्म सं० १९१३ में और मृत्यु सं० १९५१ में हुई। आप इतने विनोदप्रिय थे कि आधुनिक सभ्यता और शिष्टता की परवाह नहीं करते थे। आप कभी-कभी मेलों तमाशों में बन्द इक्कों पर जाते दिखलाई पड़ते थे।

मिश्र जी यद्यपि लेखन-कला में भारतेन्दु को ही आदर्श मानते थे तथापि इनकी शैली में अपनी कुछ विशेषता थी। इनमें विनोदप्रियता विशेष थी। इससे इनकी वाणी में व्यंगपूर्ण वक्रता की मात्रा भी प्रायः रहती थी। ये पूर्वापन की परवाह न करके कहावतें और शब्द बेधड़क रख दिया करते थे। इन्होंने 'ब्राह्मण' नामक एक पत्र भी निकाला था। इनके लेखों में कुछ के नाम ये हैं—

**घूरे का लत्ता बीनै कनातन को डौल बाँधै, समझदार की मौत है, आदि।**

मिश्र जी जब कभी गम्भीर विषय पर लिखते थे तब संयत एवं साधु भाषा का प्रयोग करते थे। इन्होंने कई नाटक भी लिखे हैं। जैसे—

**कलि-कौतुक रूपक, संगीत-शाकुन्तल।** ये नाटक भारतेन्दु के अनुकरण पर हैं। हठी हम्मीर, जुआरी इनके प्रहसन भी हैं।

इनकी विनोदप्रियता ने विषयों में मनोरंजन की सामग्री गम्भीरता की रक्षा करते हुए रखा है। इनके लेख विविध विषयों पर मिलते हैं।

## पं० बालकृष्ण भट्ट

इनका जन्म सं० १९०१ तथा मृत्यु सं० १९७१ में हुई।

सं १९३३ में आपने 'हिन्दी प्रदीप' नामक एक पत्र निकाला था। आपके लिखने का ढंग मिश्र जी से मिलता जुलता है। आप

की भाषा में मुहावरे, व्यंग, वक्रता, लम्बे-लम्बे वाक्य और पूर्वीपन विशेष मिलते हैं। आप समझा-बुझा के स्थान पर 'समुझाय बुझाय' लिखते हैं। बीच बीच में कहीं कहीं पर अंग्रेजी, फारसी के शब्द भी लिख दिया करते हैं। हास्य में चिड़चिड़ापन रहता है। कभी-कभी आपका पद-विन्यास अनूठा और बहुत चोखा होता है। 'नाक' 'कान' 'आँख' सभी पर आपने लेख लिखे हैं। निबन्धों के अतिरिक्त आपने कालिदास की सभा, रेल का विकट खेल, बाल विवाह नाटक और चन्द्रसेन नाटक भी लिखा है। आपने श्रीनिवास के 'संयोगिता स्वयंबर' की बड़ी सुन्दर समालोचना भी की है।

## बदरीनारायण चौधरी

आपका जन्म सं० १९१२ मृत्यु १९७९ में हुई।

आपकी प्रत्येक बात से रईसीयत टपकती थी। कभी-कभी बहुत ही सुन्दर वक्रतापूर्ण वाक्य आपके मुख से निकलते थे। गद्य-रचना को एक कला माननेवाले थे। अनुप्रास एवं अनूठे पद-विन्यास से युक्त लम्बे-लम्बे वाक्यों की भाषा हो आप लिखते थे। आप लेख लिखकर कई बार उसका परिमार्जन कर लेते थे। भाषा अनुप्रासमयी एवं चुभचुभाती हुई होने पर भी आपका पद-विन्यास व्यर्थ के आडम्बर के रूप में नहीं होता था। आपका लेख अर्थगर्भित और सूक्ष्म विचारपूर्ण होता था।

आपने नाटक भी लिखे हैं। जैसे, **'भारत सौभाग्य' 'प्रयाग-रामागमन', 'वारांगना रहस्य', 'महानाटक अथवा वेश्या विनोद'**। इन्होंने महानाटक को सन् १८४३ में लिखना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे लिखा किन्तु पूर्ण न हो सका। आपने कई प्रहसन भी लिखे हैं। आप एक पत्र 'आनन्द कादम्बिनी' भी निकालते थे। समालोचना का सूत्रपात एक प्रकार से भट्टजी एवं चौधरी जी ने ही किया। श्रीनिवासदास के संयोगिता-स्वयम्बर की बड़ी कठोर एवं विस्तृत समालोचना आपने की।

## माधवप्रसाद मिश्र

पंजाब के हिसार जिले में भिवानी के पास कूगड़ नामक ग्राम में सं० १९२८ में मिश्रजी का जन्म हुआ था और सं० १९६४ में स्वर्गवास हुआ। आप सनातन-धर्म के सच्चे पुजारी थे। महात्माओं, कवियों एवं लेखकों में आपकी बड़ी श्रद्धा थी। आपके चिढ़कर लिखे हुए लेख बहुत सुन्दर होते थे। स्वदेश-प्रेम आपमें कूट-कूट कर भरा पड़ा था। आप अच्छे आलोचक भी थे। आपकी अनेक कहानियों में 'क्षमा' तथा 'धृति' बहुत प्रसिद्ध हैं। आपकी लेखनी शक्तिशालिनी थी। 'बेवर का भ्रम' आपका आलोचनात्मक ग्रन्थ है। आपने महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'नैषध चरित चर्चा' की भी आलोचना की थी। 'सुदर्शन' नामक एक पत्र भी आप निकालते थे। स्थायी विषयों पर आपके दो लेख मिलते हैं। वे 'लोक' और 'सामान्य' हैं।

## बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी पंजाब के रोहतक जिले के जोरियानी गाँव में सं० १९२२ में पैदा हुए थे। आपकी मृत्यु सं १९६४ में हुई। आप आपने समय के सम्पादकों में सबसे अनुभवी और कुशल थे। आप प्रथम उर्दू पत्रों का सम्पादन करते थे। पर शीघ्र ही 'वंगवासी' के सम्पादक हुए। इसके पश्चात् आप 'भारत मित्र' के प्रधान सम्पादक बनाए गए। आप बड़े विनोदशील और चलते-पुर्जे लेखक थे। आप निर्भीक होकर सब लोगों की टीका-टिप्पणी किया करते थे। सामयिक एवं राजनीतिक पद्धति को लेकर आपने कई एक मनोरंजक प्रबन्ध लिखे हैं, जिसमें **'शिव शम्भु का चिट्ठा'** ख्याति-प्राप्त है।

इनकी भाषा बहुत चलती और सजीव होती थी। जैसा भी विषय हो उस पर आप विनोद का रंग चढ़ा देते थे। उर्दू के

लेखक होने के कारण आपकी भाषा बहुत चलती एवं फड़कती हुई होती थी। आपकी शैली भी व्यंग से ओत-प्रोत होती थी।

## भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इनका आगमन हिन्दी-साहित्य में उस समय हुआ जब साहित्य का क्षेत्र पूर्ण रूपसे संकुचित तथा अंधकारमय था। व्रज-भाषा से सम्पर्क बनाए रखते हुए भारतेन्दु जी ने वर्तमान खड़ी बोली के रूपको निर्धारित करने में बड़ा कार्य किया। खड़ी बोली का शुद्ध साहित्यिक रूप हमें भारतेन्दु-काल से ही देखने को मिला है। अपने सहयोगी बन्धुओं तथा मित्रों से साहित्य में अभिरुचि रखने के लिये भारतेन्दु जी सदा प्रयत्नशील रहा करते थे। इन्हीं के सहयोग से इनके जीवन-काल में हिन्दी में बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ और बहुत से लोग साहित्य से प्रेम करने लगे। गद्य, पद्य, नाटक और निबन्ध सभी क्षेत्रों में आपकी प्रतिभा पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई। साहित्य के निर्माण में भारतेन्दु ने भारतीय संस्कृति की रक्षा का पूर्ण ध्यान रखा है। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने अल्पकाल में ही बहुत बड़ी कीर्ति प्राप्त कर ली थी। जैसे आप एक सिद्धहस्त कवि थे वैसे ही एक सफल नाटककार।

भाव-प्रकाशने के क्षेत्र में भारतेन्दु अपना सानी नहीं रखते। शृंगार की एक भावना कितनी सुन्दर तथा मार्मिक है, देखिये प्रेमिका कह रही है :—

'पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियां दुःखिया नहीं मानति हैं।'

प्रेमी जब अपने प्रेमालंबन को देखता है तो जी भर देखना चाहता है। पर यदि प्रेमी का दर्शन ऐसे स्थान पर हो जहाँ लज्जा के कारण यह नहीं हो सकता उस स्थल की बेबसी इस स्थान में परिलक्षित है।

भावों का रचना-चातुरी तथा भाषा की सरसता तथा मनोहरता ने इन्हें सर्वसम्मति से 'भारतेन्दु' की उपाधि से घोषित किया। भारतेन्दु ने हिन्दी-साहित्य को नाटकों की भेंट देकर इस क्षेत्र की रिक्तता को दूर किया है। इनके पहले हिन्दी-साहित्य में नाटकों का अभाव था। मौलिक नाटक तो देखने तक को मिलते नहीं थे। इनके नाटकों के निर्माण में प्राचीन संस्कृत के नाटकों के निर्माण की प्रणाली की पूरी पूरी नकल नहीं है। समयानुकूल स्वच्छन्द प्रवाह नाटकों में पाया जाता है। पात्रों की सजीवता, घटना-वैचित्र्य स्थल की पूर्ण स्पष्टता तथा पात्रों की अनेक-रूपता इनके नाटकों में सर्वत्र पाई जाती है। 'भारत-दुर्दशा नाटक" में नाटककारने भारतकी बिगड़ी हुई दशा, परतंत्रता से उत्पन्न दरिद्रता, अविद्या का परिणाम तथा अज्ञान आदि का विशद वर्णन किया है। वास्तव में 'भारत-दुर्दशा' भारत की बिगड़ी दशा का प्रदर्शक एक दर्पण है। भारतीय आदर्शों का निर्वाह एवं भूमिका के साथ उसका विशदीकरण इनके नाटकों में हुआ है। सारांश यह कि भाषा की अनेकरूपता के साथ-साथ भावों का स्थल के अनुसार चुनाव भारतेन्दु की विशेषता है। गद्य साहित्य का विकास भारतेन्दु-काल से ही प्रारम्भ होता है। इसके पहले हिन्दी-साहित्य में गद्य का कोई विकसित रूप नहीं था। इन्होंने अपने प्रयत्न के द्वारा हिन्दी-साहित्य को अन्य भाषाओं के समक्ष लाने का प्रयत्न किया। इन्होंने अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अनुवाद भी हिन्दी में किया। भारतेन्दु के साहित्य के पढ़ने से पता लगता है कि वे जगत के बाह्य प्रदर्शन की ओर अधिक झुके हुए थे। उन्हें प्रकृति की तड़क भड़क अधिक पसन्द थी। प्रकृति के अन्तस्थल में जाने वाला कवि जितनी सुन्दरता से मरुभूमि की ज्वाला को व्यक्त करता है उतनी ही सुन्दरता से प्राकृतिक प्रदेश से घिरे हुए बादलों के दृश्यों को। केवल सुखदायी दृश्यों का अंकन करनेवाला कवि पूर्णकुशल नहीं कहा जा सकता। आपके

प्रकृति-वर्णन के स्थल केवल अलंकारों तथा भाषा की विशेषता व्यक्त करने के लिए ही लिखे गये हैं। उसे खानापूरी करना ही कहा जा सकता है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कवि को प्रकृति के अधिक समीप जाने का अवसर कम प्राप्त हुआ था। नगरों के कृत्रिम वायु-मंडल में साँस लेने से इनकी पद्य-रचना में भी कहीं कहीं कृत्रिमता दिखलाई पड़ती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सं० १९७७ में काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्यकुल में हुआ था। ३५ वर्ष की अवस्था में इनका परलोक-वास हुआ। इस थोड़े से समय में हिन्दी-साहित्य की जो अमूल्य सेवाएं इनके द्वारा हुईं वे चिरस्मरणीय हैं। पहले पहल नाटकों की ओर आपकी प्रवृत्ति गई क्योंकि इसका साहित्य में नितान्त अभाव था। आपके मौलिक एवं अनूदित नाटक निम्नांकित है:—

(मौलिक)—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नील देवी, अंधेर नगरी, प्रेम जोगिनी, सती प्रताप ( यह अधूरा ही रह गया )।( अनुवाद ) विद्या सुन्दर, पाखण्ड विडंबना, धनञ्जय-विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस सत्य हरिश्चन्द्र और भारतजननी। इन नाटकों की सामग्री विभिन्न स्थलों से ली गई है। रचना-शैली में अंग्रेजी की छाप नहीं दिखलाई पड़ती। इनमें भारतीयता के साथ नवीनता है। 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' इतिहास-रचना का मार्ग दिखलाते हैं। काव्य के क्षेत्र में आपकी सरस मार्मिक चुटीली उक्तियाँ पाठकों एवं श्रोताओं को लोट पोट कर देती थीं।

## गद्य-साहित्य का प्रसार

इस काल में भाषा में व्याकरण की शिथिलता और भाषा की रूप-हानि स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से यह दोष दूर होने लगा। विषयों की अनेक-

रूपता के साथ निबन्ध उच्च कोटि के लिखे जाने लगे। वाक्यों के विन्यास में अधिक सफाई दिखलाई पड़ने लगी। हिन्दी की अर्थोद्घाटिनी शक्ति भी बढ़ने लगी। सघन और गूढ़ विचारों को व्यक्त करनेवाली भाषा दिखलाई पड़ने लगी। नाटक के क्षेत्र में यह उन्नति कुछ अवरुद्ध सी हो गई। कुछ इने गिने नाटक ही देखने को मिलते हैं। आलोचना के क्षेत्र में द्विवेदी जी की कृपा से विस्तृत आलोचना का मार्ग निकला। **मिश्रबन्धुओं** और **पं० पद्मसिंह शर्मा** ने भी व्यक्तिगत रूप से कुछ इधर कार्य किया, परन्तु स्थायी आलोचना के ग्रन्थ दिखलाई नहीं पड़े। जीवन-चरित भी कुछ प्रकाशित हुए। इस काल में गद्य-साहित्य का प्रसार नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध और समालोचना सभी क्षेत्रों में अमान हुआ। मौलिक नाटक लिखनेवालों में निम्नलिखित व्यक्ति उल्लेखनीय हैं, **पं० किशोरीलाल गोस्वामी पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र** और **पं० देवी प्रसाद पूर्ण**, अनूदित नाटक-कारों में निम्नलिखित व्यक्तियों का नाम लिया जा सकता है :— **रामकुमार वर्मा, रूपनारायण पाण्डे, लालासीताराम, ज्वाला-प्रसाद मिश्र** और **पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न'**।

इस काल में उपन्यास-रचना का बाहुल्य पाया जाता है। अनूदित तथा मौलिक दोनों प्रकार के उपन्यास देखने को मिलते हैं। **रामकृष्ण वर्मा** ने अंग्रेजी से बहुत सा अनुवाद किया।

**कार्तिक प्रसाद खत्री** के अनुवाद भी अच्छे हैं। **गोपालराम** ने बंग भाषा से बहुत सा अनुवाद किया।

मौलिक उपन्यासकारों में **देवकीनंदन खत्री** का नाम उल्लेख-नीय है। इनकी 'चन्द्रकान्ता सन्तति' को कौन नहीं जानता! इनकी भाषा व्यावहारिक कुछ उर्दू मिश्रित है। **पंडित किशोरीलाल गोस्वामी** के उपन्यास समाज के कुछ सजीव चित्र आकर्षक ढंग

से व्यक्त करते हैं। इनके उपन्यासों की संख्या ६५ है। इन उपन्यासों में निम्नकोटि की वासनाओं का चित्रण है। इनमें ऐतिहासिक उपन्यास कालदोष से मुक्त हैं। **बाबू व्रजनंदन सहाय** ने भाव-प्रधान उपन्यास की भेंट साहित्यकों को दी। छोटी कहानियाँ भी इस समय पर्याप्त संख्या में लिखी जाने लगी थीं। **ज्वालाप्रसाद शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पं चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्रीप्रेमचन्द** की कहानियाँ इस समय हमें देखने को मिलीं।

भाषा का विकास हो जाने से विचारशील लेखकों ने निबन्ध की ओर भी दृष्टि फेरी।

इस निबन्धलेखकों की परंपरा **भारतेन्दु** के समय से ही चल पड़ी थी पर उस समय स्थायी विषय पर कम निबन्ध लिखे जाते थे। अधिकतर निबन्ध वर्णनात्मक तथा सामाजिक होते थे। वर्णनात्मक निबन्धों में भाव-प्रधान स्थल भी होते थे। इसके पश्चात् अंग्रेजी के निबन्धों का अनुवाद प्रारंभ हुआ।

**पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी** और **गंगा प्रसाद अग्निहोत्री** ने 'बेकन विचारावली' और 'निबन्धमाला दर्शक' अनुवाद क्रमशः प्रकाशित किए। इस युग के निबन्ध-लेखकों में कुछ का वर्णन नीचे दिया जाता है।

## पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ( १९२१–१९८५ )

आपका जन्म सं० १९२१ में दौलतपुर गाँव जिला रायबरेली में हुआ था। पहले आप रेलवे में नौकर थे और उसी बीच में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बँगला और मराठी का विस्तृत अध्ययन किया। अंत में आप नौकरी छोड़ 'सरस्वती' का संपादन करने लगे। आपके परिश्रम से हिन्दी की सर्वांङ्गीण उन्नति हुई। इनके द्वारा समालोचना-क्षेत्र में एक दृढ़ नियमबद्ध भाषा का स्वरूप उपस्थित हुआ। आपके नाम से ही भारतेंदु का परिवर्तित काल 'द्विवेदी युग' के नाम से पुकारा जाता है। आपकी भाषा सरल,

सुगठित, टकसाली और परिमार्जित है। आपकी आलोचना खरी और निर्भीक होती थी। आप हिन्दी के भीष्म पितामह थे। आपके रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं---**नैषधचरित चर्चा, कालिदास की निरंकुशता, विक्रमाङ्कदेव चरित चर्चा, बेकन विचार रत्नावली, विचार-विमर्श, शिक्षा, रसज्ञरञ्जन, स्वतन्त्रता, महाभारत, रघुवंश** और **कुमारसंभव** के अनुवाद।

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता और पोषक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-साहित्य के स्तंभ रूप में साहित्यिकों के हृदय में चिरस्मरणीय रहेंगे। आप कई भाषाओं के विद्वान् थे। संस्कृत के बहुत से काव्यों का अनुवाद हिन्दी में आपके द्वारा हुआ है और सब मौलिक ग्रन्थ के सदृश ही रोचक प्रतीत होते हैं। पर द्विवेदी जी का अधिक कार्य साहित्य के भाषा एवं भाव के नियंत्रण में ही रहा है। सरस्वती के सम्पादन-काल में वे साहित्य-पथ से विमुख जानेवाले व्यक्तियों को कड़ी फटकार देने से चूकते नहीं थे। संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्दों को हिन्दी के ढाँचे में ढालने का कार्य आप द्वारा हुआ। व्याकरण के नियमों का पूर्ण पालन करने के लिए आप सबको उत्साहित किया करते थे। यही कारण है कि द्विवेदी युग में भाषा में विकृति नहीं दिखलाई पड़ती। आपके निबंधों की रचना प्रायः साधारण कोटि के पाठकों के लिए हुआ करती थी। 'किसी बात को दुहराकर कहने की प्रवृत्ति आप में विशेष था। इससे पता लगता है कि शायद लेखक अपना निबंध मोटी बुद्धि के पाठकों के लिए लिख रहा है।' लेखों में विचारों की विभिन्नता पाई जाती है। आचार-विचार आदि पर लिखे हुए लेख भारतीय भावना को पूर्ण व्यक्त करते हैं। भारतीय आदर्शों का पूर्ण निर्वाह करके द्विवेदीजी ने आनेवाली पीढ़ियों के हृदयों की दुर्बलताओं को दूर हटाने का प्रयत्न किया है। समाज की अच्छाई-बुराई का प्रभाव साहित्य पर कैसा पड़ता है इसका उल्लेख 'साहित्य और समाज' नाम के लेख में है। हिन्दी-साहित्य आपकी सेवा से कृतकृत्य है।

## निबन्ध

**माधव प्रसाद मिश्र**—( सं० १९२८-१९६४ ) मिश्र जी एक शक्तिशाली लेखक थे। स्थायी विषयों पर आपके दो लेख मिलते हैं, धृति और क्षमा। इन निबन्धों में भावना धारा में बँधी चलती है। इनमें सुन्दर मर्म-पथ का अंनुसरण करती स्निग्ध वाग्धारा लगातार चली चलती है। इनकी रचना के नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

आर्य वंश के धर्म, कर्म और भक्ति-भाव का वह प्रबल प्रवाह जिसने एक दिन जगत के बड़े-बड़े सन्मार्ग विरोधी भूधरों का दर्प दलनकर उन्हें रज में परिणत कर दिया था और इस परम पवित्र वंश का विश्वव्यापक प्रकाश जिसने एक समय जगत में अंधकार का नाम तक न छोड़ा का, अब कहाँ है ?

**बाबू गोपालराम गहमरी** उपन्यासों के फुरसत पाकर निबंध भी लिखा करते थे। आपकी भाषा चंचल, प्रगल्भ और मनोरंजक होती थी।

**बालमुकुन्द गुप्त** ने सामयिक और राजनीतिक परिस्थिति को लेकर अच्छे निबन्ध लिखे हैं। इनके विचारों में विनोद छिपा रहता है। इनका शिवशंभु का चिट्ठा एक प्रसिद्ध निबंध हैं। उसका नमूना देखिए—

इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं चीलें नीचे उतर रही हैं। तबियत भुरभुरा उठी। इधर भंग, उधर घटा, हार में बहार। इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अंधेरा छाया, बूँदें गिरने लगीं, साथ ही तड़-तड़ धड़धड़ होने लगी। देखा, ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई, बूटी तैयार हुई। बमभोला कहकर के शर्माजी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लाल डिग्गी पर बड़े लाटमिंटों ने बंगदेश के भूतपूर्व छोटे लाल उडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय

कलकत्ते में यह दो आवश्यक काम हुये। भेद इतना था कि शिवशंभु शर्मा के बरामदे की छत पर बूँदे गिरती थीं और लार्ड मिटों के सिर पर, छाते पर।

बाबू श्यामसुन्दरदास के निबन्ध उच्चकोटि के हैं। पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबन्ध अर्थगर्भित तथा पाण्डित्य-पूर्ण हैं। इनमें विचार कई प्रसंगों में लेकर चले हैं। अतः उनका आनंद उनको ही मिलता है जिन्हें अनेक विषयों की जानकारी हो। इनकी वाणी अनेक गूढ़ शास्त्रीय विषयों तथा प्रसंगों की ओर विनोदपूर्ण संकेत करती हुई चलती है। इनके निबन्ध का एक नमूना दिया जाता है :—

"वकौल शेक्सपियर के जो मेरा धन छीनता है वह कूड़ा चुराता है पर जो नाम चुराता है वह सितम ढाता है। आर्यसमाज ने मर्म-स्थल पर वह एक चोट मारी है कि कुछ कहा नहीं जाता। हमारी ऐसी चोटी पकड़ी कि सिर नीचा कर दिया। गैरों ने तो गाँठ का कुछ न दिया था पर इन्होंने तो अच्छे-अच्छे शब्द छीन लिये। इसी से कहते हैं कि 'मारेसि मोहिं कुठाउँ'। अच्छे-अच्छे पद तो यों सफाई से ले लिये हैं कि इस पुरानी जमी हुई दूकान का दिवाला निकल गया।" इनके निबंध लाक्षणिकता से भरे हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह ने भावों और भाषा की एक नई विभूति साहित्य को दी। वे किसानों, मजदूरों के जीवन से प्रभावित हुए। 'मजदूरी और प्रेम' इसी प्रकार का निबन्ध है। इन्होंने योरोप की अशान्ति को देख 'आचरण की सभ्यता' नामक लेख लिखा। बाबू गुलाबराय के निबन्ध विचारात्मक तथा भावात्मक हैं। अपके निबन्ध कई विषयों पर हैं।

## समालोचना

हिन्दी-साहित्य में समालोचना पहले गुण-दोष के रूप में प्रकट हुई। उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी, लाला

श्री निवासदास इस प्रकार के लेखक थे। द्विवेदीजी ने प्राचीन और नवीन ढंग की समालोचना की। हिन्दी लेखकों का सुधार किया। मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' लिखा। पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी पर एक अच्छी समालोचना-पुस्तक लिखी। कविओं की विशेष समीक्षा आगे चलकर देखने को मिली।

हिन्दी गद्य का तृतीय उत्थान-काल उपन्यास, नाटक, कहानी समालोचना, निबन्ध आदि सभी क्षेत्रों में पर्याप्त परिवर्द्धित हो गया है। उपन्यास कारों में प्रेमचन्द, पं० विश्वंभरनाथ कौशिक, बाबू प्रतापनारायण श्रीवास्तव, श्री जैनेन्द्र कुमार, वृन्दावन लाल वर्मा आदि के नाम स्मरणीय हैं। इस समय के उपन्यासों की विविधता विशेष प्रकार से द्रष्टव्य है।

कहानियों में 'गुलेरी', भगवतीप्रसाद मिश्र, प्रेमचन्द, 'हृदयेश', कौशिक, जैनेन्द्र कुमार, विनोदशंकर व्यास, ज्वालादत्त शर्मा, सुदर्शन, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', 'प्रसाद' रामप्रसाद और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम लिया जा सकता है। कहानियाँ समाज के वैविध्यपूर्ण मार्मिक स्वरूप को व्यक्त करती हैं। सुधार की ओर भी उनकी दृष्टि है। वे समस्याएँ भी खड़ी करती हैं। हास्य-विनोद द्वारा अनुरंजन करनेवाली कहानियाँ भी इस समय देखी जाती हैं। नाटककारों में 'प्रसाद', सेठ गोविन्ददास और हरे कृष्ण 'प्रेमी' ऊँचा स्थान रखते हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ-प्रसाद मिश्र 'मिलिन्द', चतुरसेन शास्त्री, कैलाशनाथ भटनागर ने भी नाटकों द्वारा साहित्य की सेवा की है। एकांकी नाटक भी पर्याप्त संख्या मिलते हैं। निबन्धों के क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई है समालोचना का ढंग भी बदला हुआ दिखाई पड़ता है। कवियों

की सच्ची समालोचना देखने को मिलने लगी। पं० रामचन्द्र शुक्ल की वैज्ञानिक समालोचना प्रणाली हमें देखने का मिली। इसके पश्चात् बहुत से लोग मैदान में आ गए।

## जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

'रत्नाकर' का जन्म भाद्र शुक्लपक्ष सं० १९२३ में काशी में हुआ। सं० १९८९ में हरिद्वार में आपकी मृत्यु हुई। इनके रचित ग्रन्थ हरिश्चन्द्र, गंगावतरण, उद्धव शतक, अभिमन्यु-पंचक, हिंडोला आदि हैं।

आधुनिक काल के व्रजभाषा सम्बन्धी कवियों में रत्नाकर का नाम अग्रगण्य है खड़ी बोली के इस नवीन काल में व्रजभाषा की ओर कवियों का ध्यान कम आकृष्ट हुआ, क्योंकि सभी लोग काल के प्रवाह में बहते जा रहे थे। सामान्य वर्ग के विपरीत एक नवीन पथ का अनुसरण करने के कारण हमें 'रत्नाकर' की असीम प्रतिभा का परिचय मिलता है। इनकी रचनाओं में गंगावतरण और उद्धव शतक अपना विशेष स्थान रखते हैं। व्रजभाषा की रस-माधुरी एवं रस-निरूपण की झलक इनके काव्यों में सर्वत्र है। प्रकृति-वर्णनों की विशेषता तथा उनके लिए उपयुक्त शब्दों का चयन इनकी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देती है। वर्णनों में स्वाभाविक क्रम का निर्वाह सर्वत्र हुआ है। पाठकों को काव्य का एक भी अंश ऊलजलूल नहीं मालूम होता चाहे वर्णन कितने ही लम्बे क्यों न हों। भावों की मौलिकता भले ही सर्वत्र न पाई जाय पर इनकी अनोखी सूझ ने इनकी शैली में अपनापन भर दिया है। उद्धव के निराकार ब्रह्म के वर्णन के समय कवि ने गोपियों के द्वारा जो यह उक्ति कहलाई है वह कितनी हृदय-स्पर्शी एवं समयानुकूल जान पड़ती है :—

कर बिनु कैसे गाय दुहिहैं हमारी वह,
पद बिनु कैसे नाथ थिरकि रिझाइहैं।
कहै 'रतनाकर' बदन बिनु कैसे चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहैं।
देखि सुनि कैसे दृग श्रवन बिना ही हाय,
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहैं।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
उधो कहो कौन धौं हमारे काम आइहैं॥

कृष्ण गोपियों के प्यारे थे, उनके द्वारा कृष्ण की स्मृति भुलाई नहीं जा सकती थी। गौवों का चराना, माखन-चोरी, रासलीला, यमुना-तट पर वंशी की तान तथा आपत्ति के समय ब्रज की रक्षा गोपियों के हृदय में चिरअंकित हो गए थे। एक साथ रहने से कृष्ण का प्रभाव उनपर अमिट हो गया था। उनके साथ गोपियों का प्रेम शैशवकाल से परिवर्धित हुआ था और कालान्तर में पुष्ट भी हो गया। अतः प्रेम के क्षेत्र में परिवर्तन तथा आदान-प्रदान किसी अन्य के साथ सम्भव नहीं था। प्रेमिका का प्रेमी ही सर्वस्व होता है। इसी प्रकार का वर्णन तुलसीदास-रचित राम-चरित-मानस में भी मिलता हैं, जहाँ सप्तर्षि पार्वती की परीक्षा के लिए शिव की निन्दा करते हैं पर पार्वती का प्रेम शिव के प्रति अटल था। तुलसीदास की पार्वती भी प्रेम के क्षेत्र में सप्तर्षियों को इसी प्रकार फटकारती हैं और चले जाने को कहती हैं जैसे रत्नाकर की गोपियाँ उद्धव को। उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि यह कृष्ण का सन्देशा है, इसीलिए वे कहती हैं—

'रसिक-सिरोमनि को नाम बदनाम करो
मेरी जान उधो कूर कूबरी पठायो है।'

वे प्रेम को योग से अधिक महत्व देती हैं :—

"प्रेम अरु जोग में सुजोग छठें आठें पर्‍यो
एकह्वै रहैं क्यों दोऊ हीरा अरु कांच ह्वै।
तीनि गुन पांच तत्व बहकि बतावत सो
जैहै तीनि तेरह तिहारो तीनि पांच ह्वै।

गोपियों का प्रेम कृष्ण के न आने से किसी दशा में कम नहीं हो सकता। हृदय जिसके हाथ बिक जाता है सदा उसी के यहाँ निवास करना है। गोपियाँ कुछ दूसरी बात नहीं कहतीं--

ज्यों-ज्यों बसे जात दूरि दूरि पिय प्रानमूरि
त्यों-त्यों धँसे जात मन-मुकुर हमारे में।

ऋतुओं का वर्णन भी उद्धव शतक में अत्यन्त रोचक तथा मनोहर हुआ है। कृष्ण के लिए गोपियां कोई सन्देश नहीं भेजतीं। उन्हें यह सोचकर कष्ट होता है कि मेरी वेदना की स्मृति करके कृष्ण को कष्ट होगा। उन्हें यह विदित नहीं था कि कृष्ण ने तो पहले ही उद्धव से कहा था—

"प्रेम नेम निफल निवारि उर-अन्तर तें,
ब्रह्म-ज्ञान आनन्द-निधान भरि लैहैं हम।
आओ एक बार धारि गोकुल गली की धूरि,
तब यहि नीति की प्रतीति करि लैहैं हम॥"

गोपियों को इसका ज्ञान होता तो वे कभी इस प्रकार न कहतीं--

"नाम को बताइ औ जताइ ग्राम ऊधो बस,
श्याम सों हमारी राम राम कहि दीजियौ।"

अवश्य ही गोपियों के अनन्य प्रेम का प्रभाव उद्धव पर पड़ा। प्रेम की इसी विलक्षण शक्ति ने निराकार भगवान् को साकार कर दिया है। तुलसीदासने भी इसीलिए कहा है—

"अलख, अरूप, अगुन अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।"

ईश्वरीय प्रेम में लौकिक प्रेम से इसी प्रकार की विशेषता पाई जाती है। भक्त अपनी व्यक्तिगत सत्ता भूल जाता है। उसके लिए सेव्य ही सब कुछ हो जाता है। कृष्ण एक थे, गोपिया अनेक, पर सबों के साथ कृष्ण का प्रेम अद्वितीय था। भगवान की इसी समदर्शी दृष्टि को हम कृष्ण में पाते हैं। यही कारण था कि गोपियाँ उद्धव के पहुँचते ही कहने लगीं —

'हमको लिख्यो है कहा हमको लिख्यो है कहा
हमको लिख्यो है कहा कहन सबै लगीं॥'

प्रेम के आधिक्य से विभोर गोपियों की दारुण विरहावस्था को देखकर उद्धव की ज्ञान-गरिमा का उड़ जाना स्वाभाविक है। किसी की विपत्ति को देखकर द्रवित होना साधारण सी बात है, उसके प्रति सहानुभूति हृदय में उठने लगती है। उसको समझाने के लिए उसी के हृदय के अनुसार काम करना पड़ता है। यही कारण था कि गुरु वशिष्ट जैसे ज्ञानी दशरथ को राम-विरह के समय नहीं समझा सके।

उद्धव पर भी हमें प्रेम की प्रतिक्रिया दिखलाई पड़ती है। कहाँ वह गोपियों को समझाने गये थे, कहाँ स्वयं ही साकार के उपासक हो गये।

भाषा, भाव एवं अलंकारों की तुला पर जब हम रत्नाकर को तोलने बैठते हैं तो यही कहना पड़ता है कि कवि ने अपने कार्य में पूर्ण कुशलता प्राप्त की है। परिमार्जित एवं सौष्ठवपूर्ण भाषा जब भावों के क्षेत्र में मंथर गति से दुलकती चलती है तो रस-प्रवाह और अलंकारों की मादकता की भीनी महक से पाठकों का सरस हृदय रस-सिक्त हो जाता है।

## सत्यनारायण 'कविरत्न'

इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण-कुल में अलीगढ़ में सं० १९४१ में माघ शुक्ल ३ को हुआ था। १६ अप्रेल सन् १९१८ में इनका स्वर्गवास हुआ।

खड़ी बोली की खरखराहट के बीच, जो उस समय बनी हुई थी, पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' व्रज की मधुरवाणी सुनाते रहे। रीति-काल के कवियों तरह न चलकर वे कृष्ण-भक्ति की परम्परा पर चले। इनमें भारतेन्दु-काल की नवीन काव्यधारा का समावेश भी पाया जाता है। व्रज-भूमि, व्रजभाषा और व्रज-पति ही इनके सर्वस्व थे। व्रज-भाषा की कविता वे छात्रावस्था से ही लिखते रहे। जीवन की घोर विषमताओं के बीच भी ये हँसमुख और प्रसन्न दिखलाई देते थे। इनके लिए इनका जीवन ही एक काव्य था। अतः जो बातें इनकी अनुभूति में आती थीं, उन्हें काव्य का रूप देने में देर नहीं लगती थी। यहाँ तक कि मित्रों के पास इनके पत्र भी पद्य में हो जाते थे। इनकी अधिकांश रचनाएँ सामयिक हैं क्योंकि ये किसी का अनुरोध नहीं टाल सकते थे। स्वामी रामतीर्थ, तिलक, गोखले, सरोजनी नायडू आदि पर लिखी प्रशस्तियाँ, लोकहित के आयोजनों के लिए इनकी लिखी गई कविताओं में दुख के निवारण की पुकार पाई जाती है। किन्तु वह व्रज भाषा के काव्यगत प्राचीन स्वरूपों ही में सीमित न रह कर बोलचाल की भाषा से मिलती हुई चली है। बहुत से ऐसे शब्दों और रूपों के प्रयोग किए गए हैं जो परंपरागत काव्य-भाषा में नहीं पाए जाते। इससे पता चलता है कि वे रूढ़ियों के समर्थक नहीं थे। जिसके ग्रहण से काव्यानन्द बढ़ता है, उसे अपनालेने से वे बाज नहीं आते थे। यह उनकी प्रतिभागत विशेषता का नमूना है और उनकी सर्वग्राहिता का स्वरूप है। इन्होंने 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' नामक संस्कृत-

नाटकों का अनुवाद किया है। इनके सवैये बड़े सुंदर और मनोहर हैं। इनके द्वारा किए गए पद्योंके अनुवाद मौलिक नाटक के श्लोकों से सुंदरता में किसी प्रकार कम नहीं है। इनकी 'प्रेमकली' और 'भ्रमर दूत' में यशोदा ने द्वारिका जा बसे हुए कृष्ण के पास संदेशा भेजा है। इसकी रचना नन्ददास के भँवर गीत की शैली पर की गई है। इसमें देश की वर्तमान दशा का भी आभास मिलता है। भ्रमर-दूत का एक पद इस प्रकार है—

'कौने भेजों दूत पूत सों बिथा सुनावै,
बातन में बहराइ जाइ ताको बहलावै।
त्यागि मधुपुरी को गयो छाँड़ि सबन को साथ,
सात समुंदर पै भयो दूरि द्वारकानाथ।
जाइगो को वहाँ।

निम्नलिखित कविता वर्त्तमान दशा का आभास देनेवाली प्रतीत होती है। यशोदा को पत्र लिखने नहीं आता, इसीलिए वह कहती हैं—

नारी-सिच्छा अनादरत जे लोग अनारी,
ते स्वदेस अवनति प्रचंड पातक अधिकारी।
निरखि हाल मेरो प्रथम लेहु समझि सब कोय,
बिद्याबल लहि मत परम अबला सबला होय।
लखो अजमाय कै।

कहीं कहीं पर अलंकारों की सुन्दर छटा देखने को मिलती है: भ्रमरदूत की यह दूसरी रचना इस प्रकार है—

अलबेली कहुँ बेलि द्रुमन सों लपटि सोहाई।
धोए धोए पातन की अनुपम सुघराई।
चातक सुख कोयल ललित बोलति मधुरी बोल,
कूक कूक केकी कलित कुंजन करत कलोल।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्यनारायण में व्रज-साहित्य की कितनी विशेषता भरी पड़ी है। इनका जीवन गृहकलह से प्रायः अशान्त रहता था। इसका वर्णन भी इन्होंने एक स्थान पर किया है :—

भयो क्यों अनचाहत को संग ?

क्षुब्ध जीवन होने पर भी कवि ने व्रज-भाषा की मधुर मिठास में कुछ कटुता नहीं आने दी है। इससे इनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय मिल जाता है।

## ( नई धारा )

## पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

## ( १९२२--२००३ )

आपका जन्म आजमगढ जिले के निजामाबाद कस्बे में हुआ था। आप कई भाषाएँ जानते थे। खड़ी बोली की सबसे प्रौढ़ तथा क्रमबद्ध सेवा करनेवालों में उपाध्याय जी का नाम उल्लेखनीय है। प्रारंभिक अवस्था में आप व्रजभाषा के कवि थे। तत्पश्चात् आपका झुकाव खड़ी बोली की ओर हुआ। इन्होंने हिन्दी के शैशव-काल में 'प्रियप्रवास' ऐसे महाकाव्य की रचना की जो अनेकानेक छंदों से युक्त, कोमल-कान्त-पदावली से वेष्टित, भावों की वल्लरियों से शोभित तथा अलंकारों की शृङ्खलाओं से अलंकृत है। इस प्रकार आपने आगे आनेवाले साहित्य-महारथियों के लिए साहित्य-सृजन का मार्ग खोल दिया। आपके कृष्ण-काव्य का क्षेत्र, आपके सुमधुर तथा आकर्षक कृष्णप्रेम का द्योतक है। जीवन के विभिन्न अंगों से सरसता संचय करने की प्रवृत्ति आपमें पाई जाती है। नायिकाओं के भेद को दिखलाने के लिए आपने 'रसकलस' लिखा था।

उपाध्याय जी जिस प्रकार संस्कृत-गर्भित समासों से पूर्ण अधिक क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करते थे, उसी प्रकार मुहावरेदार सरलभाषा का भी। 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' तथा 'बोल चाल' इसके उदाहरण हैं। भाषा की इन दोनों प्रकार की शक्तियों पर समान अधिकार रखनेवाले कवि साहित्य-क्षेत्र में कम देखने को मिलते हैं। आपकी अंतिम रचना 'वैदेही-वनवास' है। 'वैदेही-वनवास' में कवि अपने कृष्ण-काव्य की परंपरा से बाहर जाकर राम-काव्य से संबंध स्थापित करता है। वास्तव में राम और कृष्ण में कोई अंतर ही नहीं है। दोनों ही एक चित्र के दो स्वरूप हैं। 'वैदेही वनवास' में कवि की भावना प्रिय-प्रवास से अधिक प्रभावशाली और स्पष्ट है। भाषा की वर्णन-शैली भी मनोरंजक होते हुए, दूषित नहीं हुई है। संस्कृत-गुम्फित पदावली का प्रयोग जैसा प्रिय-प्रवास में हुआ है वैसा इसमें नहीं। प्राकृतिक दृश्यों का अंकन भी अपना विशेष महत्व रखता है। कवि को परख 'वैदेही वनवास' में पहले से विस्तृत हो गई है। किसी भी भाव को मूर्तिमान करने का आयोजन कवि ने जहां कहीं भी किया है, सफलता मिली है। उपाध्याय जी की रचनाओं में छंदों की अनेकरूपता के साथ भाषा और भावों की विविधता ध्यान देने योग्य है। इससे इनकी अध्ययनशील प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

इन्होंने उपन्यास तथा कहानियाँ भी लिखी हैं। पर इनका अधिक सम्मान हिन्दी-साहित्य ने कविता ही में किया और इन्हें कवि-सम्राट् की उपाधि से विभूषित किया। वास्तव में आप सम्राट् का कार्य करने से चूके नहीं है। सजधज से युक्त भाषा झंकारती हुई चतुरंगिणी सेना की भांति जब निकलती है तो यही प्रतीत होता है मानो राजप्रासाद से किसी राजा की सवारी आई हो। इनके कुछ छंदों का नमूना इस प्रकार है :—

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका, क्रीड़ा-कला-पुत्तली

शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्यलीलामयी
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य सन्मूर्त्ति थीं।

'चोखे चौपदे' की एक रचना इस प्रकार है—

इक फफोला सा हृदय पर था पड़ा,
फूटकरके वह अचानक बह गया
आज जो अनुमान था इतना बड़ा,
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया।

## मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी का जन्म सं. १८९३ में झाँसी के एक सम्मानित वैश्य-कुल में हुआ। पिता के कविहृदय होने के कारण आपकी अभिरुचि बाल्य काल से ही कविता की ओर हो गई। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से आपको बहुत प्रोत्साहन मिला।

गुप्तजी आधुनिक काल में हिन्दी के पूर्ण प्रतिनिधि कवि हैं। सामान्य विचारों की शृंखला से लेकर उच्च कोटि के भाव आपकी रचनाओं में साथ ही साथ भरे हुए हैं। आपका कविता-काल द्विवेदी-युग से लेकर अबतक चला आरहा है। भारत-भारती आपकी सर्वप्रथम रचना है। इसमें कविने भारत की वास्तविक स्थिति का वर्णन तथा भारतीयों की दीन-दशा का चित्रण बड़े आकर्षक ढंग से किया है। परतंत्रता से जकड़े हुए देश की दुर्दशा का चित्र खींचकर सोनेवाले भारतीयों को सोते से जगाया गया है। भाषा सरल-सुबोध तथा सुगम है। जिससे सभी प्रकार के पाठक समान आनन्द प्राप्त करते हैं। कविता गेय छन्द में होने के कारण सुमधुर तथा सुपाठ्य है। आपकी रचनाओं में विशेषकर कथा का प्रवाह सर्वत्र बना रहता है। 'जयद्रथ वध' आपका एक खंडकाव्य है। इनके अतिरिक्त आपने रंग में भंग, साकेत, नहुष, कुणाल, कीचक, कर्बला तथा झंकार की रचना की है। आपकी रचना को देखने से पता लगता है कि कवि निर्दिष्ट

आदर्श के पालन में संलग्न है। साथ ही साथ वह कविकर्म को भी नहीं भूला है। छायावादी कवियों की तरह आपकी कविता में प्रकृति के साथ हास-परिहास, आनन्द-विलास के स्थल नहीं पाए जाते। 'झंकार' आपकी रहस्यवादी रचना है, हिन्दी की विभिन्न कालों में आई अड़चनों को दूर करनेवालों में आपका नाम लिया जा सकता है। अभ्यास के बल से भी कविता सफलता से की जा सकती है—इसके प्रत्यक्ष उदाहरण मैथिलीशरण गुप्त हैं। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं का मिलान यदि बाद की रचनाओं से किया जाता है तो विश्वास नहीं होता कि यह कृति 'भारत भारती' के रचयिता की है। माना कि आपमें कल्पना की ऊँची उड़ान तथा भावों की अनोखी सूझ नहीं है, फिर भी अनुभूति के क्षेत्र में आप किसी आधुनिक कवि से कम नहीं है। भले ही भाषा में वह वेग और प्रवाह न हो जो आलकल के कवियों में प्रायः पाया जाता है पर काव्य की सीमा के भीतर रहकर लोक की सेवा करने वालों में आपका नाम अग्रगण्य है। आधुनिक काल के कवियों की तरह ये चक्कर में नहीं पड़ते हैं। भले ही मन की मौज के अनुसार कभी काल गति में प्रवाहित हो गए हों। पर इन बातों का स्थायी प्रभाव कवि पर नहीं पड़ पाया है।

कवि का कर्म वास्तव में केवल मनोभावों का प्रदर्शन करना ही नहीं होता बल्कि कुछ और है। समाज को ऊपर उठाने, नीचे गिराने का उत्तरदायित्व भी उसी के ऊपर है। यदि उसकी कविता किसी निश्चित मार्ग का अवलंबन नहीं कर पाई है, केवल भाषा के आश्रय से भावों की लड़ियाँ जमाकर भाव-चित्रों का अंकन ही किया है तो वह सफल कवि नहीं कहा जा सकता। सफलता तो कवि की तब है जब पाठक कविता से प्रभावित होकर कवि के ही भावों में निमग्न हो जाय। साथ ही साथ वे भाव उसके दैनिक जीवन से संबंधित कार्यों में अनर्थकारी भी न हों। अन्यथा यह कहा जायगा कि कवि ने अपनी मस्ती में पाठकों को पथ-विमुख

कर दिया है। आध्यात्मिकता की पुट से पुष्ट आपकी रचना भारतीयों को सचमुच भारतीय बनाने में सफल हुई है। वास्तव में पार्थिव शरीर की महानता केवल वस्तुओं का संग्रह करके उसके उपभोग में ही नहीं है बल्कि उसके परित्याग में है और वह परित्याग यदि किसी विशेष अर्थ के लिए हो तो सराहनीय है।

'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे' यह रचना आपके हृदय के भावको व्यक्त करती है। इसी प्रकार का भाव आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ अमेरिकन वैज्ञानिक श्री इन्सटीन भी व्यक्त करता है। उसके विचार से मनुष्य के लिए मनुष्य सब से महत्व-पूर्ण वस्तु है। जब हम वर्तमान युग में स्वार्थ-संघर्ष से क्षुब्ध मानव की निम्नतर पशु-प्रवृत्ति का परिचय जागतिक कार्यों में सर्वदा देख रहे हैं तो हमें इन आदर्शों के पालन की आवश्यक-कता प्रतीत होती है क्योंकि इनके अभाव में वर्तमान जगत में स्थित मनुष्यता मिट जाने वाली है।

चाहे गुप्त जी में नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा न हो जो अपनी छाप पाठकों के हृदय में किसी आश्चर्य के रूप में डाल सके पर वास्तविक जीवन की जटिल परिस्थितियों में पड़ने पर हमें उनकी रचनाओं की याद आही जाती है।

'न्यायार्थ अपने बंधु को भी दण्ड देना धर्म है'—आज जगत की पुकार है। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में खड़ी बोली का शुद्ध स्वरूप पाया जाता है। यदि इनकी रचनाओं को खड़ी बोली का दर्पण कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

साथ ही साथ साहित्य में आने वाले अनेक वादों का यदि प्रत्यक्ष दिग्दर्शन इनकी कृतियों में नहीं होता तो संकेत तो मिलता ही है। भाषा, भाव, विचार, आदर्श-जीवन-समन्वय आदि की तुला पर चढ़ाने से हिन्दी-साहित्य के एक ऊँचे कवि मैथिलीशरण गुप्त अवश्य ठहरते हैं। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी हमारी आँखें

आप पर लगी हुई हैं। गुप्त जी के ग्रन्थों का नाम इस प्रकार है :—

भारत भारती, जयद्रथवध, वक संहार, सैरन्ध्री, द्वापर, पंचवटी, साकेत, अनघ, यशोधरा, गुरुकुल, सिद्धराज, शकुन्तला और चन्द्रहास।

## जयशंकर 'प्रसाद'

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के प्रतिष्ठित तम्बाकू के व्यापारी सुँघनी साहु के घर हुआ था और मृत्यु १९९४ में हुई। बाल्यावस्था में घर पर ही हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। ये प्रारम्भ में ब्रजभाषा में कविता करते थे पश्चात् खड़ी बोली में। भारतेंदु के बाद नाटकों की सुन्दर रचना आपही कर पाए। उपन्यास, कहानी, गीत एवं प्रबन्ध काव्य भी आप द्वारा रचित हैं। 'आँसू' एक गीत संग्रह है और कामायनी प्रबन्ध काव्य।

खड़ी बोली का ज्यों २ विकास होता गया काव्य अधिक कल्पनामय तथा भावुक होते गए। हिन्दी के कवियों ने बँगला साहित्य के सर्वश्रेष्ठ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के आधार पर रहस्यवाद तथा प्रतीकवाद की सृष्टि करके साहित्य में एक नया युग फैलाया। इस बँधे हुए क्षेत्र के अन्दर चलने वाले काव्य ने छायावाद का रूप ग्रहण किया। इस प्रकार के कवियों में रहस्य-भावना के साथ चित्रमय भाषा का अधिक मेल रहा। भावों की विशेष अनुभूति इन काव्यों में नहीं मिलती। कुछ स्थानों पर ही छायावाद के अन्तर्गत और अज्ञात शक्ति को आलम्बन बनाकर अत्यन्त सुन्दर भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार की व्यंजना की गई है। पर अधिकतर कविताओं का प्रभाव प्रकृति के बाह्य-रूपों के निरूपण में हो रहा। जिससे कालान्तर में कविता अधिक क्लिष्ट तथा काल्पनिक हो गई।

प्रसादजी छायावाद नामक कविताओं के सूत्रधार एवं नायक कहे जा सकते हैं। पहले ये ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। पर जब से खड़ी बोली में कविता करने लगे इन्होंने अपनी एक नूतन पद्धति निकाली। इनकी छोटी छोटी कविताओं का प्राथमिक संग्रह 'झरना' के नाम से संगृहीत है। इनमें पूरा रहस्यवाद चित्र—विधान के साथ दिखाया गया है। छायावाद का दूसरा रूप भाषा की दृष्टि से अधिक सुन्दर और भावों की दृष्टि से संकीर्ण हो गया है। इनकी कविता मधुचर्या के मानस-प्रसार के लिए ससीम से कूदकर असीम पर जा पड़ी है। इनकी विशिष्ट रचना आँसू, लहर, कामायनी, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, राजश्री, कंकाल तथा तितली हैं। नाटक के क्षेत्र में इन्होंने जो कार्य किया है वह महत्वपूर्ण है। भारतीय परम्परा का एक नया विकसित रूप इनके नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है। साथ ही साथ नवीन भारत की दुर्दशा वा उसकी उन्नति के साधन भी उनकी कला का रहस्य है। कहानी तथा उपन्यास प्रायः भावात्मक हुए हैं। वस्तु-स्थिति का सुन्दर रूप इनकी रचनाओं से कम पाया जाता है। कविता के क्षेत्र में कल्पना के पंख पर उड़ते हुए कवि ने जगत में होने—वाली घटनाओं का सजीव रूप नहीं देखा। उसने अपनी ही छाया को व्याप्त करने का प्रयत्न किया। मानव-जीवन की दैनिक घटनाओं का सजीवरूप पाठकों के सामने दिखलाना कवि का लक्ष्य नहीं रहा है। वह अपने मानस को आनन्द के क्षेत्र में ले जाने के लिए जितना प्रयत्नशील दिखलाई पड़ता है, उससे बहुत कम पाठकों के लिए उसके जीवनसम्बन्धी घटनाओं पर मार्मिक उक्तियाँ कहने में दिखलाई पड़ता है।

काव्य की भाषा संस्कृत की कोमल-कान्त-पदावली से युक्त कर्णप्रिय है। स्थान स्थान पर सामाजिक शब्दों का प्रयोग भी दिखलाई पड़ता है। भाषा की क्लिष्टता हमें भावों की गहराई तक नहीं जाने देती। यही कारण है कि प्रसादजी के काव्यों पर

हिन्दी-साहित्य के विद्वानों में मतभेद है। अपनी अपनी सूझ के अनुसार लोग अपना दृष्टिकोण उनके काव्य पर स्पष्ट करते हैं। परन्तु जो कुछ भी हो, 'प्रसाद' जी ने हिन्दी-साहित्य को संसार के समक्ष ऊँचा उठाया है। इनकी रचनाएँ यद्यपि कठिन हैं फिर भी हम इनको साहित्य के उन विशिष्ट महारथियों में रखते हैं जिन्होंने हमारी हिन्दी भाषा को अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक बनाया है। इनकी कुछ विशेषता जताने के लिए इनकी रचनाओं का कुछ उल्लेख कर देना आवश्यक है। प्रभात के ऊपर की हुई उनकी कविता इस प्रकार है :—

बीती विभावरी जाग री !

अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुलकुल सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई मधु मुकुल-नवल रस-गागरी ॥
अधरों में राग अमन्द पिए, अलकों में मलयज बन्द किए
तू अब तक सोई है आली आँखों में भरे विहाग री ॥

उपर्युक्त रचना में कवि ने उषा को नागरी माना है और वह आकाश रूपी पनघट में तारारूपी घड़े को डुबो रही है। इस प्रकार के उत्कृष्ट रूपक में कल्पना की ऊँची उड़ान ही नहीं है बल्कि सौन्दर्यानुभूति परख करने की शक्ति से भरे हैं। इसीप्रकार 'मधु मुकुल नवल रस गागरी' में भी शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग द्वारा काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। भावों को मूर्तिमान करना प्रसादजी के लिए सरल बात थी। 'आँसू' की पंक्तियों में भी कवि की तीव्रानुभूति से बड़ी लाघवता दिखलाई पड़ती है। 'आँसू' का परिचय देते हुए कवि लिखता है:—

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बन कर, वह आज बरसने आई ॥

चिरताप एवं वेदना के प्रतिफल में ही आँसू निकला करते

हैं। आकुलता जितनी ही विशेष होगी अश्रुधारा का रंग उतना ही ज्यादा होगा। भावों के स्वरूप का निर्माण इससे सुन्दर और क्या हो सकता है! 'कामायनी' में चिन्ता का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

ओ जीवन की मरुमरीचिका, कायरता की अलस विषाद।
अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोहमुग्ध जर्जर अवसाद॥

आगे चलकर फिर कवि कहता है:—

मृत्यु अरी चिर निद्रे तेरा अंक हिमानीसा शीतल।
तू अनन्त में लहर बनाती काल जलद की सी हलचल॥
महानृत्य का विषम सम अरी अखिल स्पन्दनों की तू माप।
तेरी ही विभूति बनती है सृष्टि सदा होकर अभिशाप॥

'काम' के सम्बन्ध में कवि लिखता है—

पीता हूँ हाँ पीता हूँ, यह स्पर्श रूप रस गंध भरा।
मधु लहरों के टकराने से ध्वनि में है क्या गुंजार भरा॥
प्यासा हूँ अब भी प्यासा सन्तुष्ट ओघ से कौन हुआ।
आया फिर भी वह चला गया तृष्णा को तनिक न चैन हुआ॥

लज्जा पर भी कवि के उद्गार मौलिक हैं:—

चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली॥

लज्जा का चित्र कितना स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कामायनी में कवि के भाव अत्यन्त उत्कृष्ट तथा अलौकिक हैं। इन्हीं सब आधारों पर यह कहा जा सकता है कि प्रसादजी हिन्दी-साहित्य के वह उज्वल सितारे हैं जिनके प्रकाश से कितनों को साहित्यिक बनने की प्रेरणा मिली है। 'प्रसाद' की कविता नवयुग-प्रवर्तिका है।

प्रसाद की भाषा संस्कृत-बहुल, मनोरम, ओजस्विनी तथा मनोहर अलंकारों से युक्त है। आपका कवित्व नाटकों और कहानियों में भी प्रतिच्छायित है। आपके पात्रों में दार्शनिक साहित्यिकता परिलक्षित होती है। आपकी रँगीली कल्पना से शैली उदात्त हो गई है। नाटकों में उत्तर-प्रत्युत्तर अच्छे हुए हैं। कहानियाँ भावप्रधान और ममस्पर्शी हैं। प्रकृति-चित्रण का ढंग भी अनूठा है।

## पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

### जन्म ( सं १९५३ )

'निराला' जी का जन्म सं १९५३ में महिषादल राज्य बंगाल में हुआ। बाल्यकाल में आपने पहले बँगला फिर हिन्दी का अध्ययन किया। आपकी बहुमुखी प्रतिभा ने साहित्य-क्षेत्र में उथल-पुथल मचा रखी है। कविता, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध सभी साहित्यिक विषयों में आप पूर्ण सफलता प्राप्त कर चुके हैं। आपकी भाषा कठिन होती है। थोड़े शब्दों में भाव भरने की चेष्टा से अर्थगत वक्रता आजाती है। आपने हिन्दी में अमात्रिक छन्दों को चलाया जिन्हें मुक्तकाव्य कहते हैं।

बँगला और अँगरेजी के ढंग की प्रगीत पद्धति की ओर निराला जी सबसे अधिक आकर्षित हुए। इस पद्धति में नाद-सौन्दर्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। परिणामतः संगीत-तत्वकी प्रधानता आजाती है और समन्वित अर्थ की ओर कम ध्यान रह जाता है। निराला जी ने काव्य को संगीत के अधिक समीप लाने का प्रयत्न किया है। 'गीतिका' में ऐसे गीत भरे हैं जिनमें कवि का ध्यान संगीत की ओर अधिक और अर्थ-समन्वय की ओर कम है।

उदाहरण—

अमरण भर वरणगान
वन वन उपवन-उपवन
जागी छवि, खुले प्राण

जहाँ कविने अधिक या कुछ पेचीले अर्थ रखने का प्रयास किया है वहाँ पदयोजना उस अर्थ को दूसरों तक पहुँचाने में प्रायः अशक्त या उदासीन पाई जाती है—जैसे

कौन तमके पार ( रे कह )
अखिल-पल के स्रोत, जल जग
गगन घन-घन-धार ( रे कह )
गंध व्याकुल-कूल-उर-सर,
लहर-कच भर कमल-मुख पर,
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर सर
गूँज बारंबार ! ( रे कह )

× × × × ×

निशा-प्रिय-उर-शयन सुखधन
सार या कि असार ? ( रे कह )

यहाँ 'हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर सर' का अर्थ जो कविको अभीष्ट है, ऊपर से लाना होता है, वह पदावलियों से नहीं निकलता ( आनंदरूपी भौंरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है। तीर के निकालने से भी एक प्रकार का स्पर्श होता है जो सुखद है; तीर रूप का चुभा तीर है )।

बंगभाषा की शैली की छाप निराला जी पर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है। समास-पद-गुम्फित पद-वल्लरी, क्रिया-पद का लोप इनकी रचनाओं की विशेषता है। 'प्रसाद' और 'पंत' की तरह लाक्षणिक वैलक्षण्य इनकी रचनाओं में नहीं दिखलाई पड़ता है।

आपके पद्यों में चरणों की स्वच्छन्द विषमता है, कोई पद छोटा, कोई बड़ा और कोई मँझोला है।

इनकी रचनाओं में 'अज्ञात प्रिय' की ओर संकेत है, साथही जगत् के अनेक प्रस्तुत व्यापारों की भावनामयी सरस व्यंजना भी है। सामाजिक पाखंडपूर्ण क्रिया-कलापों के विरोध में की हुई आपकी रचनाएँ चुभती हुई तथा मार्मिक हैं। आपको सामाजिक बंधन अरुचिकर हैं।

आपकी रहस्यात्मक रचनाओं में भारतीय दार्शनिक प्रणाली का निरूपण झलकता है। बँगला के आधार पर ही इस प्रकार की विचारधारा का समावेश आप में हुआ है। ऐसी रचनाएँ मौलिक तथ्यों का उद्घाटन करने में असफल हैं।

'तुलसी दास' निराला जी की बड़ी रचना है जो अधिकांश अंतर्मुख प्रबंध के रूप में है।

'उद्बोधन' नामक कविता में कवि जगत में नूतन व्यवस्था लाना चाहता है। उसे जगत की जीर्ण और प्राचीन व्यवस्था प्रिय नहीं लगती। श्रमजीवियों के प्रति उसमें स्नेह है।

भाषा संस्कृतनिष्ठ, अर्थ स्पष्ट करने में कहीं अशक्त और चलती तथा परिमार्जित हैं।

## पं० सुमित्रानन्दन पन्त

पंतजी का जन्म अल्मोड़ा के कासौनी ग्राम में हुआ। आपने प्रारंभ से ही छायावादी कविता करना प्रारंभ कर दिया। आपने आगे चल कर यथार्थवाद को भी अपनाया है। खड़ी बोली की मिठास आपकी देन है। आपकी मुख्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं :—

वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-धूलि, स्वर्ण-किरण, उत्तरा और युगपथ। रचनाओं का प्रारम्भ सं० १९५७ से समझना चाहिए। प्रारम्भ में आपकी रचनाओं पर श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि का प्रभाव लक्षित होता है। भाषा चित्रमयी तथा रमणीय है। कविता

के पढ़ने से हृदय को आनन्द और कल्पना को उत्तेजना मिलती है। पंतजी की रहस्यभावना प्रायः स्वाभाविक ही रही है। छायावाद के अन्य कवियों की तरह अलौकिक कल्पना के आधार पर काव्य-रचना करने का प्रयत्न इन्होंने नहीं किया है। प्रकृति के सुन्दर चित्रों की आनन्दपूर्ण अनुभूति इनकी रचना की विशेषता है। भावों का मूर्तिमान रूप आंकत करके कवि ने यत्र-तत्र अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके काव्यों में मनुष्य-जीवनसंबन्धी कारुणिक व्यथाओं का चित्रण भारतीय पद्धति के अनुसार हुआ है, किन्तु उसमें हास्य और विनोद की पुट भी दिखलाई पड़ती है। इनकी प्रथम रचना 'वीणा' में प्रकृति के नूतन अंगों का एक नए दृष्टिकोण से वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् आपकी रचना 'पल्लव' साहित्य-क्षेत्र में अधिक सम्मानित हुई। इसका कारण भावों की सचाई तथा भाषा का चित्रमय होना है।

गुंजन, छाया, उच्छ्वास, युगान्त, युगवाणी इत्यादि पुस्तकों की रचना करके कवि ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

छायावाद के भीतर माने जाने वाले कवियों में प्रकृति के साथ सीधा सम्बन्ध पंत जी का ही दिखलाई पड़ता है। प्रकृति के अत्यन्त रमणीय खण्डों के बीच उनके हृदय ने अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलाए हैं। हम उन्हें प्रकृति की सौंदर्यमयी भूमि पर विचरण करते हुए पाते हैं। इन्होंने बादल के अनेक नेत्राभिराम रूपों की कल्पना की है और रङ्गभूमि पर ले आकर देखा है। बादल पर आपकी कविता इस प्रकार है :—

फिर परियों के बच्चों-से हम सुभग सीप के पंख पसार।
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में पकड़ इन्दु के कर सुकुमार॥

परन्तु आपने प्रकृति के उन दुःखदायीरूपों का चित्रण नहीं

किया है जिसकी झलक संस्कृत-साहित्य के कवियों में पाई जाती है। जगत की परिवर्तनशीलता से प्रेरित होकर कवि ने कल्पना के कोमल, कठोर, मधुर, कटु एवं करुण भावनाओं का चित्रण बड़ी मार्मिकता से किया है। आपकी रहस्यभावना प्रसाद और महादेवी वर्मा की रहस्य-भावना से भिन्न है। कवि में दार्शनिकता की भावना अधिक पाई जाती है। मध्यकाल की निकली हुई रचनाओं में कवि समाजवाद एवं संघवाद की ओर बढ़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। समाज के विकृत रूपों का चित्रण करके श्रमिक एवं निम्न कोटि के व्यक्तियों की सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा आपने की है। 'अतः हम देखते हैं कि पंत जी छायावाद और रहस्यवाद से निकलकर स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद की ओर बढ़ रहे हैं। अवश्य ही यह साहित्य के लिए अच्छी बात है।'

पंत जी की भाषा कलापूर्ण, साहित्य-सौंदर्य से सनी हुई और चित्रमयी है। खड़ीबोली को व्रजभाषा के समकक्ष मधुर एवं सरस बनाने का कार्य पंत जी ने किया है। लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। जगत के रूपों और व्यापारों में व्यक्त होने वाली आत्मा का चित्र कवि अत्यन्त व्यंजक एवं रमणीय भाषा में कर पाया है। इस प्रकार अर्थगर्भित भाषा ने कवि की व्यंजना-शक्ति को पूर्ण बनाया है।

(१) इनकी कुछ मनोरम कविताएँ इस प्रकार हैं –

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना।
कहाँ-कहाँ ऐ बाल विहंगिनि, पाया तूने यह गाना॥

(२) लाज से अरुण, अरुण सुकपोल, मदिर अधरों की सुरा अमोल।

बने पावस घन स्वर्ण हिंडोल, कहो एकाकिनि कौन?
मधुर मंथर तुम मौन!

## श्रीमती महादेवी वर्मा

आधुनिक युग की मीरा श्रीमती महादेवी का जन्म फर्रूखाबाद में हुआ था। एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ में मुख्याध्यापिका हैं।

छायावाद के अन्तर्गत कविता करनेवाले जितने भी हिन्दी-साहित्य के आधुनिक महाकवि हुए हैं उनमें रहस्य-भावना से पूर्ण ओत-पोत यदि कोई है तो श्रीमती महादेवी। जीवन की विषमता से उद्विग्न मानस किसी अज्ञात सत्ता के फिराक में रहता है और उसका प्रयत्न सदैव उसके प्राप्त्यर्थ ही होता है। वेदनामिश्रित जीवन के भावों का स्पष्टीकरण महादेवी वर्मा की रचनाओं की विशेषता है। हृदय में कसक, पीड़ा तथा आकुलता है। यही कारण है कि वे कहती हैं:—

"उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से,
युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बन कर आज मेरे प्राण घेरे ?"

जीवन में चिरन्तन शक्ति को ज्ञात करने की अभिलाषा से अनुप्राणित होकर महादेवी जी ने इस प्रकार की आकुलता दिखलाई है। अज्ञात प्रिय के मिलन के लिए आत्मा की अधीरता एवं आकुलता आपकी पंक्तियों में सर्वत्र पाई जाती है।

आपका प्रारम्भिक कवि-जीवन व्रजभाषा से प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद खड़ीबोली में आप कविता करने लगीं। आपकी रचनाएँ नीहार, नीरजा, दीपशिखा, रश्मि, सान्ध्यगीत, यामा, अतीत के चलचित्र तथा शृङ्खला की कड़ियाँ हैं। अन्तिम दो गद्य-रचनाएँ है। दार्शनिकता के सिद्धान्तों से सनी हुई वेदान्त की विचार-धारा कहीं-कहीं बड़ी आत्मता से कवयित्री जी व्यक्त करने में सफल हुई हैं।

'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना' इस गीत में जीवन-पथ पर चलनेवाले पथिकों को संकेत करते हुए उनके भाव व्यक्त हुए हैं।

उस करुणेश से आप प्रार्थना करती हैं कि आपके जीवन की अतृप्ति बनी रहे क्योंकि आपके लिए चिर सुख की सम्भावना भी दुःख की सीमा है।

हैं पीड़ा की सीमा यह दुःख का चिर सुख हो जाना।
मेरे छोटे जीवन में देना व तृप्ति का कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें भरतीं आँसू के सागर।

सुख मनुष्यों के बीच दीवालें खड़ी कर देता है। उसकी मादकता में मनुष्य मत्त होकर अपने को भूल जाता है। दुःख मनुष्यता को सामान्य अनुभूति-भूमि पर प्रतिष्ठित करता है, फिर वह सबको अपने अनुराग-बंधन में बाँध लेता है। तब उसे सब अपने से लगते हैं। इसीलिए आप दुःख की कामना करती हैं।

कवयित्रियों में इन्होंने अपने नैराश्य और विरह के छायावादी गीतों से अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। इसके अतिरिक्त आलोचना, संस्मरण, अनुभूत्यात्मक निबन्ध भी आपके द्वारा प्रसूए हुए हैं। इनकी शैली संस्कृत के तत्सम और समस्त-पदावली से लदी हुई है। उसमें भाव-प्रवणता, संकेतात्मकता और दार्शनिकता की गहरी पुट होने के कारण बड़ी सरसता आ गई है।

## श्री सियारामशरण गुप्त

आप मैथिलीशरण गुप्त के सहोदर है। आपने बहुत से ऐसे विषयों पर रचना की है जिनकी ओर प्रायः बहुतों का ध्यान नहीं जाता। भाषा की शब्दावलियाँ अधिक आडम्बरपूर्ण नहीं

है। फिर भी भाव-प्रकाशन में स्वाभाविकता है। 'मौर्य विजय' आपकी प्रारम्भिक रचना है। उसमें मौर्यकालीन भारत की विभूतियों का चित्रण हुआ है। छप्पय का प्रयोग कविने शुरू से आखीर तक किया है। आपके और ग्रन्थ इस प्रकार हैं—आर्द्रा, पाथेय, दूर्वादल, विशाख, आत्मोत्सर्ग, अनाथ और बापू। बापू के जीवन के सभी क्षेत्रों को लेकर आपने रचना की है। वर्णन-शैली सजीव एवं रोचक है। बहुत सी बातों में आप अपने ज्येष्ठ भ्राता से मिलते जुलते हैं। आपकी नवीनतम कृतियों को देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि अध्यवसाय और श्रम से उच्च कोटि की कविता कर सकता है। यद्यपि कल्पना की ऊँची उड़ान एंव कथन-शैली की नवीनता इनमें नहीं पाई जाती पर जीवनसम्बन्धी गूढ़ विषयों की गम्भीरता सवत्र झलकती है, जिससे पता चलता है कि कवि कविता के क्षेत्र में विशेष तड़क-भड़क पसन्द नहीं करता। यही कारण है कि अलंकारिक छटा का अनुपम स्वरूप इनकी रचनाओं में नहीं मिलेगा।

कवि के अतिरिक्त गुप्त जी कहानीकार एवं उपन्यासकार भी हैं। नारी और गोद इनके उपन्यास रोचक ढंग से लिखे गये हैं। इनके उपन्यास सामाजिक जीवन का रूप खड़ा कर देते हैं। कहने का ढंग भी विशेष आकर्णक होता है। 'दैनिकी' में अपने एक अछूत के मन्दिर-प्रवेश की घटना को लेकर बड़ा रोचक वर्णन किया है। बेटी के कहने पर अछूत स्नानादि से निवृत्त होकर पुष्पादि लेकर मन्दिर में प्रवेश करने जाता है—

सिंह-पौर से भी आँगन तक नहीं पहुँचने मैं पाया।
सहसा यह सुन पड़ा कि कैसे यह अछूत भीतर आया॥
पकड़ो देखो भाग न जाए बना धूर्त है यह कैसा।
साफ स्वच्छ परिधान किए है भलेमानसों के जैसा॥
पापी ने मन्दिर में घुसकर किया अनर्थ बड़ा भारी।
कलुषित कर दी है मंदिर की चिरकालिक शुचिता सारी॥

उपरोक्त वर्णन-शैली कितनी सरल तथा सुबोध है। घटनाओं का क्रम निरन्तर बना हुआ है।

## डाक्टर रामकुमार वर्मा

रहस्य-भावना की तीव्रानुभूति से अनुप्राणित श्री वर्माजी की रचनाएँ आधुनिक युग की सौंदर्यानुभूति कराती हुई हमें उस अमिट सत्य को भी बतलाने का प्रयास करती हैं जिनको जानने के लिए मानव-हृदय सदा से प्रयत्नशील रहा है। कल्पना का आधार सरल, सुबोध तथा स्पष्ट है। छायावादी कवियों की तरह जीवन की सत्यता से दूर आपकी रचनाए नहीं हैं। पाठकों का हृदय उनकी कृतियों से एकाकार हो अपनी व्यक्तिगत सत्ता खो बैठता है। कवि के हृदय की यही विशेषता उसे लोक-प्रियता तथा अमरत्व प्रदान कर रही है। बाह्य विकास अवनति का मार्ग बनाता है। वस्तुतः जगत का बाह्य सौंदर्य कभी स्थिर नहीं हुआ है। ह्रास अवश्यभावी है। इसी पथ की ओर संकेत करती हुई यह आपकी रचना है:—

धूल हाय ! बनने को ही, खिलता है फूल अनूप।
वह विकास है मुरझा जाने का ही पहला रूप।

जीवन-संग्राम में बढ़नेवाले पथिक को शान्ति नहीं रहती। परम शान्ति के बाद तो संग्राम ही समाप्त हो जाता है फिर सब कामों का अन्त हो जाता है। कवि ने सरिता की लहरों का विश्राम करना बतलाकर अपने जीवन से उसकी मिलान बड़ी ही अच्छी तरह नीचे की पंक्तियों में किया है :—

वह सरिता है चली जा रही है चंचल अविराम।
थकी हुई लहरों को देते दोनों तट विश्राम॥
मैं भी तो चलता रहता हूँ निशिदिन आठोयाम।
नहीं सुना मेरे भावों ने शान्ति शान्ति का नाम।

लहरों को अपने अंगों में तट कर लेता लीन।
लीन करेगा कौन ? अरे यह मेरा हृदय मलीन ॥

मानव शक्ति के मद में मदान्ध हो जाता है। उसे ज्ञात नहीं है कि उसका शरीर नश्वर है। जब मानव अपने को अनन्त शक्तिशाली समझने लगता है तो उससे बहुत से विकृत कार्य हो जाते हैं। कवि जीवन की इस नश्वरता को समझता है और इसलिए यौवन के नशे में जग को भ्रष्ट न होने की सलाह देता है। 'कंकाल' नामक रचना में जगत की वासनाओं का चित्र बहुत ही बारीकी से खींचा गया है। "गिरते हुए फूल से करलूँ क्या अपना शृंगार" वस्तुतः कवि की भावना को उत्कर्ष प्रदान करती है। जगत् की वस्तुएँ गिरते हुए फूल की तरह हैं, उनमें अपनी तड़क-भड़क चिरकाल तक ठहराए रहना सम्भव नहीं है। एक न एक दिन वे मुरझा जाएँगी, फिर उनसे राग क्यों किया जाय। वे शव सरीखी हैं। चेतन सत्ता के आधार से ही चिरन्तन एवं अमिट सुख है, कवि इसी ओर संकेत कर रहा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्मा जी की रचनाएँ रहस्यभावना को लेकर चली हैं, उनमें आत्मा की चिरन्तन और साश्वत सत्ता की ओर इशारा है। साथ ही परमानन्द-प्राप्ति के लिए भी संकेत यत्र-तत्र मिलता है। रचनाएँ अनुभूति से सम्बन्धित होने के कारण वस्तुतः हृदयों में आनन्द ही नहीं भरती वरन् सत्पथ भी बतलाती हैं। वर्मा जी प्रकृति-प्रेमी भी है। 'पथिक' नाम की आपकी रचना प्रकृति द्वारा प्रदत्त आनन्द की ओर इंगित करती है। जन-कोलाहल से अशान्त जीव जीवन की मरुमरीचिका में प्यासे रहने पर भी प्रकृति के सम्पर्क में नहीं आने पाते। वस्तुतः उन्हें प्रकृति की अनन्त निधियों से कोई राग नहीं मालूम होता। हृदय की एकता के द्वारा ही प्रकृति हमारे सुख-दुःख की सहचरी हो सकती है तथा हम अपने जीवन को सुखद

बना सकते है। वर्माजी की कृतियाँ इसी भावना से भरी हैं।

वर्मा जी यद्यपि प्रगतिवादी नहीं है फिर भी प्रगति को प्रगतिशील करने में आपका हाथ है। 'चित्र-रेखा' तथा 'चन्द्रकिरण' आपकी सुमधुर रचनाओं के संकलन हैं। रूपराशि, चन्द्रकिरण तथा हिमहास में प्रगति की छाया है।

वर्मा जी एक कुशल नाटककार भी हैं। पर अभी तक आपका ध्यान एकांकी नाटकों पर ही गया है। विस्तृत जीवन के खण्ड-चित्र द्वारा ही आप वास्तविकता को सजीव बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः आशा है कि वर्माजी नाटक के क्षेत्र में अवश्य ही उतर आएगें। दैनिक जीवन की घटनाओं के चढ़ाव-उतार नाटकों में अभिरुचि को बनाए रखकर चित्रित किए गए है। ऐतिहासिक नाटक की भी ओर आपका झुकाव रहता है। रेशमी टाई, चारु-मित्रा, शिवाजी, समुद्र गुप्त, पराक्रमांक, औरङ्गजेब की अन्तिम रात्रि इस प्रकार की रचनाएँ हैं।

आलोचना के क्षेत्र में वर्मा जी का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। पाश्चात्य एवं प्राच्य आलोचना-प्रणाली आपकी विशेषता है, 'हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास', कबीर का रहस्यवाद, समालोचना आदि रचनासे आपने साहित्य को प्रदान की है।

'शुजा' में वर्मा जी कवि, आलोचक एवं नाटककार तीनो रूपमें आए हैं।

कहना न होगा कि वर्माजी साहित्याकाश के उदीयमान सितारे हैं। जो समय पाकर अपनी आभा बिखेरेंगे। आपके 'चित्र रेखा' पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से देव-पुरस्कार भी मिला है।

## पं० माखनलाल चतुर्वेदी

श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के सच्चे प्रतीक हैं। इनकी वाणी मर्मस्पर्शी, तीव्र तथा अनुभूतिपूर्ण है। परतन्त्र भारत के नवयुवकों को स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझने के लिए इनकी वाणी रणभेरी का कार्य कर करती थी। इनकी रचनाए हिम-किरीटिनी, हिम-तरङ्गिणी, और हमारे साहित्य-देवता हैं। इनकी रचनाओं में देश-भक्ति कूट कर भरी हुई है। इनके कृष्ण भारत को पुनः जीवित करनेवाले कृष्ण हैं। वैष्णव कवियों की तरह केवल आध्यात्मिकता ही इनके भक्तिपूर्ण काव्यों में नहीं पाई जाती बल्कि देश-प्रेम की एक लहर दृष्टिगोचर होती है। भारतीयों की दरिद्रता, दयनीय जीवन और विवशता इन्हें खींचती है। कवि पहले शरीर-साधन के लिए सभी उपकरणों का रहना आवश्यक समझता है।

आपकी कविता के अन्तरंग कक्ष में एक ऐसी प्रेमाकुल कातरता तथा आकुलता भरी रहती है जो प्रेमी हृदयों की अपनी वस्तु है। इस प्रकार की रचना साकार का तादात्म्य निराकार से कराती हुई मालूम होती है। कवि अपनी निजी अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त करता है कि पाठक उसे अपनी ही समझ लेता है। अपनी रचना द्विवेदी-काल से ही अपनी मधुर अभिव्यंजना-प्रणाली के लिए खड़ीबोली के पाठकों के लिए प्रिय रही है। उसका एक विशेष कारण यह है कि कवि ने जगत् को अच्छी तरह समझा है। सुख, दुःख, द्वन्द्व, उत्पीड़न, प्रलोभन आदि स्थलों की पूरी पहचान करने के पश्चात् जो भी रचना आपने की, वह सदा स्थायित्व लिए हुए अमरत्व की ओर संकेत करती है। आप एक ऐसे विश्व की कामना करते हैं जो आडम्बरशून्य तथा तरह-तरह के पेचों से रहित हो। विश्व को हिलाकर भी आप राजनीति का नाम नहीं लेते। राजनीति के लिए साम, दाम, दंड

विभेद आवश्यक होते हैं। कवि इनका प्रयोग नहीं करना चाहता क्रांति के सच्चे पुजारी चतुर्वेदी जी फिर किस प्रकार विश्व की काया पलट सकते हैं ?

आप की रचनाएँ कहीं कहीं व्याकरण के नियमों का उल्लंघन कर जाती हैं। यह उसी प्रकार कहा जा सकता है जैसे कोई दार्शनिक अपने विचारों में मस्त होकर अपने वस्त्रों की अच्छाई एवं बुराई की ओर ध्यान नहीं देता। इनकी भाषा में वेग है और साथ ही सौन्दर्य भी। शब्दों का भंडार अनन्त तथा उनके प्रयोग नूतन एवं विशिष्ट है। छायावादी कवियों की तरह शब्दों का शृंगार काव्य-क्षेत्र में आप ने नहीं किया है। कवि के अतिरिक्त आप हमारे सामने एक कुशल एवं प्रौढ़ गद्यकार एवं विचारशील मधुर वक्ता के रूप में भी आते हैं। आपकी रचनाएँ कोमल तथा आकर्षक होती हैं बहुत समय तक आप एक पत्रकार के रूप में ही जाने जाते थे। अभी आप से साहित्य को बहुत कुछ आशा है।

## रायकृष्ण दास

इस असीम विश्व के भीतर चिन्तन सत्य का जो अबाध स्रोत प्रवाहित हो रहा है उसका साक्षात्कार करने में चाहे बुद्विबादियों की तथ्यनिर्धारिणी बुद्धि नेति-नेति की घोषणा करके अपनी पराजय स्वीकार कर ले, पर सत्य के एकनिष्ठ खोजी को उस रहस्य का आभास जगत् के द्वारा ही हो जाता है। वह अनेकत्व को मिटा कर विश्व में एकत्व को ही देखने लगता है। उसकी इस प्रकार की प्रत्यक्ष अनुमति में बल होता है और गिरे हुए मानव को ऊपर उटाने की अक्षय क्षमता भी।

कविवर रायकृष्णदास की कृतियों में इसी सत्य का उद्घाटन यत्रतत्र एक निराले ढंग से करते देख सहृदय पठकों का हृदय झूमने लगता है। रूपक और अन्योक्ति से पृथक् प्रतीकात्मक शैलीका अवलम्बन करके इन्होंने भावों की मिठास और आकर्षण

बढ़ा दिया है। जह शैली पहले बँगला में आई। तत्पश्चात् हिन्दी में भी उसका स्वरूप दिखलाई पड़ा। इनकी रचनाओं में सरलता और स्पष्टता सर्वत्र विराजती है।

मधुरिमा के शैवाल में थिरकती हुई भाषा भावों के अभिनव पंख पसार कल्पना-स्रोत में कल्लोल करती मालूम होती है। पर कलित कल्पना मानव-हृदय से दूर एक कोने की सुप्त स्मृतियों के रूपमें नहीं आई है वह अनुभूति के सर्वसाधारण पुटपाक से सनी हुई अलौकिक विचारों में तराबोर है। इस प्रकार की भावाभिव्यंजन-शैली चाहे साधारण पाठक भले ही न समझ सकें और कृतियों को अवहेलना की दृष्टि से देखें, पर विशिष्ट तीव्रानूभूति रखने वाले विज्ञ पाठक तो सहज ही में भावों की अतुल गहराई की माप कर ही सकते हैं। व्यावहारिक तथा लोकप्रिय मधुर शब्दावलियों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक गम्भीरता से हुआ है। काव्य में कवि की आत्मा सर्वत्र झाँक रही है। इस प्रकार रहस्यभावना-प्रधान चित्र साहित्य-प्रेमियों को अमोघ उल्लास प्रदान करते हैं। हृदय की विशालता तथा गहनता प्राप्त करने पर ही इस प्रकार की रचना संभव है। परिमार्जित, प्रौढ़, प्राजंल, व्यावहारिक भाषा के साथ लोकोत्तर अनुभूति की कुशाग्रता और प्रगल्भता ने ही राय साहब को साहित्य में एक सम्मानित स्थान दिया है। नागरी-प्रचारिणी-सभा के कला-भवन के स्थापन एवं रक्षा का श्रेय आप को ही है। आपका कला-प्रेम ही आप का जीवन है और इसी कला-प्रेम ने ही 'साधना' ऐसी उच्चकोटि की रचना की है।

## सुभद्राकुमारी चौहान

श्री सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी-संसर को यद्यपि कोई परिपुष्ट साहित्य नहीं प्रदान कर पाईं फिर भी आपकी रचनाओं में सरलता तथा भावों की सुन्दरता वर्तमान रहती है। आपकी प्रथम रचना 'कर्मवीर' है। जिसमें अनेक अनुभूतियों का चित्रण

बड़ी स्वाभाविकता से हुआ है। 'राखी' नाम की रचना में आप प्राचीन भारतीय परम्परा का उल्लेख करती हुई पाई गई हैं, जिसमें भाई-बहन के नाते का महत्त्व अत्यन्त ऊँचा ठहराया गया है। 'झाँसी की रानी' ने इनको अमर कर दिया है। राष्ट्रीयता के रागों से प्लावित यह रचना देश के नवयुवकों में किसी समय नूतन प्राण भरती थी। भाषा तथा भावों की सजीवता एवं प्रवाह हृदय में उत्साह भरनेवाले हैं। आपकी रचनाओं में शिथिलता नहीं दिखलाई पड़ती। भावों को प्रदर्शन में असंगत विचार कहीं नहीं पाए जाते। आपकी दो रचनाएँ 'बिखरे मोती' एक कहानी-संग्रह तथ 'मुकुल' एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें तथ्यों को स्पष्ट करने की शैली विशेषतया पाई जाती है। अनुभूति के क्षेत्र में कवयित्री जी साधारण भावों को ही ग्रहण कर पाई हैं। अतः कल्पना की उड़ान जिनमें मिठास के साथ लोकोत्तर आनन्द भी हो इनकी रचनाओं में नहीं पाया जाता। क्षत्राणी होने के नाते उत्साहपूर्ण भावों का अच्छी तरह व्यक्त कर पाई हैं।

## हरिवंशराय 'बच्चन'

चार्वाक के सिद्धान्तों का चित्र यदि हमें हिन्दी-साहित्य में मिलता है तो हरिवंशराय बच्चन की रचनाओं में, 'मधुशाला' ने इसीलिए इतनी ख्याति प्राप्त की है। इसमें उर्दू शायरी की गंध मिलती है। सांसारिक विषय-वासना की प्रधानता दिखलानेवाली बहुत सी रचना उर्दू-साहित्य में भरी पड़ी है। उमर खय्याम की रचनाएँ ( रुबाइयाँ ) सब लोगों को इसलिए सरस लगती हैं कि वह भोग की वस्तुओं की विशेषता व्यक्त करने में सफल हुई हैं। पर साहित्य की उपादेयता एकमात्र मनोरंजनार्थ रचना करने में नहीं होती, व्यक्तिगत जीवन के आनन्द का लक्ष्य सर्वसाधारण की भेंट नहीं हो सकता। इसलिए यद्यपि बच्चन जी की 'मधुशाला' साहित्य के मनचले युवकों को कुछ

मनबहलाव का मसाला दे देती है पर इस प्रकार उन्हें बहकाकर इसे साहित्य की सेवा नहीं कह सकते।

इनकी अन्य रचनाएँ 'तेरा हार', 'मधुकलश', 'एकान्त-संगीत' तथा 'निशा निमंत्रण' है। इन सभी रचनाओं में भाषा की सरलता तथा भावों की अभिव्यंजन, प्रणाली देखने को मिलती है। सामान्य पाठक इसलिए उनकी रचना अच्छी तरह समझ लेते हैं। भावों का प्रकाशन करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। 'सतरंगिनी' इनकी नवीनतम रचना, है जिसमें कवि स्नेह का चित्र खीचता हुआ दिखलाई पड़ता है और किसी अतीत स्मृति की याद उसे आकुल करती हुई प्रतीत होती है इनकी कुछ कविताएँ अन्य विषयों से भी सम्बन्धित है। जैसे, 'बंगाल का अकाल'। सांसारिक व्यक्तियों द्वारा लगाए हुए आरोपों का उत्तर आपने इस कविता में दिया :—

'कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा'

वासनामय-जीवन के प्रति आपका स्नेह भले ही न हो पर विचारावलियों के द्वारा उस सागर में आपने गोते तो लगाए ही हैं। जगत की विषम परिस्थितियों ने हीं इन्हें प्रकृति तथा विश्व से अपनत्व स्थापित करने की प्रेरणा दी है। आजकल आपकी रचनाएँ 'हालावाद' से बहुत दूर चली गई हैं। कवि अपने पास-पड़ोस से प्रभावित होकर उनसे प्रीति करने लगा है। उनका प्रकाशन भी यत्र-तत्र इनकी रचनाओं में पाया जाता है कवि-सम्मेलनों में आपका कविता-पाठ अत्यन्त आकर्षक तथा मनोरंजक होता है।

## नरेन्द्र शर्मा

संघर्षों से उद्वेलितमानस, प्रणय-साधना की कठिनाइयों से चलता हुआ, जो बिखरे मोती प्रदान करता है वही स्वरूप नरेन्द्रजी

की रचनाओं का है। अपने हृदय की बात को निर्भीकता एवं निश्चलता से व्यक्त करने में आप तनिक भी संकोच नहीं करते। वियोग-जनित हृदय की तीव्रानुभूति रचनाओं में पाई जाती है। आपके 'प्रवासी के गीत' नाम की सार्थकता को व्यक्त करते हैं। कठिनाइयों में रहनेवाला कवि अनेकानेक स्थानों पर ज्वाला सहता हुआ परिस्थितियों का दास न होकर भी आगे बढ़ा है। 'प्रवासी के गीत' इसके प्रमाण-स्वरूप हैं। 'प्रभात फेरी 'इनकी दूसरी कृति है। इसी प्रकार आप ने 'मिट्टी और फूल' तथा 'पलाश-वन' एवं 'कामिनी' आदि चरनाएँ साहित्य को प्रदान की हैं।

## श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

अंचलजी की रचनाएँ छायावाद के अन्तर्गत आनेवाली ऐसी रचनाओं का चित्रांकन करती पाई जाती हैं जिनमें भौतिक अंगार की प्रधानता है। अनुभूतियों की तीव्रता तथा सौंदर्य-भावनाओं का निखरा हुआ रूप इनकी रचनाओं ने सर्वत्र पाया जाता है। सौंदर्य-पान की तृष्णा, रूप-ग्रहण की लालसा तथा प्रेम की प्यास ने कवि की कृतियों में प्राण भर दिया है। प्रगतिवाद पर की हुई रचनाओं आधुनिक युग के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं। 'मधूलिका' और 'अपराजिता' इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। इनमें कवि का प्रेमी-हृदय जीवन-संघर्ष से व्यथित एवं विजयी होता हुआ आगे चला है। आकुल प्राणों की असह्य वेदना ने विरह के कितने दीपक निसृत किए हैं। वर्तमान जगत् की कठोरता, जीवन के सीमित बंधन तथा काल की विशेषता ने स्वप्नों का निर्माण किया है। प्रेम-क्षेत्र में नूतन आदर्श स्थापित करने की चेष्टा इन्होंने की है। कहीं जीवन से पूर्ण असंतोष दिखलाई पड़ता है, कहीं सौंदर्य की प्यास ने कवि को उन्मत्त कर दिया है।

'किरण वेला', 'करील', 'लाल चूनर' आदि रचनाओं के द्वारा कवि ने अपना क्रमिक विकास किया है। युग की समस्याएँ

तथा देश समाज की दशा का अंकन रचनाओं में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। कवि होने के अतिरिक्त अंचल कहानीकार तथा उपन्यासकार और लेखक भी हैं। 'तारे', 'ये वे,' 'बहुतेरे' उनके कहानी-संग्रह हैं और 'चढ़ती धूप' उपन्यास है। 'समाज और साहित्य' नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई है वह इनके दृष्टिकोण को निबन्धात्मक रूप देने में सफल हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंचल जी व्यथित एवं आकुल हृदयवाले कवि होते हुए भी जीवन की समस्याओं से घबड़ाते हुए नहीं पाए जाते।

सौंदर्य-पान की तीव्रता में कवि ने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

(१) ठहर जाओ घड़ी भर और तुमको देख लें आँखें,
अभी कुछ देर मेरे कान में गूँजे तुम्हारा स्वर।
बहे प्रति रोम से मेरे सरस उल्लास का निर्झर।
बुझा दिल का दिया शायद किरण सा खिल उठे जलकर।

(२) तुम्हारे रूप का सित आवरण कितना मुझे शीतल
तुम्हारे कंठ की लघु बंसरी जलधार सी चंचल
तुम्हारी चितवनों की छाँह मेरी आत्मा उज्वल
उलझती फड़फड़ाती प्राण-पक्षी की तरुण पाखें।

बाह्य सौंदर्य से प्रभावित कवि अपने भाव को व्यक्त कर रहा है। वस्तुतः उपर्युक्त छन्द उसके हृदय की कसक, मर्माहत-पीड़ा तथा जलन को व्यक्त कर रहा है। सच है जिसपर हृदय आकर्षित हो जाता है, उसके दर्शनों की चिर प्यास कभी बुझती ही नहीं। श्रीभारतेन्दु जी ने भी इसी प्रकार के भावव्यक्त किए हैं :—

पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना,
अखियाँ दुखिया नहीं मानती हैं।

प्रेम के द्वारा मानव सर्वत्र विश्व में एकता स्थापित करना

चाहता है। यदि वह प्रेम वासना से ऊपर उठ जाय तो उच्च स्तर पर आ जाय।

'करील' के पृष्ठों में कवि जीवन-पथसम्बन्धी कठिनाइयों व्यक्त करता हुआ कहता है :—

अब देर नहीं निशि ढलने में यह राह नहीं मेरी देखी
कुछ भय सा लगता चलने में जीवन से मुझको मोह नहीं
कब मैं मरने से घबड़ाता, पर पथ का एकाकीपन जैसे
मुझ को खाये जाता

लहरों में डूब रहा शशि विह्वल है सरिता की धारा
बादल का कोना उठा जगत में जाग उठा प्रभात तारा
है ज्ञान नहीं अगले पथ पर कितने गह्वर कितने भूधर
मानव की गति से वैर किये जिनका प्रति डग प्रत्येक शिखर।

अंचल की रचनाओं में छायावाद का छना हुआ रूप, प्रगतिवाद की लहर तथा हृदय की पुकार भरी पड़ी है। तरुण कवियों में कविता द्वारा तरुणाई का आवेश प्रकट करने में आप विशेष सफल हुए हैं। साहित्य से आपको विशेष आशा है।

# छायावाद

आत्मा का बिम्ब जब बुद्धि में पड़ने लगता है तब बुद्धि निर्मल और तीक्ष्ण हो जाती है। विचारों में विलक्षणता और कथन में गंभीरता लक्षित होने लगती है। इस प्रकार का कार्य तभी होता जब बुद्धि आत्मा के साथ तदाकार होकर कार्य करती है। कथन में स्पष्टता, तीव्रानुभूति और वेग होता है साथ ही भाषा भावों की सहचरी ही बनकर आती है। वहाँ विचारधारा कृत्रिमता के बंधनों से छूट एक प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत रहती है। भावों के ये उद्‌गार रहस्योद्‌घाटन करनेवाले होने के कारण रहस्यवाद के अंतर्गत आवेंगे। पर जब कवि पूर्व जन्मकृत पुण्य के कारण प्रतिभासम्पन्न तो होता है पर अनुभूति के क्षेत्र में बालक ही रहता है तब उसके भाव भाषा और अलंकारों से युक्त होकर चकाचौंध करने वाले तो होते हैं पर रसिक पाठकों के हृदयों में कालान्तर-स्थायी रमणीय भाव उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं। अतः कहना पड़ेगा कि कवि को भाव, छायास्वरूप ही प्राप्त हो सके हैं। चाहे इस छाया का प्रयोग परम पुरुष के छाया-रूप संसार से लें या कवि के हृदय से। इस प्रकार का कवि लौकिक अनुभूति रखता है और अभिव्यंजन-पद्धति को लक्ष्य मानकर लौकिक या लौकिक पक्ष पर ही आश्रित अलौकिक भावों का चित्रण करता है। इस प्रकार की रचना में कल्पना की तीव्र ऊँची उड़ान होती है। विचित्र भावानुभूतियों की एक नुमाइश देखने को मिलती है। भावानुभूति का क्षेत्र भी अस्वाभाविक एवं हृदयानुभूति से अलग होता है।

यदि रहस्यवाद के अंर्तभूत योरोपीय रचनाओं को ही, जो छाया कही जाती थीं, भारतीय छायावाद की पृष्ठ-भूमि कहा जाय

तो संभवतः ठीक न होगा। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल ने बँगला-साहित्य के छायावाद तथा हिन्दी-साहित्य में छायावाद का स्रोत योरोपीय साहित्य बताया है वस्तुतः यों तो भावों का आदान-प्रदान कहाँ नहीं होता पर कवि या लेखक प्रत्येक काल में किसी भी चिरन्तन सत्य की खोज स्वतः कर सकता है। हिन्दी-साहित्य ने रवीन्द्र के प्रभाव में आकर अनुकरण के आधार पर कृतियाँ प्रदान कीं। हिन्दी-साहित्य में छायावाद बँगला से आया या उसे स्वतः प्रेरणा मिली ? 'प्रसाद' की कृतियों को देखने से पता चलता है कि उनका छायावाद प्रस्तुत के स्थल पर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चला है। महादेवी वर्मा छायावाद के मूल स्वरूप को लेकर चली हैं पर उनकी भी रचनाएँ पूर्ण रूप से अदृश्य सत्ता की छाया-रूप नहीं हो सकी हैं संभव है आगे चलकर परिवर्तन हो।

भावानुभूति से शून्य कवि चित्रभाषा शैली को ही अपना सकता है। उसमें वासनात्मक प्रणयोद्गार, वेदना-विवृत्ति, सौन्दर्य-संघटन, मधुचर्या और अतृप्तिव्यंजना के ही छींटे मिलेंगे ! द्वन्द्व, अन्तर्द्वन्द्व, सुख-दुःख के भाव भी जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर होंगे। वैलक्षण्य लाने के लिये लाक्षणिक पदावलियाँ व्यवहृत होती हैं। लाक्षणिक वैचित्र्य लाने के लिये श्रुतिरंजक या नादानुकृत पदावली गुम्फित की जाती है।

'छायावाद' की प्रतीक-पद्धति के अन्तर्गत वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पद प्रयुक्त होते हैं तथा प्रस्तुत के स्थल पर अप्रस्तुत। सारांश यह कि कवि अप्रस्तुत विधानों के प्रयोगों द्वारा अन्योक्ति-पद्धति ग्रहण करता है। छायावाद के अन्तर्गत साम्य ग्रहण की इस प्रणाली का एक विशिष्ट स्थान है। साम्य तीन प्रकार के होते हैं; सादृश्य, ( रूप या आकार का साम्य ), साधर्म्य ( गुण या क्रिया का साम्य ) और शब्द-साम्य ( दो भिन्न वस्तुओं का केवल एक नाम होना ) शब्द-साम्य में श्लेषों की भरमार रहती है।

'छायावादी' कवि सादृश्य, साम्य या साधर्म्म के भीतर के प्रभावसाम्य को ही प्रधान मानकर चले हैं। कहीं-कहीं साधर्म्म या सादृश्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव-साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। जैसे सुख आनंद के लिये उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के लिये मधुप; मानसिक आकुलता के स्थान पर झंझा, सुन्दर भावों के लिये वीणा की ध्वनि, आभ्यंतर प्रभाव-साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।

हिन्दी-काव्य में पहले से अन्योक्तिपद्धति का प्रचार रहा है पर लाक्षणिकता का एक प्रकार से अभाव ही रहा। केवल कुछ रूढ़ि लक्षणाएँ मुहावरों के रूपमें कहीं कहीं मिल जाती थीं। व्रज-भाषा के कवियों में लाक्षणिकता का प्रयोग घनानंद ने किया है। आधुनिकाल में पंतजी के 'पल्लव' में भी लाक्षणिकता का प्रयोग बहुलता से मिलता है।

धूल की ढेरी में अनजान-छिपे हैं मेरे मधुमय गान ( धूलकी ढेरी—असुन्दर वस्तुएँ ) मधुमय ( गान के सरसविषय ) चाँदनी का स्वभाव में वास विचारों में बच्चों की सास ( चाँदनी मृदुलता या शीतलता के अर्थ में ) बच्चों की साँस ( भोलापन )।

'पल्लव' में प्रतिक्रिया के आवेश के कारण वैचित्र्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक थी।

'प्रसाद' की रचनाओं में शब्दों के लाक्षाणिक वैचित्र्य की प्रवृत्ति उतनी नहीं है जितनी साम्य की दूरारूढ़ भावना की। उनके उपलक्षण सामान्य अनुभूति के मेल में होते थे।

झंझा झकोर गर्जन है बिजली है नीरद माला। पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला। ( झंझा झकोर क्षोभ आकुलता ) ( गर्जन

वेदना या तड़प ) ( बिजली = चमक या टीस ( नीरद माला–अन्धकार ) काँटों ने भी पहने मोती । ( काटों-कठोर हृदय । मोती–अश्रु । )

अप्रस्तुत का विधान एकदेशीय होता है । सूक्ष्म और धुँधले पर मर्मव्यंजक साम्य का धुँधला आधार निम्न अवतरणों से स्पष्ट हो जायेगा ।

( १ ) उठ उठ री लघु लघु लोल लहर ! करुणा की नव अँगड़ाई सी, मलयानिल की परछांई सी ।

इस सूखे तट पर छिटक छहर ।

( लहर—सरस कोमल भाव, सूखा तट शुष्क जीवन )

( २ ) गिरिवर के उर से उठ उठ कर उच्चाकांक्षाओं से तरुवर हैं झाँक रहे नीरव नभ पर—

उठे हुए पेड़ों का साम्य मनुष्य-हृदय की उन उच्च आकांक्षाओं से है जो लोक के परे जाती हैं ।

छायावाद की रचनाएँ गीतों के रूपमें ही, अधिकतर होती हैं । इसमे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है । जहाँ यह अन्विति होती है वहाँ सम्पूर्ण रचना अन्योक्ति-पद्धति पर की जाती है । इस प्रकार साम्य-भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं । यह साम्य-भावना हमारे हृदय का प्रसार करने वाली, शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ संबंध की धारणा बँधानेवाली अत्यन्त अपेक्षित भूमि है, इसमें सन्देह नहीं । पर यह सच्चा मार्मिक प्रभाव नहीं उत्पन्न करती है । जहाँ यह प्राकृतिक वस्तु या व्यापार से प्राप्त सच्चे आभास के आधार पर खड़ी होती है प्रकृति अपने अनंत रूपों और व्यापारों के द्वारा अनेक बातों की गूढ़ या अगूढ़ व्यंजना करती रहती है । इस व्यंजना को न परखकर या न ग्रहण करके जो साम्य-विधान होगा वह मनमाना आरोपमात्र होगा । इस अनन्त विश्व-महाकाव्य की व्यंजनाओं की परख के साथ जो साम्य-विधान होता है वही मार्मिक और उद्बोधक होता है । जैसे—

मेरा अनुराग फैलने दो नभ के अभिनव कलरव में, आकर सूनेपन के तम में, बन किरन कभी आ जाना।

मनमाने आरोप, जिनका विधान प्रकृति के संकेत पर नहीं होता, हृदय के मर्मस्थल को स्पर्श नहीं करते, केवल कौतूहल-मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। छायावाद की कविता पर कल्पना-वाद, कलावाद, अभिव्यंजनावाद आदि का प्रभाव भी अज्ञात या ज्ञात रूप में पड़ रहा है। इससे बहुत से अप्रस्तुतविधान मनमाने आरोप के रूपमें ही सामने आते हैं। प्रकृति के वस्तुव्यापारों पर मानुषी वृत्तियों के आरोप का बहुत अधिक चलन हो जाने से कहीं कहीं ये आरोप वस्तु-व्यापारों की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं। जैसे—

जगके दुख दैन्यशयन पर यह रुग्णा जीवनबाला।
पीली पड़, निर्बल, कोमल कृश देहलता कुम्हलाई॥
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई।

प्रकृति के नाना व्यापारों का चित्रण स्त्री-सौन्दर्य के ही आधार पर करने से काव्य में संकीर्णता आ जाती है। इससे प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो जाती है और काव्य वाग्विलास ही कहा जा सकता है। कवि का काम नवीन नामों के आधार पर नूतन सृष्टि ही नहीं करना है प्रकृति के सच्चे की स्वरूप की व्यंजना जब तक वह नहीं करता उसकी कृति अपूर्ण तथा खिलवाड़मात्र ही कही जा सकती है। कहीं कहीं गृहीत अर्थ को भी कवि इस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण स्पष्ट नहीं कर पाता। जैसे:—

निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप जाओगे।
इतना सजग कुतूहल ठहरो, यह न कभी बन पाओगे॥
आह चूमलूँ जिन चरणों को चाँप चाँप कर उन्हें नहीं।
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा सी वह उभर बही॥

यहाँ कवि ने उस प्रियतम के छिपकर दबे पाँव आने की बात कही है जिसके चरण इतने सुकुमार हैं कि जब आहट न सुनाई पड़ने के लिए वे उन्हें बहुत दबा-दबा कर रखते हैं, तब एँड़ियों में ऊपर की ओर लाली दौड़ जाती है। वही ललाई उषा की ललाई के रूप में झलकती है।

अभिव्यंजना की पद्धति या काव्य-शैली पर ही प्रधान लक्ष्य रहने से छायावाद के भीतर उसका बहुत ही रमणीय विकास हुआ है। साम्यभावना और लक्षणाशक्ति के बल पर किस प्रकार काव्योपयुक्त चित्रमयी भाषा की ओर सामान्यतः झुकाव है इसे भी दिखलाया गया है। साम्य पहले उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक ऐसे अलंकारों के बड़े बड़े साँचों के भीतर ही फैलाकर दिखाया जाता था। वह अब प्रायः थोड़े में या तो लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा झलका दिया जाता है अथवा कुछ प्रच्छन्न रूपकों में प्रतीयमान रहता है। इसी प्रकार किसी तथ्य का पूरे प्रसंग के लिये दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि का सहारा न लेकर अब अन्योक्ति-पद्धति ही अधिकतर चलती है। यह पद्धति अत्यन्त परिष्कृत है।

छायावादी कवि सीमित क्षेत्र से निकल कर धीरे धीरे अनन्त-क्षेत्र में भी आये हैं। जगत और जीवन की प्रत्यक्षता का उन्हें शायद ज्ञान हो गया है। वस्तुतः जीवन की मार्मिकता का साक्षात्कार ही काव्य की सुन्दरता बढ़ाता है, भले ही उसमें काव्यगत चपलता एवं भाव-भंगिमा का अभाव हो। प्रसादजी ने 'कामायनी' में नर-जीवन के विकास में भिन्न-भिन्न भावात्मिका वृत्तियों का योग और संघर्ष बड़ी प्रगल्भ और रमणीय कल्पना द्वारा चित्रित करके मानवता का रसात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार निराला जी ने 'तुलसीदास' के मानस-विकास का बड़ा ही दिव्य और विशाल रंगीन चित्र चित्रित किया है।

वस्तुतः छायावाद भावों के प्रदर्शन करने की वह रहस्यात्मक शैली है जहाँ सरलता के स्थान में क्लिष्टता, सादगी के स्थान में रंगीनी, भोलेपन के स्थान में चपलता तथा स्वाभाविक सौन्दर्य के स्थान में कृत्रिमता को विशेष स्थान दिया गया है।

नोट—उक्त निबंध पं० रामचन्द्रजी शुक्ल के हिन्दी-साहित्य के इतिहास के आधार पर है।

# रहस्यवाद

## रहस्यवाद क्या है ?

उद्धव—रहस्यवाद का जन्म हमारे यहाँ के दार्शनिकों के प्रसिद्ध प्रतिबिम्बवाद से हुआ है। इस 'वाद' का कहना है कि यह समग्र दृश्यजगत् उस परब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब या छाया है। यही वाद भारत से पश्चिम की ओर बढ़ा और फ़ारस में पहुँचकर इसने 'सूफी' सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया। वही परम्परा मुसलमानों के साथ पुनः भारत में आई; जिनमें कुछ की साहित्यिक देन हिन्दी-साहित्य को प्रतीकवाद या अन्योक्तिवाद के रूप में प्राप्त हुई। फ़ारस से पश्चिम यूरोप में जाकर इस वाद ने मिस्टिसिज्म ( Mysticism ) का रूप पाया। साहित्य या काव्य-क्षेत्र में इसका प्रभाव वहाँ सबसे पहले विलियम ब्लैक (Wiliam Black ) की कविता पर पड़ा और उसका सर्वाधिक विकास यीट्स ( W. B. yeats ) की कविता में दिखाई दिया। रहस्यवाद पहले धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित था बाद में इसी को काव्यात्मक रूप दिया गया।

## क्या है ?

जब कवि दृश्य जगत् के रूप-विधानों को लेकर अन्योक्ति अथवा साध्यवसान रूपक द्वारा परोक्ष की सत्ता की ओर सङ्केत करता है तब हम उसकी रचना में रहस्यवाद पाते हैं। प्राचीन और आधुनिक हिन्दी-साहित्य के रहस्यवादी कवियों में अन्तर यह है कि सूफी रहस्यवादी सन्त लौकिक कार्य-व्यापार के अप्रस्तुत विधान द्वारा परोक्ष की सत्ता का आभास देते थे और आज का रहस्यवादी प्रकृति के क्षेत्र में होनेवाले या दृष्टि आनेवाले व्यापारों

में उस परोक्षसत्ता का आभास पाता है या उसकी ओर सङ्केत करता है। अर्थात् आज के रहस्यवादी के काव्य का माध्यम प्रकृति है, मानव-व्यापार नहीं।

थोड़े में हम रहस्यवाद की परिभाषा को दे सकते हैं कि जहाँ कवि रूप से भाव की ओर जाकर वहीं आसीन हो जाता है वहाँ हमें रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। इस प्रकार का शुद्ध रहस्यवाद हमें आज हिन्दी-क्षेत्र में श्रीमती महादेवी वर्मा की रचनाओं में मिलता है।

## प्रगतिवाद ( Progressivism )

छायावाद और रहस्यवाद दोनों ही कवियों की पलायनवादिता के द्योतक थे। प्रगतिवाद ने जीवन से होड़ लेने का सन्देश दिया। यथार्थ की उपेक्षा जो पहले की कविता में थी, यहाँ वह नहीं मिल सकती। आज सबसे बड़ी समस्या जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की है। आज का समाज प्रमुख रूप में दो भागों में विभक्त हो गया है, धनिक वर्ग और सर्वहारा वर्ग। एक वर्ग को सारी वस्तुएँ सुलभ रहती हैं जब कि सर्वहारा वर्ग की कोई भी आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती। उसी सर्वहारा या श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखानेवाली और धनिकवर्ग के प्रति घृणा और विद्रोह को जन्म देनेवाली कविता का नाम प्रगतिवादी रचना है।

आज इसी प्रकार की कविता की ओर कवियों का विशेष झुकाव है। इसी में लोग सच्चे जीवन के तत्त्व देख रहे हैं और इसी में लोक-मंगल भी दिखाई पड़ रहा है। यह हमारे साहित्य का अति आधुनिक वाद है। किन्तु अभी परिपक्वता नहीं दिखाई पड़ रही है।

# हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवाद

कविता युग की मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होती है। कवि जिस युग में जन्म ग्रहण करता है, उसी की समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों की छाप उसके हृदय पर पड़ती है, और तद-नुकूल ही उसके चिन्तन की सरणि भी निर्मित होती है। कवि भी एक सामाजिक मनुष्य ही होता है, समाज से पृथक् होकर वह अपना अस्तित्व ही किस प्रकार सुरक्षित रख सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि उदात्त कवि लोक-हित से प्रेरित होकर अपनी लेखनी उठाता है। उसकी व्यक्ति-व्यञ्जना में लोक-व्यञ्जना अन्तर्निहित होती है। अतः वह जिन कृतियों को लोक के समक्ष प्रस्तुत करता है, उनके द्वारा अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके जन-समूह अपनी हित-बुद्धि से प्रेरित होकर अपने अभ्युदय के पथ पर अग्रसर होता है। कविता के द्वारा जनता के हृदय का परिष्कार होता है, उसे नवीन चेतना प्राप्त होती है। सामान्य कवि की वाणी अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख की अभिव्यक्ति करती है, उसके अपने सुख-दुःख में तत्कालीन सम्पूर्ण समाज का सुख-दुःख ध्वनित होता है। उसकी रुचि में उस वर्ग या समाज के उस अंग की रुचि की झाँकी मिलती है, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि उसकी दृष्टि में अपनी सीमा के बाहर पहुँचने की क्षमता ही नहीं रहती। अतः किसी कालविशेष के कवियों की प्रमुख मनोवृत्ति को देखकर यह कहना जनता को धोखा देना होगा कि उस काल की सामान्य जन-रुचि ही ऐसी थी। जैसे, सामान्य दृष्टि से यदि देखें तो पता चलेगा कि शृङ्गारिक रचनाओं का प्राचुर्य उस समय होता है जब देश समृद्ध रहता है, उसे जीवन की बाह्य आवश्यकताओं की चिन्ता नहीं रहती, जीवन से सम्बद्ध कोई बाह्य-संघर्ष उसके सम्मुख नहीं

रहता। कालिदास की शृङ्गारिक रचनाओं को देखते हुए हमारा यह विचार किसी हद तक गलत नहीं कहा जा सकता। किन्तु हिन्दी की रीतिकालीन शृङ्गारिक रचनाओं का बाहुल्य हमें यही बतलाता है कि वे रचनाएँ लोक का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, उन कवियों की वाणी द्वारा लोक की अन्तर्वाणी मुखरित नहीं होती। वे केवल उच्च वर्ग और उच्च मध्य-वर्ग ( higher middle class) की ही रुचि की द्योतिका हैं, क्योंकि समाज के इन वर्गों को भोजन और वस्त्र की चिन्ता से मुक्ति मिल चुकी थी, अतएव 'अकर्मण्य व्यक्ति का मस्तिष्क शैतान का कारखाना है' इस तथ्य के अनुसार उन्हें और काम ही कौन-सा था? किन्तु बहुसंख्यक जनता की दशा की उपेक्षा भी कब तक की जा सकती है! समय ने करवट बदली। प्रकाश की किरणें समाज के इस भाग पर भी पड़ीं, जो अब तक उपेक्षित अवस्था में एक ओर पड़ा था। चेतना की आँखों ने अपने ही उस वीभत्स अंग की ओर देखा जो नाश के निकट पहुँच चुका था और जिसके बिना शरीर के पंगु हो जाने का निश्चित भय था।

स्वच्छन्द कवि की दृष्टि पहले पहल सामाजिक अत्याचारों की ओर गई, जिसका कि वह व्यक्ति रूप में शिकार हो रहा था अर्थात् व्यक्ति ने अपनी दशा देखी। समाज के ऊपर जो बाह्य अत्याचार राजनीतिक और आर्थिक हो रहे थे, उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। 'भारतेन्दु' एक बार इतना ही कहकर "पै धन बिदेश चलि जात इहै जाति ख्वारी" मौन धारण कर लिया था। उसका व्यापक प्रकाश लोक को नहीं मिल पाया, चिनगारी चमकी और वहीं बुझ गई। 'भारत-भारती' ने जनता को पहले पहल उद्‌बुद्ध करने का प्रयास अवश्य किया था, पर उसकी भी दृष्टि समाज के अधःपात का रेखा-चित्र ही प्रस्तुत करने की ओर रही। छायावाद के कवि की वेदना, जिसमें निराशा वास कर रही थी, कवि के व्यक्तिगत प्रेम की असफलता द्वारा ही उद्‌भूत थी और

उस असफलता का सारा दायित्व कवि नियति को सौंपकर चुप-चाप रोकर शान्त हो जाता रहा। कभी कभी आर्थिक दुरवस्था की ओर भी उसकी दृष्टि गई पर उसका मूल कारण वह नहीं खोज सका था, और तब संसार के अनिवार्य परिवर्तन को सामने रखकर उसने सन्तोष कर लिया था—

"कहाँ गया वह पुण्य-पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?

भूतियों का दिगन्त छवि जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल ?

× × ×

हाय ! सब मिथ्या बात !—
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी-साँस !
·····जीवन है भार !"

*परिवर्तन—'पन्त'।*

मानव-जगत् का कुत्सित रूप देखकर कवि ने अपनी आँखें फेर लीं और वह अपना मन भुलाने लगा प्रकृति के घर में भागकर। कई ने तो असमय में ही इस संसार से विरक्ति ले ली और उस पार अज्ञात प्रियतम के पास जाने के लिए नाना रूपों में अभिसार करने लगे। पर 'कुछ न करने से कुछ बुरा ही काम करना अच्छा है' इस सिद्धांतानुसार हमें छायावाद-युग की कविताओं का भी आभार स्वीकार करना ही पड़ेगा। कम से कम इतना श्रेय तो इनका मानना ही पड़ेगा कि इन्होंने कविता को पुराने बन्धन से, जो जीर्ण हो गए थे, और इनके छूते ही टूट गए, अलग किया और इस कार्य को करके इन्हें गर्व का अनुभव भी हुआ। अब कवि के व्यक्तित्व ने जो कभी का अन्तर्हित हो चुका था, अपनी पृथक् सत्ता का आभास दिया, पर यह भी सच है कि व्यक्ति

से बाहर मानव-जगत् में इनकी प्रतिभा को खूराक नहीं मिलती थी। एकाध ने ही अपनी दृष्टि 'विधवा' और 'भिक्षुक' की ओर भी दौड़ाई और उनके प्रति सहानुभूति भी प्रकट की, पर यह कार्य, 'पन्थानं गच्छँस्तृणं स्पृशति' के ही समान था, पथ वही था। इन्होंने पूर्व और पश्चिम से बहुत-सी बातें सीखीं भी, अपनाईं भी, पर उससे अधिक ग्रहण करने की सामर्थ्य भी नहीं थी। पश्चिम के 'कला कला के लिए' ( art for art's sake ) की मनोहारी उक्ति ने भी कवियों को गुमराह करने में काफी मदद दी। कविता को लोग कविता न रहने देकर कला के आकर्षक साँचे में ढालने लगे। कविता में चमत्कार लाने की भरपूर कोशिश की गई। कुछ ने फारसी कला का पल्ला पकड़ा और कुछ ने यूरोपीय। एकाध ने दुःख भुलाने के लिए मधुपान का भी सहारा लिया और इसे ही सब रोगों की श्रेष्ठ ओषधि घोषित किया।

आज यातायात और विचार-विनिमय के साधन सुलभ होने के कारण संसार का प्रत्येक देश एक दूसरे का पड़ोसी हो गया है। अतः पड़ोस की बात पड़ोस तक पहुँचने में देर ही कितनी लग सकती है। भारत का अब तक दबा हुआ शिक्षित समुदाय पश्चिम के विचारों को बिना परीक्षण किए अपनाने लगा, इसलिए कि जब यह चीज वहाँ लाभकारी हो सकती है तब यहाँ भी अवश्य ही होगी। इसी बीच पश्चिम के मजदूर-आन्दोलन का कोलाहल यहाँ भी लोगों के कानों में पड़ा। यहाँ पर जो कुछ लोग सुनते थे, उसी दिशा में चल पड़ते थे, आत्म-चिन्तन के अभाववश। इसलिए यहाँ भी मजदूरों की सहानुभूति में कविताएँ होने लगीं। ये काव्य के आलम्बन मजदूर या श्रमिक कल-कारखानों के थे, भारत के खेतों में लहू-पसीना एक करनेवाले नहीं। आन्दोलन वही सफल हो सकता है, जिसे समूह का समर्थन और बल प्राप्त हो, क्योंकि संगठित शक्ति विशेष क्षमताशालिनी होती है। भारत एक कृषिप्रधान देश है, जिसकी अस्सी प्रतिशत से अधिक जनता

खेती के द्वारा जीवन-यापन करती है। इन खेतिहरों की दशा की ओर आन्दोलन के सञ्चालकों का ध्यान इसलिए नहीं जाता कि वे दूर-दूर गाँवों में बिखरे हुए हैं उनकी अलग-अलग गृहस्थी है, अतः उनके द्वारा सामूहिक प्रदर्शन का कार्य शासन के सूत्रधारों के सम्मुख, जो नगरों में ही रहते हैं नहीं किया जा सकता। कल-कारखाने प्रायः नगरों में ही होते हैं और वहाँ मजदूर भी सामूहिक रूप में रहते हैं, अतः उनको हाथ में करने से कोई भी आन्दोलन शीघ्र सफल बनाया जा सकता है। राजनीति की इस चाल का कवियों द्वारा भी अवलम्बन लिया गया। मार्क्स के नवीन विचार, जो पश्चिम में सफलता प्राप्त करते जा रहे थे और जो गरीब जनता के भाग्य-निर्माता थे, हमारे यहाँ के नूतन विचारकों पर प्रभाव डालने में सफल हुए। हिन्दी-साहित्य के अन्य क्षेत्रों के साथ ही काव्य-क्षेत्र पर मार्क्स का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। मार्क्स के विचारों को लेकर चलनेवाली रचनाएँ 'प्रगतिवादी' नाम से पुकारी जाने लगीं। अर्थात् जो कविताएँ गरीब और श्रमिक के जीवन की यथार्थता का चित्रण करने के साथ पूँजीवाद या रूढ़िवाद का तीव्र स्वर में विरोध करती हैं, जो सामूहिक जीवन-विकास का पथ प्रशस्त करती है, 'प्रगतिवादी' रचनाएँ हैं। प्रगतिशील रचना का यह स्पष्ट उद्देश्य है कि वह जनता में वर्तमान स्थिति के प्रति, वर्तमान आर्थिक-व्यवस्था के प्रति सामूहिक असन्तोष प्रकट करे, क्योंकि इसके बिना उसकी दशा का सुधार ही नहीं हो सकता, वह अपना जन्म-सिद्ध अधिकार ही नहीं प्राप्त कर सकती। अतः लोक-मंगल की दृष्टि से इसका बहुत बड़ा महत्व है। प्रगतिशील यह कहता है कि जनता की अन्न-वस्त्र की समस्या सबसे प्रमुख समस्या है। क्षमा, दया, उदारता, सन्तोष और अहिंसा का उपदेश करना, जनता का अहित करके पूँजीवाद को प्रश्रय देना है। इस दृष्टि से आज के प्रगतिशील-युग से पूर्व भारतीय-साहित्य में न तो प्रगतिशील कवि हुए और न प्रगतिशील रचनाएँ।

समाज में पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आजतक कभी जन-आन्दोलन हुए ही नहीं, और इसलिए प्रगतिवादी साहित्य का भी सर्जन नहीं हुआ। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का क्रम आजतक चलता ही रहा। अस्तु, आज का प्रगतिशील कवि समाज में ऐसी व्यवस्था को जन्म देना चाहता है जिसमें जनता के जीवन का प्रश्न एक व्यक्तिविशेष के हाथ में सीमित न होकर स्वयं उसी जनता के ही हाथ में रहे। आज की क्रांति का अग्रदूत श्रमिक ही होगा, जो युग-युग से पीड़ित रहा है –

"भूख, प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहती,—कैसी इस युग की संस्कृति!
वह पशु से जघन्य मानव—मानव की है कृति!
जिसके श्रम से सिंची समृद्धों की पृथु सम्पति।

× × × ×

लोक-क्रांति का अग्रदूत, वरवीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित!"

आज के प्रगतिशील कवि की दृष्टि यही है। आजतक की सभ्यता और संस्कृति पूँजीवाद, सम्राज्यवाद की देन है, इसे बदलना होगा नई सभ्यता और नई संस्कृति के द्वारा, जिसकी आधार-शिला होगी 'श्रम'।

हिन्दी-काव्य-जगत् में छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद ने इतने कम समय में जन्म लिए हैं कि इनकी जड़ें अभी तक मानव-मन की गहराई तक नहीं पहुँच सकी हैं। छायावाद और रहस्यवाद अब प्रायः अपने दम तोड़ चुके हैं, यदि दो एक कवि उस रास्ते पर चलते भी रहे, तो ओस की बूँदों से काटी डाली पुनः हरी-भरी नहीं की जा सकती। प्रारम्भ में प्रगतिवादी विचार-धारा ने जिनके मस्तिष्क पर प्रभाव डाला था, उनमें कुछ तो निरे छिछले ही सिद्ध हुए और वे पथ-भ्रष्ट भी हो गए। उन्होंने पुनः

रूढ़ि-समर्थन का पथ पकड़ा, कुछ परिमार्जन के साथ। इधर नई पीढ़ी के कुछ कवि अवश्य जन-गीत गा रहे हैं, उनका स्वर भी जोरदार है, उनकी वाणी में बल है। इधर अन्ताराष्ट्रिय परिस्थितियाँ भी जनता का साथ दे रही हैं, जिससे जनता को बल मिल रहा है। अतः इन परिस्थितियों से प्रगतिशील कवि भी शक्ति-संग्रह करते रहेंगे और उनके भावों में भी समयानुकूल गहराई आती जायगी। पुराने माधुर्य-अभ्यस्त कुछ लोगों को ये स्वर भले ही अच्छे न लगें पर जनता को ये प्रिय लगेंगे ही। इस नवीन प्रकाश में इतना बल तो है ही कि इसने पुराने गायकों की दृष्टि को बदला और छायावाद के प्रधान स्तम्भों ने भी मजदूर-क्रांति के गीत गाए ही। हाँ, यह अवश्य है कि इस मार्ग के प्रशस्त होने में थोड़ा समय लगेगा। आज की प्रगतिवादी रचनाओं में व्यंग्य ( satire ) की प्रधानता होती है, जो अपने विरोधियों पर तीखा वार करता दिखाई पड़ता है। इस नूतन धारा का विरोध करके रूढ़िवादी विचार-धारा सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगी, इतना निश्चित है।

इतने 'वादों' के परिवर्तन जो हिन्दी-काव्य-कानन में हुए, ये भिन्न-भिन्न ऋतुओं की भाँति, जीर्णावरण को हटाकर समय-क्षम परिधान भी इसे प्रदान करते रहे। इससे हिन्दी-कविता को बल ही मिला! आज खड़ी बोली का काव्य काफी सशक्त है, इसकी भाषा भावाभिव्यक्ति की पूरी पूरी क्षमता भी प्राप्त कर चुकी है, अब पहले की-सी कमजोरी इसमें नहीं रह गई। हिन्दी-काव्य का भविष्य उज्ज्वल है। आशा है इसके द्वारा देश की जनता के जीवन का उत्तरोत्तर उत्कर्ष और विकास होता जाएगा।

# छठाँ अध्याय

## पिङ्गल

या

## छन्दः शास्त्र

# छन्दः शास्त्र अथवा पद्य-रचना

छन्द उस वाक्य-रचना को कहते हैं जो अक्षरों अथवा मात्राओं की गणना के विचार से की जाय। इसी को पद्य भी कहते हैं। 'छन्द' शब्द का वाच्यार्थ होता है 'आच्छादन', इसमें भाव या विचार सुरक्षित होते हैं।

जब लेखक अपने मनोगत भावों अथवा विचारों को गद्य द्वारा प्रकट न करके उसे वर्ण अथवा मात्राओं के नियमित बन्धनों द्वारा उपस्थित करता है तब उसकी रचना पद्य-बद्ध कही जाती है। इस प्रकार की रचना को याद करने में विशेष सुविधा होती है। इसीलिए हम देखते हैं कि विश्व की सभी भाषाओं का प्राचीनतम वाङ्मय पद्य-बद्ध ही है। पहले अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम मनुष्य ने इसी को बनाया। हमारे यहाँ के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद हैं, इनमें भी छन्दों का ही प्रयोग हुआ है, इसीलिए वेद को भी छन्द कहा गया है। आदिम युग में जब काग़ज़ और मुद्रण-कला दोनों का ही सर्वथा अभाव था, बल्कि जब मनुष्य ने लिपि का भी निर्माण नहीं किया था तब वह अपने विचार और भाव पद्य में ही रखता था क्योंकि इस उपाय द्वारा वह अपने विचारों और भावों को अपनी भावी सन्तानों के लिए उनकी स्मृति में सुरक्षित रूप में छोड़ जाता था। ज्यों-ज्यों मनुष्य आगे बढ़ता गया और उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं त्यों-यों वह नूतन निर्माण करने में भी अग्रसर होता गया। उसने लिपि का भी निर्माण किया और इस प्रकार लेखन-कला का जन्म हुआ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्मरण की सुकरता को ही ध्यान में रखकर पहले की सारी रचनाएँ पद्य-बद्ध ही रही हैं। किन्तु

आजकल पद्य-रचना केवल काव्य के ही बाँटे पड़ गई है, वह इसलिए कि अब मुद्रण-कला के विकास के कारण मनुष्य अपने विचारों में गद्य में प्रकट करके ग्रन्थों में छोड़ जाता है और वे ग्रन्थ सर्वत्र सुलभ होने के कारण लोग उन्हें स्मरण रखना आवश्यक नहीं समझते। हम सूत्र-रूप में यों कह सकते हैं कि पहले विद्या मुखस्थ रहती थी और अब वह विशेषतया पुस्तकस्थ रहने लगी है। आज का युग भाव-युग नहीं अपितु बुद्धि-युग या विज्ञान-युग हो गया है। इस विज्ञान-युग में गद्य का ही प्राधान्य हो गया है क्योंकि पद्य की अपेक्षा गद्य में बौद्धिक विषय विशेष सुगमता और यथोचित व्यवस्था के साथ अभिव्यक्ति पा सकते हैं। स्मृति-सौकर्य की ही दृष्टि से हमारे यहाँ गणित और आयुर्वेद-शास्त्र जैसे वैज्ञानिक विषय भी पद्य-बद्ध ही रहे। अब पद्य केवल काव्य-रचना के ही हाथों सौंप दिया गया है और आज बुद्धि भावों पर इस प्रकार विजयिनी हो गई है कि अब काव्य के लिए भी पद्य के उपयोग का विरोध होने लगा है, जिसके फल-स्वरूप अर्द्ध-पद्य और अर्द्ध-गद्य के संयोग से रबर छन्द, केंचुवा छन्द अथवा मुक्त-छन्द की सृष्टि हो गई है। अतः जो लोग पद्य-बद्ध रचना करने में असमर्थ हैं वे भी इन मुक्त-छन्दों के आश्रय से कवि होने का दावा करने लगे हैं।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि पहले गद्य-बद्ध काव्य रचा ही नहीं गया, रचे गये अवश्य और अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के काव्य रचे गए, पर वह गद्य और पद्य के अर्द्ध-नारीश्वर स्वरूप में नहीं, यह तो आज के युग की देन है। अस्तु, अब मैं छन्दोरचना के विभिन्न प्रकारों और उनके भेदोपभेद के स्वरूप उपस्थित करूँगा जिनका ज्ञान प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के लिए अनिवार्य है।

## छन्दःशास्त्र की कुछ ज्ञातव्य बा

किसी भी पद्य की रचना में मात्रा अथवा वर्णों की गणना का नियम होता है। इसके ज्ञान के लिए कुछ विशेष बातों का जानना आवश्यक है कि यह गणना किस प्रकार होती है। मुख्य रूप में छन्द दो प्रकार के होते हैं, (१) मात्रिक और (२) वर्णिक।

**मात्रिक छन्द**—जिन छन्दों में मात्राओं की गणना का विचार होता है उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं।

**वर्णिक छन्द या वृत्त**—जिन छन्दों में केवल वर्णों अथवा अक्षरों की गणना का विचार होता हैं उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं।

**गुरुवर्ण**—प्रत्येक गुरु वर्ण में दो मात्राएँ होती हैं। दीर्घ स्वर (जैसे; आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः), और संयुक्ताक्षर के पहले के वर्ण तथा विकल्प से पद के अन्त के वर्ण गुरु होते हैं। इसका चिह्न 'ऽ' इस प्रकार का माना जाता है।

**लघुवर्ण**—प्रत्येक लघु वर्ण में केवल एक ही मात्रा होती है। ह्रस्व-स्वर अथवा ह्रस्व स्वर से युक्त वर्ण लघु माना जाता है। इसका चिह्न '।' इस प्रकार की एक सीधी रेखा मानी गई है।

## गण विचार

मात्राओं या वर्णों के निश्चित समूह का ही नाम 'गण' है।

वर्णिक वृत्तों के ज्ञान के लिए गणों का जानना अनिवार्य होता है। ये आठ प्रकार के होते हैं। पिङ्गल-शास्त्र में इन गणों के स्वरूप-भेद के साथ ही साथ इनके भिन्न-भिन्न देवता और उनके भिन्न-भिन्न फल कहे गए हैं।

**गणों के प्रकार**—गण आठ प्रकार के होते हैं। निम्नलि-

खित सूत्र के द्वारा गणों के स्वरूप और उनकी संख्या का ज्ञान अत्यन्त सरलता से हो जाता है। वह सूत्र यह है

**यमाताराजभानसलगम्**

इसी सूत्र से किसी गण के लघु-गुरु का क्रम सरलता से विदित हो जायगा। एक गण तीन वर्णों का होता है। एक बार तीन वर्ण ले लेने पर प्रथम अक्षर वाला गण बन जायगा। जैसे, पहले मैंने 'यमाता' इन तीन वर्णों को लिया। इनसे जो गण बनेगा उसे 'यगण' कहेंगे। अब इसी प्रकार आठों गणों के स्वरूप यों हो जाते हैं—

| | | |
|---|---|---|
| १—यगण | यमाता | ।ऽऽ |
| २—मगण | मातारा | ऽऽऽ |
| ३—तगण | ताराज | ऽऽ। |
| ४—रगण | राजभा | ऽ।ऽ |
| ५—जगण | जभान | ।ऽ। |
| ६—भगण | भानस | ऽ।। |
| ७—नगण | नसल | ।।। |
| ८—सगण | सलगं | ।।ऽ |

वर्णिक वृत्तों में इन्हीं गणों का उपयोग होता है। सूत्र के अन्त में आए हुए दो अक्षर 'ल' और 'गं' लघु और गुरु के द्योतक हैं।

## मात्रिक छन्द की विशेषताएँ

मात्रिक छन्दों में केवल मात्राएँ गिनी जाती हैं। इनके प्रत्येक चरण के अन्त में जो तुक आते हैं, उनका मिलना अनिवार्य नहीं तो आवश्यक अवश्य होता है। ये तुक परस्पर मिलकर एक प्रकार की संगीत-सृष्टि करते हैं और इनसे छन्द की शोभा

बहुत बढ़ जाती है। वर्णिक वृत्तों में इनका मिलना आवश्यक नहीं। मात्रिक छन्द हिन्दी के अपने छन्द हैं, इनके भीतर हिन्दी का अपना स्वरूप सुरक्षित रहता है, उसमें परवशता नहीं आने पाती किन्तु वर्णिक वृत्त में वह स्वच्छन्द रूप में न रहकर दूसरे के वशीभूत उसीके सङ्केत पर नृत्य करती दिखाई पड़ती है।

## छन्दोभङ्ग

प्रत्येक छन्द में मात्रा अथवा छन्दों की संख्या निर्धारित रहती है, जब छन्द के किसी चरण में इनकी न्यूनाधिकता होती है तब वह तुरत पाठक के कानों में खटक जाती है, इसी को **छन्दोभङ्ग** कहते हैं। कवि को इस दोष से सावधानी के साथ बचना चाहिए। जब कवि पूर्णरूप से रचना का अभ्यस्त हो जाता है तब उसमें यह दोष आने ही नहीं पाता। किन्तु नौसिखुए कवियों की रचनाओं में इस प्रकार के दोष प्रायः आ जाते हैं। इसीलिए प्रारम्भ में कविता के अभ्यासी को किसी विद्वान् के चरणों में बैठकर अभ्यास करना अति आवश्यक है, अन्यथा यह दोष दूर नहीं होता।

## यति

प्रत्येक छन्द में अनेक स्थानों पर विश्राम अथवा विराम के नियम बने होते हैं जहाँ पर पाठक की जिह्वा को विश्राम प्राप्त होता है। इन्हीं विश्राम-स्थलों का नाम छन्दःशास्त्र में **यति** होता है। जैसे,

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश,
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र-दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार,

यहाँ प्रदेश, वेश, अपार, फाड़, बार-बार और महाकार शब्द जिस स्थान पर हैं वहाँ पर पाठक की जिह्वा को कुछ विश्राम मिलता है। अतः ये सभी स्थान यति कहे जायँगे।

## यतिभङ्ग

कविता में जो यति का स्थान होता है वहाँ पर यदि कोई शब्द अधूरा पड़े और उसका शेष भाग यति के आगे चला जाय तो उसे 'यतिभङ्ग दोष' कहेंगे। कवि को इस दोष को ध्यान में रखकर रचना करनी चाहिए।

## यतिभङ्ग दोष का उदाहरण

अकथ अपार भव-पन्थ के थले को स्रम–
हरन, करन बिजना-से बर-दाइये।
अलिकुलकलित-कपोल, ध्यान ललित, अ-
नन्द-रूप सरित में 'भूषन' अन्हाइये॥

उपर्युक्त छन्द में पहले सोलह अक्षरों पर विराम या यति होती है, फिर पन्द्रह पर। इसमें 'स्रम' पर यति है किन्तु पूरा शब्द है 'स्रमहरन', जिसमें स्रम का हरन कटकर नीचे आ गया है, इसे 'यतिभङ्ग' दोष कहते हैं। इसी प्रकार नीचे के चरण में भी 'अनन्द' के 'अ' पर यति पड़ती है और 'नन्द' कटकर नीचे चला आया है, यहाँ भी यतिभङ्ग दोष हुआ। दोष से तो कवियों को बचना ही चाहिए, क्योंकि दोष कितना ही लघु हो, है तो वह दोष ही। कुछ कवि इस दोष को दोष नहीं मानते।

## गति

गति शब्द का अर्थ है प्रवाह। प्रवाह कविता का एक विशेष अङ्ग है, इसी के कारण उसका सारा सौन्दर्य निखरा रहता है। गतिहीन रचना कवित्वहीन हो जाती है। कवि अपनी प्रतिभा

से इस प्रवाह को सतत बनाए रखने में समर्थ होता है। अकवि से यह निर्वाह नहीं हो सकता। जैसे,

नीली उस यमुना के तट पर,
राजापुर का नागरिक मुखर,
क्रीडित वय, विद्याध्ययनान्तर है संस्थित।

इसमें यहाँ से वहाँ तक प्रवाह में किसी प्रकार की अटक नहीं पड़ती।

## गतिभङ्ग

यदि किसी पद्य में उस छन्द के सारे नियम पूर्णतया ठीक हों किन्तु उसमें गति न हो तो वहाँ **'गतिभङ्ग'** दोष होगा। जैसे, उपर्युक्त छन्द के,

'राजापुर का नागरिक मुखर'

को यदि यों कर दें—

'नागरिक राजापुर का मुखर'

तो प्रवाह नष्ट हो जायगा और गतिभङ्ग दोष के दर्शन होने लगेंगे यह ऐसा दोष है जो कविता के स्वरूप को ही नष्ट कर देता है।

## शुभाशुभ वर्ण और दग्धाक्षर

पिङ्गल के अनुसार कुछ वर्ण शुभ और कुछ अशुभ कहे गए हैं। अतः कवि का इनका भी ध्यान रखना चाहिए। इसी प्रकार कुछ वर्ण **'दग्धाक्षर'** कहे गए हैं, उन्हें, भूलकर भी कवि को अपने काव्य में आरम्भ में नहीं रखना चाहिए। **सभी स्वर वर्ण शुभ कहे गए हैं।** व्यञ्जन वर्णों में—

क, ख, ग, घ
च, छ, ज,
ङ,
द, ध, न,
य, श, स और क्ष

ये पन्द्रह वर्ण शुभ कहे गए हैं, शेष उन्नीस वर्ण अशुभ।

## दग्धाक्षर

उन्नीस अशुभ वर्णों में--

झ, भ, र, ष और ह बहुत ही अशुभ कहे गए हैं। इन्हें दग्धाक्षर कहते हैं।

## दोष-परिहार

आचार्यों का कहना है कि नर-विषयक काव्य की रचना में इन दग्धाक्षरों से बचना चाहिए और भूलकर भी काव्य के आदि में इन्हें स्थान नहीं देना चाहिए। * देव-काव्य में ये वर्ण अशुभ नहीं माने गए हैं अथवा देव-वाचक, शुभ-द्योतक और महापुरुषों के नाम आदि में आने पर ये दग्धाक्षर भी शुभ हो जाते हैं।

अशुभ वर्ण यदि गुरु कर दिया जाय तो दोष का मार्जन हो जाता है।

शुभाशुभ वर्णों का विशेष विचार मात्रिक छन्दों में ही किया जाता है, वर्णिक में नहीं।

## उदाहरण

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

यह स्वर्गीय श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' के कामायनी नामक प्रसिद्ध काव्य का प्रथम छन्द है। इसमें आदि में 'ह' वर्ण का प्रयोग किया गया है, किन्तु 'हिमगिरि' देवता-वाचक शब्द है अतः यहाँ 'ह' अशुभ नहीं माना जायगा।

---

* देवतावाचका शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपिवा॥

# गण फलक

पहले जो आठ वर्णिक गण बताए गए हैं उनके देवता, फल आदि भी भिन्न-भिन्न कहे गए हैं। उन्हें स्पष्ट करने के लिए यहाँ एक फलक दे दिया जाता है।

| गण | देवता | फल | शुभाशुभ |
|---|---|---|---|
| १—मगण | पृथ्वी | लक्ष्मी | शुभ |
| २—नगण | स्वर्ग | सुख | शुभ |
| ३—भगण | चन्द्रमा | यश | शुभ |
| ४—यगण | जल | आयु | शुभ |
| ५—जगण | सूर्य | रोग | अशुभ |
| ६—रगण | अग्नि | दाह | अशुभ |
| ७—सगण | वायु | विदेश | अशुभ |
| ८—तगण | आकाश | शून्य | अशुभ |

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि चार गण शुभफलदायी और चार अशुभफलदायी हैं। इनसे काव्य के आरम्भ में बचना चाहिए यदि देवता-वाचक शब्द न हो तो।

## दो गणों का विचार

यदि काव्य के आदि में अशुभगण रखना पड़े तो उसके बाद आने वाले गण को शुभ रख देने से दोष का शमन हो जाता है। इसी को **द्विगण-विचार** कहते हैं।

आठों गणों में मगण और नगण **मित्र** हैं, भगण और यगण दास, जगण और तगण उदासीन तथा रगण और सगण शत्रु कहे जाते हैं। इस विषय में आचार्य केशवदास का यह दोहा स्मरण रखने योग्य है—

"भगन नगन ये मित्र हैं, भगन, यगन ये दास।
उदासीन ज-त जानिये, र-स रिपु केशवदास॥"

इस कोष्ठक से इनका फल ज्ञात हो जायगा—

द्विगण-फलक

| गण | संयोग | फल |
|---|---|---|
| १—मित्र | | |
| मगण और नगण | मित्र + मित्र | सिद्धि |
| | मित्र + दास | विजय |
| | मित्र + उदासीन | गोत्र-दुःख (हानि) |
| | मित्र + शत्रु | प्रिय-नाश |
| २—दास | | |
| भगण और यगण | दास + मित्र | सिद्धि |
| | दास + दास | सर्व जीववश |
| | दास + उदासीन | पीड़ा, धन-हानि |
| | दास + शत्रु | पराजय, मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। |
| ३—उदासीन | | |
| जगण और तगण | उदासीन + मित्र | अल्प फल |
| | उदासीन + दास | प्रभुत्व-प्राप्ति |
| | उदासीन + उदासीन | निष्फल |
| | उदासीन + शत्रु | दुःख |
| ४—शत्रु | | |
| रगण और सगण | शत्रु + मित्र | शून्य |
| | शत्रु + दास | नारि-नाश |
| | शत्रु + उदासीन | शङ्का (कुल-नाश) |
| | शत्रु + शत्रु | पराजय |

*देववाची या मङ्गलवाची शब्दों में यह शुभाशुभ विचार नहीं होता। वे सदा शुभ ही होते हैं।*

## तुक-विचार

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, तुक के आनयन से कविता श्रुति-मधुर एवं विशेष आकर्षक हो जाती है। इसके द्वारा कानों को एक मधुर विश्रान्ति प्राप्त होती है। मात्रिक छन्दों में तुक-बन्धन आवश्यक हो जाता है। हिन्दी के आदिम युग से कविता में तुक की ओर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। अब तो हिन्दी-पाठकों के कान इतने तुक-प्रिय हो गए हैं कि तुकहीन रचना उन्हें नीरस प्रतीत होती है। यह यद्यपि सच है कि तुक काव्य का प्राण नहीं है फिर भी तुक उसकी शोभा अवश्य है। तुकहीन रचनाएँ भी हिन्दी में हुई हैं पर वे प्रायः आकर्षण-विहीन हो गई हैं। इसका कारण शताब्दियों से हिन्दी-पाठकों का तुक-युक्त कविता का रसास्वादन करना ही है। हमारे संस्कृत-वाङ्मय में तुक को बिल्कुल ही स्थान नहीं दिया जाता रहा है। यदि कहीं वह देखने को मिल जाता है तो वह घुणाक्षर-न्याय से आ गया है, जानबूझकर लाया गया नहीं है। वर्णिक वृत्तों में स्वयं ही एक लयगत माधुर्य रहता है जिससे तुक की हीनता खटकती नहीं। हिन्दी खड़ीबोली के प्रख्यात महाकवि श्रीसुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्रन्थि' नामक रचना पूरी की पूरी तुक से रहित है फिर भी काव्य-गुणों की न्यूनता उसमें नहीं है। हाँ, श्रुति-माधुर्य अवश्य उसमें उतना नहीं आ सका है, तुकहीनता के कारण।

## तुक के प्रकार

तुक उत्तमता की दृष्टि से तीन प्रकार के कहे गए हैं; उत्तम, मध्यम और निकृष्ट।

### १— उत्तम तुक

यदि छन्द के चरणान्त में दो गुरु वर्ण आवें और वहाँ पाँच मात्राओं की समस्वरता हो तो तुक उत्तम कोटि का कहा जाता है। जैसे,

जौ तप करइ कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

यहाँ अन्त में दो गुरु और उनके पहले का वर्ण लघु है, अतः पाँच मात्राओं के आने से तुक उत्तम कोटि का हुआ।

## मध्यम तुक

यदि अन्त में चार मात्राएँ मिलें तो वह मध्यम तुक होता है।

मन्दिर मन्दिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

## निकृष्ट तुक

चार से कम मात्राओं के आने पर निकृष्ट तुक कहा जाता है। जैसे,

सुन उर्मिला अबोध निरी।
कह कर हाय! धड़ाम गिरी॥

यहाँ निकृष्ट कोटि का तुक आया है।

---

## छन्द के भेद

पहले बताया जा चुका है कि मात्रा और वर्ण की गणना की दृष्टि से छन्द दो प्रकार के होते हैं, **मात्रिक** और **वर्णिक**। इन दोनों प्रकार के छन्दों के पुनः तीन-तीन भेद हो जाते हैं :—

१–सम, २–अर्द्धसम और ३–विषम।

फिर इनके भी अनेक भेदोपभेद होते हैं।
यह इस वंश-वृक्ष से स्पष्ट हो जायगा।

## छन्दोवंश–वृक्ष

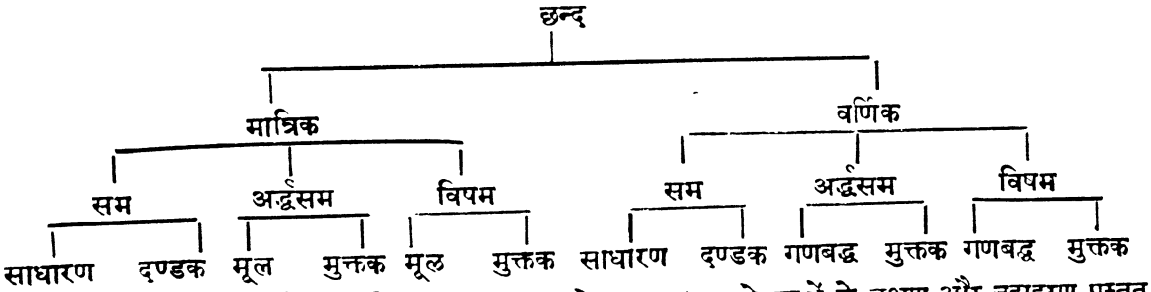


छात्रों को केवल इतने से छन्द के प्रकार का ज्ञान हो जायगा। आगे छन्दों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करते समय इन सबका निर्देश किया जायगा।

## मात्रिक और वर्णिक की पहचान

किसी छन्द को पहचानने के लिए कि यह मात्रिक है अथवा वर्णिक, छन्द में आए हुए अक्षरों को गिन डालें। यदि चारों चरणों में से प्रत्येक में वर्णों की समान संख्या है तो वह वर्णिक होगा अन्यथा मात्रिक होगा। वर्णिक में भी वह *साधारण* है *अथवा मुक्तक* यह यदि जानना हो तो प्रत्येक चरण में आए हुए वर्णों का लघु-गुरु का क्रम मिला लेना चाहिए। यदि लघु-गुरु का क्रम मिलता है तो साधारण अन्यथा मुक्तक होगा।

अक्षरों की गणना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संयुक्ताक्षर केवल एक ही वर्ण गिना जाता है।

# मात्रिक सम छन्द

## बारह मात्राओं के छन्द

### तोमर

इसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ होती हैं और अन्त में क्रम से गुरु और लघु आते हैं। इसका दूसरा नाम 'वामन' भी है।

*उदाहरण*

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥

### लोला

इसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में जगण ( ।ऽ। ) का आना आवश्यक है।

*उदाहरण*

अवधपुरी भाग भारु। दसरथ गृह छबि अगारु।
राजत जहँ बिस्वरूप। लीला-तनु धरि अनूप॥

## पन्द्रह मात्राओं के छन्द

### हंसी या चौबोला

इसके प्रत्येक चरण में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु और गुरु का क्रम होना चहिए।

*उदाहरण*

मसक समान रूप कपि धरी। लंका चलेउ सुमिरि नरहरी।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह, चलेसि मोहि निंदरी॥

## चौपाई

इसका दूसरा नाम 'जयकरी' भी है।

इसके प्रत्येक चरण में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में गुरु-लघु का क्रम होता है।

*उदाहरण*

चहहु जो साँचो निज कल्यान। तौ सब मिलि भारत-सन्तान।
जपौ निरन्तर एक जबान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान॥

## सोलह मात्राओं के छन्द

## अरिल्ल

प्रत्येक चरण में चार चौकल (चार मात्राएँ) होकर सोलह मात्राएँ होती हैं। चौकल में 'जगण' नहीं आना चाहिए। अन्त में दो लघु वर्ण होने चाहिएँ।

*उदाहरण*

गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविध सदा बह सुन्दर।
केहरि करि-कर सम दसकन्धर।

---

## चौपाई

इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। चरणान्त में जगण या तगण नहीं आना चाहिए अर्थात् अन्त में गुरु के पश्चात् लघु का आना निषिद्ध है।

(१)

*उदाहरण*

एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई।
ते दोउ बन्धु बिलोकेउ जाई। प्रेम-बिबस सीता पहिं आई॥

( २ )

तन-चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पदुमिनि चीन्हा।
गुरू सुआ जेहिं पन्थ देखावा। बिनु गुरु जगत का निरगुन पावा।

## इक्कीस मात्राओं के छन्द

### प्लवङ्गम

प्रत्येक चरण में इक्कीस मात्राएँ होती हैं। इसका नियम यह है कि क्रम से एक छकल ( छः मात्राएँ ), एक द्विकल, दो त्रिकल, एक चौकल—इस चौकल में जगण का निषेध है और अन्त में लघु-गुरु क्रम से आते हैं।

*उदाहरण*

मेरा प्रिय हिंडोल निकुंजागार तू।
जीवन-सागर, भाव-रत्न भाण्डार तू॥
मैं हूँ तेरा सुमन चहूँ, सरसूँ कहीं।
मैं हूँ तेरा जलद, बहूँ, बरसूँ कहीं॥

### कुण्डल

इसके प्रत्येक चरण में बारह और दस मात्राओं पर विराम होकर बाईस मात्राएँ होती हैं और चरण के अन्त में दो गुरु आते हैं।

*उदाहरण*

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुञ्ज-हारी।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो?
मो समान आरत नहि, आरतिहार तो सो।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हित मेरो॥

## चौबीस मात्राओं का छन्द

# रोला

इसके प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। ग्यारह और तेरह मात्राओं पर विराम होता है। ग्यारह मात्राओं में एक छकल, एक द्विकल और त्रिकल तथा तेरह मात्राओं में त्रिकल, द्विकल, छकल और द्विकल का क्रम होना चाहिए। चरणान्त में यदि दो गुरु आवें तो उत्तम है।

*उदाहरण*

छन्द-बन्ध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा—
अखिल रूढ़ियों की, कवि ! तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमन्द रजत-निर्झर-सी निःसृत,
गलित, ललित, आलोक-राशि चिर अकलुष, अविजित॥

## छब्बीस मात्राओं का छन्द

# गीतिका

इसके प्रत्येक चरण में चौदह और बारह मात्राओं पर विराम होकर छब्बीस मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में लघु-गुरु का क्रम होता है, यदि रगण ( SIS ) हो तो विशेष शोभन होता है। तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु रहनी चाहिएँ।

*उदाहरण*

देश का हित कर चलो सर्वस्व अपना त्याग के।
कीर्ति उज्वल कर न पाओगे समर से भागके।
पूर्वजों के नाम पर हो क्यों कलङ्क लगा रहे,
कोटि पुत्र जिसे वही माता भला क्यों दुख सहे॥

## अट्ठाईस मात्राओं का छन्द

### हरिगीतिका

इसमें सोलह और बारह मात्राओं पर विराम होकर प्रत्येक चरण में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं। अन्त में रगण ( ऽ।ऽ ) का आना विशेष श्रुतिमधुर हो जाता है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं, और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु होनी चाहिएँ।

*उदाहरण*

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है॥
इस ध्येय पर ही कौरवों औ पाण्डवों का रण हुआ।
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ॥

## तीस मात्राओं का छन्द

### चौपैया

इसके प्रत्येक चरण में दस, आठ और बारह मात्राओं पर विराम होकर तीस मात्राएँ होती हैं। अन्त में एक सगण और एक गुरु होना चाहिए।

*उदाहरण*

भे प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौसल्या-हितकारी।
हरषित महतारी, मुनि-मनहारी, अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा, तन घनस्यामा, निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला, नयन बिसाला, सोभासिन्धु खरारी॥

## इकतीस मात्राओं का छन्द

# वीर या आल्हा छन्द

इसके प्रत्येक चरण में इकतीस मात्राएँ होती हैं। सोलह और पन्द्रह मात्राओं पर विराम होता है। चरण के अन्त में गुरु-लघु का क्रम रहता है।

*(१) उदाहरण*

बारह बरिस लै कूकर जीयें, औ तेरह लै जीयें सियार।
बरिस अठारह छत्री जीयें, आगे जीवन को धिक्कार॥

(२)

जान हथेली पर रख मैंने, खेला अंगारों से खेल।
चुने हुए अपने वीरों सँग कूद पड़ा ज्वालाएँ झेल॥
गढ़ की वह नकेल चट मेरे, हाथों आई अपने आप।
और दुर्ग चरणों के नीचे आ पहुँचा क्षण में चुपचाप॥

(सूचना) पहले इस छन्द का प्रयोग केवल वीर रस के ही लिए होता था, किन्तु अब अन्य रसों के लिये भी इसका प्रयोग होने लगा है। जैसे,

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भींगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन॥

## बत्तीस मात्राओं का छन्द

# मराल

इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस मात्राएँ होती हैं। अन्त में क्रम से गुरु-लघु होते हैं।

*उदाहरण*

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे आये उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥

# रूप सवैया

इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस मात्राएँ होती हैं, अर्थात् इसका प्रत्येक चरण चौपाई का द्विगुण होता है।

*उदाहरण*

आया है यह समय मनोहर, चलो हर्ष से खेल खेल लें।
छोड़ परस्पर की ईर्ष्या को, कर हम फिर से मित्र! मेल लें।
खिले कुसुम उल्लास, हर्ष के, हम सब अपना रंग जमा दें,
प्रेम अमृत के फल लाता है, यह दुनियाँ को हम दिखलादें॥

# मत्त सवैया

इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस मात्राएँ होती हैं। इसमें आदि से अन्त तक प्रायः द्विकल ही रहते हैं।

**यथा**

विचलित हो अमल न मौन रहे निष्ठुर शृंगार उतरता हो;
क्रन्दन, कम्पन, न पुकार बने निज साहस पर निर्भरता हो।
अपनी ज्वाला को आप पिये, नव नीलकंठ का छाप लिये,
विश्राम, शान्ति को आप दिये, ऊपर, ऊँचे सब झेल चले॥

## मात्रिक अर्द्धसम छन्द

**ज्ञातव्य**—वे छन्द जो केवल दो पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं, उनकी प्रत्येक पंक्ति को दल कहते हैं। इनमें प्रायः सबके प्रथम और तृतीय चरण विषम तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण सम होते हैं। किसी-किसी में पहले और तीसरे सम तथा दूसरे और चौथे चरण विषम होते हैं।

### बरवै छन्द

इसके प्रथम और तृतीय चरणों में से प्रत्येक में बारह और द्वितीय तथा चतुर्थ में प्रत्येक में सात मात्राएँ होती हैं। सम चरणों के अन्त में गुरु-लघु क्रम से रहते हैं।

*१—उदाहरण*

लै के सुघर खुरपिया, पिउ के साथ।
छइबै एक मड़ैया, बरसत पाथ॥

( २ )

चम्पक हरवा अँग मिलि, अधिक सुहाइ।
जानि पैर सिय हियरे, जब कुम्हिलाइ॥

सूचना—यह छन्द शृंगार रस के ही लिए उपयुक्त और प्रभावशाली समझ पड़ता है। अवधी भाषा में ही इसका सौन्दर्य निखरता है।

### अति बरवै

इसके विषम चरणों में प्रत्येक में बारह और सम चरणों में नौ मात्राएँ होती हैं। इसके भी अन्त में गुरु और लघु का क्रम मधुर होता है।

*उदाहरण*

कवि-समाज को बिरवा, भल चले लगाइ।
सींचन की सुधि कीजो, कहुँ मुरझि न जाइ॥

## दोहा छन्द

इसके प्रत्येक विषम चरण में तेरह और सम चरण में ग्यारह मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण नहीं आना चाहिए। सम चरणों के अन्त में लघु होना चाहिए।

*१—उदाहरण*

एक छत्र, एक मुकुट-मनि, सब बरनन पर जोउ।
'तुलसी' रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

( २ )

'रहिमन' चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर॥

( ३ )

दोषहि को उमहैं गहैं, गुन न गहै खल-लोक।
पिये रुधिर, पय ना पिये, लगी पयोधर जोंक॥

## सोरठा

इसके प्रथम और तृतीय चरणों में ग्यारह-ग्यारह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। यह विषमान्त्य छन्द है अर्थात् इसके प्रथम और तृतीय चरण के तुक मिलते हैं।

*१—उदाहरण*

बन्दउँ पवन-कुमार, खल-बन-पावक ज्ञान-घन।
जासु हृदय-आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर॥

( २ )

'रहिमन' मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु।
बरु बिष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

## उल्लाला छन्द

उल्लाला छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरणों में पन्द्रह-पन्द्रह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं।

*उदाहरण*

लंगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवन-नन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

# मात्रिक विषम छन्द

## कुण्डलिया

इसके आदि में एक दोहा और उसके बाद एक रोला रहता है। इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं और छः चरण होते हैं। दोहे के चतुर्थ चरण के शब्द रोला के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध में और दोहे के प्रथम चरण के एक या दो शब्द रोला के अन्त में आते हैं। इसी कुण्डलित शरीर-रचना के कारण इसका नाम कुण्डलिया है।

*उदाहरण*

साईं ये न बिरुद्धिये, गुरु, पंडित, कवि, यार।
बेटा, वनिता, पौरिया, जज्ञ करावन हार॥
जज्ञ करावन हार, राजमंत्री जो होई।
बिप्र, पड़ोसी, बैद, आपको तपै रसोई॥
कह 'गिरिधर' कविराय, जुगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं॥

## छप्पय

इसमें पहले एक रोला और फिर एक उल्लाला मिला रहता है। इस प्रकार यह छः चरणों का छन्द हो जाता है। उल्लाला चाहें तो छब्बीस मात्राओं वाला अथवा अट्ठाइस मात्राओं वाला रख सकते हैं।

*उदाहरण*

अरिहु दन्त तृन धरै, ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत-पय नित स्रवहिं, बच्छ यहि थंमन जावहिं।
हिंदुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कबि 'नरहरि' अकबर सुनौ, बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

## विषम मात्रिक छन्द

मैथिल-कोकिल विद्यापति, सूरदास, मीराबाँई, तुलसी आदि भक्त कवियों के पद जो गेय हैं तथा आधुनिक युग की छायावादी प्रगीत मुक्तक रचनाएँ, विषम मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत आती हैं। इनमें यह नियम नहीं होता कि आदि से अन्त तक प्रत्येक चरण की मात्राएँ समान हों। पहला चरण, जिसे टेक कहते हैं, छोटा होता है और उसके बाद आने वाले चरण उससे बड़े होते हैं। आजकल के प्रगीत मुक्तकों में एक टेक के बाद दो अथवा चार छोटी पंक्तियाँ और फिर एक बड़ी पंक्ति लाई जाती है। इस प्रकार ऐसी रचनाओं में आद्यन्त एकरूपता का कोई नियम नहीं होता। इसको स्पष्ट करने के लिए नीचे दो उदाहरण दिए जाते हैं।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदनँदहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सेजा पर कर-पल्लव सों पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा-पुट हमपर कोपि कुपावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ो ह्वै जावति।
इत्यादि।

—सूरदास

## आधुनिक गीत के
### उदाहरण
### (१)

बना मधुर मेरा जीवन!
बंशी-से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ सरस वचन।
जितना जितना मुझको छेड़ें बोलूँ और मधुर मोहन।
जो अकर्ण अहि को भी सहसा करदे मन्त्र-मुग्ध नतफन!

—श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

( २ )

दिया क्यों जीवन का वरदान।
इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्न-लोक की परियाँ इसमें भूल गईं मुस्कान।
सिकता में अङ्कित रेखा-सा,
वात-विकम्पित दीप-शिखा-सा,
काल- कपोलों पर आँसू-सा द्रुत जाता हो म्लान।
तड़ित्-रेख-सा घन-अञ्चल में,
तुहिन-बिन्दु-सा किसलय-दल में,
करता है पल-पल में देखो मिटने का अभिमान।

—श्रीमती महादेवी वर्मा

## मुक्त छन्द ( Blankverse )

आज-कल मुक्त छन्दों की रचना का हिन्दी में प्राचुर्य हो गया है। इस प्रकार की रचनाओं में छन्द का कोई नियम नहीं होता, ये नियमों से मुक्त होते हैं। मात्राओं की गणना का कोई विचार नहीं होता, एक पंक्ति किसी एक छन्द से मेल खाती है तो दूसरी किसी दूसरे से और तीसरी किसी तीसरे छन्द से। एक पंक्ति में केवल दो ही शब्द हैं तो दूसरी में दस शब्द। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रकार की रचनाएँ छन्द के नियमगत बन्धन से मुक्त होती हैं। इसीलिए इनमें श्रुति-माधुर्य नहीं होता; लय नहीं होता, राग नहीं होता, संगीतात्मकता नहीं होती। एक उन्मुक्त निर्झर की भाँति यह अपनी मस्ती की गति में वातावरण को मुखरित किए रहता है। संगीतात्मकता यदि कहीं इसमें है तो वह इसकी सतत गति में। प्रवाह इसमें अनवरुद्ध होना चाहिए। प्रवाहहीनता से ऐसी रचनाएँ निष्प्राण हो जाती हैं।

एक छोटा उदाहरण लीजिए—

## विषम मात्रिक छन्द

मैथिल-कोकिल विद्यापति, सूरदास, मीराबाँई, तुलसी आदि भक्त कवियों के पद जो गेय हैं तथा आधुनिक युग की छायावादी प्रगीत मुक्तक रचनाएँ, विषम मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत आती हैं। इनमें यह नियम नहीं होता कि आदि से अन्त तक प्रत्येक चरण की मात्राएँ समान हों। पहला चरण, जिसे टेक कहते हैं, छोटा होता है और उसके बाद आने वाले चरण उससे बड़े होते हैं। आजकल के प्रगीत मुक्तकों में एक टेक के बाद दो अथवा चार छोटी पंक्तियाँ और फिर एक बड़ी पंक्ति लाई जाती है। इस प्रकार ऐसी रचनाओं में आद्यन्त एकरूपता का कोई नियम नहीं होता। इसको स्पष्ट करने के लिए नीचे दो उदाहरण दिए जाते हैं।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदनँदहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।
आपुन पाँढ़ि अधर-सेज्या पर कर-पल्लव सों पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा-पुट हमपर कोपि कुपावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ो ह्वै जावति।
इत्यादि।

—सूरदास

## आधुनिक गीत के
### *उदाहरण*

(१)

बना मधुर मेरा जीवन!
बंशी-से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ सरस वचन।
जितना जितना मुझको छेड़ें बोलूँ और मधुर मोहन।
जो अकर्ण अहि को भी सहसा करदे मन्त्र-मुग्ध नतफन!

—श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

( २ )

दिया क्यों जीवन का वरदान।
इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्न-लोक की परियाँ इसमें भूल गईं मुस्कान।
सिकता में अङ्कित रेखा-सा,
वात-विकम्पित दीप-शिखा-सा,
काल- कपोलों पर आँसू-सा ढुल जाता हो म्लान।
तड़ित्-रेख-सा घन-अञ्चल में,
तुहिन-बिन्दु-सा किसलय-दलमें,
करता है पल-पल में देखो मिटने का अभिमान।

—श्रीमती महादेवी वर्मा

## मुक्त छन्द ( Blankverse )

आज-कल मुक्त छन्दों की रचना का हिन्दी में प्राचुर्य हो गया है। इस प्रकार की रचनाओं में छन्द का कोई नियम नहीं होता, ये नियमों से मुक्त होते हैं। मात्राओं की गणना का कोई विचार नहीं होता, एक पंक्ति किसी एक छन्द से मेल खाती है तो दूसरी किसी दूसरे से और तीसरी किसी तीसरे छन्द से। एक पंक्ति में केवल दो ही शब्द हैं तो दूसरी में दस शब्द। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रकार की रचनाएँ छन्द के नियमगत बन्धन से मुक्त होती हैं। इसीलिए इनमें श्रुति-माधुर्य नहीं होता; लय नहीं होता, राग नहीं होता, संगीतात्मकता नहीं होती। एक उन्मुक्त निर्झर की भाँति यह अपनी मस्ती की गति में वातावरण को मुखरित किए रहता है। संगीतात्मकता यदि कहीं इसमें है तो वह इसकी सतत गति में। प्रवाह इसमें अनवरुद्ध होना चाहिए। प्रवाहहीनता से ऐसी रचनाएँ निष्प्राण हो जाती हैं।

एक छोटा उदाहरण लीजिए—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे ।'

—श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

# वर्णिक वृत्त

## सम

### शशिवदना

इसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। यथा,

प्रिय तुम जाओ । जन मन भाओ ।
भ्रम मिट जावें । सब सुख आवें ॥

### विद्युन्माला

इसके प्रत्येक चरण में दो मगण और दो गुरु होते हैं।

*उदाहरण*

लोहै मोहै कोहै कामै । नाशै की है शक्ती जामें ।
राधे-कृष्णा गाओ गाओ । निश्चै साधो मुक्ति पाओ ॥

### शालिनी

इसके प्रत्येक चरण में एक मगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं।

*उदाहरण*

धामै धामै रत्न-वेदी सुहावें ।
वेदा-वेदी भक्त-संवाद भावें ।
वादै ही सों बोधि चित्तै प्रकासै ।
बोधै पाये, शंभु की मूर्ति भासै ॥

## भुजङ्गी

प्रत्येक चरण में तीन यगण ( ।ऽऽ ) और एक लघु फिर एक गुरु होता है। यथा,

बड़ाई न बाँटी बड़ों के लिये,
कड़ी तान ली तुक्कड़ों के लिये।
समालोचको, नम्रता धारिये,
महावीरता यों न विस्तारिये !!

—नाथूराम शंकर शर्मा

## इन्द्रवज्रा

दो तगण, एक जगण और दो गुरु इसके प्रत्येक चरण में होते हैं।

*उदाहरण*

तेजस्वियो ! तेज ज़रा दिखादो।
शस्त्रास्त्र-विद्या सब को सिखादो।
जो सो रहे हैं उनको जगादो।
आलस्य सारा उनका भगा दो॥

—श्री गिरधर शर्मा

## उपेन्द्रवज्रा

एक जगण, एक तगण, एक जगण और दो गुरु मिलकर होता है। जैसे,

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै।
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना बिचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

## तोटक

प्रत्येक चरण में चार सगण ( ।।ऽ ) होते हैं।

*उदाहरण*

जय राम सदा सुखधाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे
भव-बारन-दारन-सिंह प्रभो !
गुन-सागर नागर नाथ बिभो !!

## भुजङ्गप्रयात

इसके प्रत्येक चरण में चार यगण ( ।ऽऽ ) होते हैं।

*उदाहरण*

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ पक्षिणी पक्षिणी कै पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥

—रामचन्द्रिका

## इन्द्रवंशा

प्रत्येक चरण में दो तगण ( ऽऽ। ), एक जगण और एक रगण ( ऽ।ऽ ) होता है।

*उदाहरण*

यों ही बड़ा हेतु हुए बिना कहीं।
होते बड़े लोग कठोर यों नहीं॥
वे हेतु भी यों रहते सुगुप्त हैं।
जो अद्रि अम्भोनिधि में प्रलुप्त हैं॥

## वंशस्थ

एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण प्रत्येक चरण में होता है। यथा,

मुकुन्द चाहे यदुवंश के बनें।
रहें सदा या वह गोप वंश के॥
न तो सकेंगे व्रज-भूमि भूल वे।
न भूल देगी व्रज-मेदिनी उन्हें॥

## द्रुतविलम्बित

एक नगण, दो भगण और एक रगण मिलकर होता है। इसका दूसरा नाम 'सुन्दरी' भी है।

*उदाहरण*

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

## मालती

एक नगण, जो जगण और एक रगण मिलकर *मालती* होती है।

*उदाहरण*

अहह! वही यह धर्म-भूमि है।
अहह! यही वह कर्म-भूमि है॥
अब हम में वह ज्ञान है कहाँ?
अब हम में वह आन है कहाँ?

## बसन्ततिलका

इसके प्रत्येक चरण में एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। इसे 'सिंहोन्नता' भी कहते हैं।

*उदाहरण*

कुंजें वही, थल वही, यमुना वही है।
बेलें वही, द्रुम वही, विटपी वही हैं।
हैं पुष्प-पल्लव वही, व्रज भी वही है।
यों किन्तु श्याम बिन है न वही जनाते॥

## मालिनी

दो नगण, एक मगण और दो यगण मिलकर मालिनी वृत्त बनता है। यथा—

विलसित उर में है जो सदा देवता लौं।
वह निज उर में है ठौर भी क्यों न देता?
नित वह कलपाता है है मुझे कान्त हो क्यों?
जिस बिन कल पाते हैं नहीं प्राण मेरे।

## नराच, पंचचामर या नागराज

इसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और एक गुरु होता है। यह सोलह वर्णों का छन्द है, जिसमें एक लघु फिर एक गुरु क्रम से अन्त तक रहते हैं। यथा :—

अभी तमिस्र था धुली न पूर्ण तारकावली।
मनुष्य-लोक स्वर्ग से निहारने प्रभा चली॥
निशीथ स्वप्न आँख छोड़, आँख मूँदने लगे।
विभावरी गई, उषा-किशोर कूजने लगे॥

## मन्दाक्रान्ता

इसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं।

*उदाहरण*

ये आँखें हैं जिधर फिरती चाहती श्याम को हैं।
कानों को भी मुरलि-रव की आज तो लौ लगी है॥
कोई मेरे हृदय-तल को पैठ के जो विलोके।
तो पावेगा लसित उसमें कान्ति प्यारी उन्हीं की॥

—'प्रिय-प्रवास'

## शिखरिणी

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण एवं लघु और एक गुरु मिलकर प्रत्येक चरण में सत्रह वर्ण होते हैं।

*उदाहरण*

कुचालों ने मारे सकल मतवाले कर दिये।
कुपंथों में सारे विकट कटु-भाषी भर दिये॥
हठीले होने को हठ न अगुओं की मति हरे।
हमारे रोने को सुनकर कृपा शङ्कर करे॥

# सवैया छन्द

## ( १ ) मदिरा या चकोर

सात भगण और एक गुरु मिलकर मदिरा सवैया होता है। यथा,

सिन्धु तर्यो उनको बनरा, तुम पै धनु-रेख गई न तरी।
बानर बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि के बाट करी॥
श्री रघुनाथ प्रताप की बात तुम्हें दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरि लंक जराइ जरी॥

—रामचन्द्रिका

## ( २ ) मत्तगयन्द सवैया

इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं।

*उदाहरण*

मैं मनमोहन की मुरली लई, मेरी लई मुरलीधर माला।
मैं मुरली अधरान धरी, पहिरयो मुरलीधर मेरियौ माला॥
मैं मनमोहन की मुरली दई, मेरी दई मुरलीधर माला।
मैं मनमोहन की मुरली भई, मेरी भये मुरलीधर माला॥

## ( ३ ) अरसात सवैया

इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक रगण होता है। यथा,

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करीं बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुञ्जनि में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
आँखिन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

## ( ४ ) किरीट सवैया

किरीट के प्रत्येक चरण में आठ भगण ( ऽ।। ) होते हैं।

*उदाहरण*

कानि करै गुरु लोगन की न सखीन की सीखन ही मन लावति।
ऐंड़ भरी अँगराति खरी, कत घूँघट में नये नैन नचावति॥
मंजन कै दृग अंजन आँजति, अङ्ग अनंग उमंग बढ़ावति।
कौन सुभाव री तेरी परयौ, खिन आँगन में, खिन पौरि में आवति॥

## ( ५ ) दुर्मिल सवैया

इसके प्रत्येक चरण में आठ सगण (।।ऽ) होते हैं। इसका दूसरा नाम 'चन्द्रकला' भी है।

*उदाहरण*

तड़पै तड़िता चहुँ ओरन ते; छिति छाई समीरन की लहरैं।
मदमाते महागिरि-शृंगन पै गन मंजु मयूरन के कहरैं॥
इनकी करनी बरनी न परै, मगरूर गुमावन सों गहरैं।
घन ये नभ-मंडल में छहरैं, घहरैं कहुँ जाय, कहूँ ठहरैं॥

## ( ६ ) सुन्दरी सवैया

इसके प्रत्येक चरण में आठ सगण और एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम 'सुखदानी' भी है।

*उदाहरण*

हम दीन दरिद्र-हुताशन में दिन-रात पड़े दहते रहते हैं।
बिन मेल विरोध-महानद में मन-बोहित-से बहते रहते हैं।
कवि 'शङ्कर' काल-कुशासन की फटकार कड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत के गत गौरव की अनुभूत कथा कहते रहते हैं।

## दण्डक छन्द

### मुक्तक

जिन वर्णिक छन्दों में लघु-गुरु का कोई निश्चित क्रम नहीं होता, केवल वर्णों की संख्याएँ ही निश्चित होती हैं उन्हें मुक्तक दण्डक कहते हैं।

### मनहरण अथवा घनाक्षरी

इसके प्रत्येक चरण में इकतीस वर्ण होते हैं। सोलह और पन्द्रह पर विराम होता है और चरण के अन्त में गुरु अवश्य आना चाहिए।

झहरि झहरि झीनी बूँद हैं परति मानो
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन मैं।
आनि कह्यौ स्याम मों सौं चलौ झूलिबे को आज
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं॥
चाहति उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन में।
आँखि खोलि देखौं तौ न घन हैं, न घनस्याम,
वेई छाई बूँदें मेरे आँसू ह्वै दृगन में॥

## रूप घनाक्षरी

इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस वर्ण होते हैं और सोलह, सोलह पर विराम होता है। चरण के अन्त में गुरु-लघु अथवा लघु होता है। कहीं कहीं अन्त में गुरु भी पाया जाता है।

*उदाहरण*

सुरही के भार सूधे सबद सुकीरन के
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
'द्विजदेव' त्योंही मधु-भारन अपारन सों
नेकु झुकि झमि रहे मोगरे मरुअ दौन॥
खोलि इन नैननि निहारौं तौ निहारौं कहा?
सुषमा अभूत छाइ रही प्रति भौन-भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद,
गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन॥

## देव घनाक्षरी

इसके प्रत्येक चरण में तैंतीस वर्ण होते हैं। आठ, आठ, आठ और नव पर विराम होता है। चरण के अन्त में बहुधा नगण आता है।

## उदाहरण

झिल्ली झनकारैं पिक, चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं उठैं जुगुनूँ चमकि-चमकि।
घोर घन कारे मारे धुरवा धुरारे धाय,
धूमनि मचाय नाचैं, दामिनि दमकि-दमकि॥
झूकनि बयारि बहै, लूकनि लगावै अंग,
हूकनि भभूकनि की, उर में खमकि-खमकि।
कैसे करि राखौं प्रान, प्यारे 'जसवंत' बिना,
नान्हीं नान्हीं बूँद झरैं, मेघवा झमकि-झमकि॥

# आठवाँ अध्याय

## अलङ्कार-प्रवेश

# अलङ्कार

कथन की जिस प्रणाली से काव्य की शोभा बढ़ जाय, उसे 'अलङ्कार' कहते हैं। जिस प्रकार अलङ्कार धारण कर लेने से शरीर की सुन्दरता बढ़ जाती है उसी प्रकार अलङ्कारों के समुचित प्रयोग से काव्य की शोभा भी बढ़ जाती है। अलङ्कार काव्य के अभ्यन्तर धर्म नहीं अपितु बाह्य धर्म हैं। इसलिए कविता की रचना में अलङ्कार का रहना अनिवार्य नहीं होता। उन्हीं अलङ्कारों से काव्य की शोभा बढ़ती है जो बिना प्रयत्न के अपने आप उसमें आ जाते हैं। कवि जब जानबूझकर प्रयत्न द्वारा कविता में अलङ्कार लादने लगता है तब उससे काव्य की स्वाभाविक शोभा जाती रहती है।

अलङ्कार तीन प्रकार के होते हैं—

(१) शब्दालङ्कार, (२) अर्थालङ्कार और (३) उभयालङ्कार।

(१) **शब्दालङ्कार**—कविता में शब्दगत चमत्कार का नाम 'शब्दालंकार' है।

इसमें कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों में ही चमत्कार होता है। यदि उन शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर दूसरे शब्द उनके पर्याय के रूप में रख दिए जाँय तो वह चमत्कार जाता रहेगा।

(२) **अर्थालङ्कार**—कविता में अर्थगत चमत्कार का नाम 'अर्थालङ्कार' है। यह चमत्कार काव्य का अर्थ समझने पर खुलता है, अर्थात् यह अर्थ में निहित रहता है, शब्द में नहीं। ऐसी कविता के शब्दों का पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी उसका चमत्कार नष्ट नहीं होता। काव्य की विशेष शोभा-वृद्धि इसी अलङ्कार द्वारा होती है।

(३) **उभयालङ्कार**—किसी कविता में जब एक से अधिक अलङ्कार होते हैं तब उनके समूह को उभयालङ्कार कहते हैं। उन अनेक अलङ्कारों में जो प्रमुख होता है उसी की स्थिति काव्य में मानी जाती है।

## शब्दालङ्कार

### (१) अनुप्रास

जहाँ शब्दों में स्वर की समानता हो या न हो किन्तु अक्षरों में अर्थात् व्यञ्जनों में समानता हो, वहाँ 'अनुप्रास' अलङ्कार होता है।

इसके तीन मुख्य भेद होते हैं—

(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्यनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

(१) **छेकानुप्रास**—जहाँ एक अथवा अनेक व्यञ्जन वर्णों की एकबार आवृत्ति हो वहाँ छेकानुप्रास होता है। जैसे,

अलस पलक, सघन अलक
श्यामल छवि छाया।
स्वप्निल मन, तन्द्रिल तन।
शिथिल वसन माया।

ऊपर की कविता में 'पलक' और 'अलक' में 'ल' और 'क' की, 'छवि' और 'छाया' में 'छ' की, 'स्वप्निल' और 'तन्द्रिल' में 'ल' की, और 'मन' और 'तन' में 'न' वर्णों की एक बार आवृत्ति हुई है, अर्थात् ये व्यञ्जन वर्ण केवल दो-दो बार ही प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए इसमें 'छेकानुप्रास' हुआ।

इसी प्रकार,

गुरु-पद-रज मृदु मञ्जुल अञ्जन।
नयन-अमिय दृग-दोष बिभञ्जन॥

इसमें 'मृदु' और 'मञ्जुल' शब्दों में 'म' और 'दृग' तथा 'दोष' में 'द' व्यञ्जन वर्ण केवल दो बार ही प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए इसे छेकानुप्रास कहेंगे।

## (२) वृत्यनुप्रास

जहाँ पर एक अथवा अनेक व्यञ्जन अक्षर दो से अधिक बार आवें वहाँ **वृत्यनुप्रास** होता है। इसमें भी स्वर की समानता आवश्यक नहीं है। जैसे,

तरणि के ही संग तरल तरङ्ग में,
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

इसमें 'त' व्यञ्जन वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है। इसी प्रकार,

चितै चैत की चाँदनी चाइ भरी,
चरचा चलिबे की चलाइये ना।

इसमें 'च' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है, इसमें *वृत्यनुप्रास* अलङ्कार है।

विशेष—यह अनुप्रास तभी अलङ्कार कहा जायगा जब अनेक बार आने वाला या वाले वर्ण कविता में वर्णित रस के अनुकूल हों। इसीलिए आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रसों के लिए भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ बना दी हैं।

## (३) लाटानुप्रास

जहाँ पर शब्दावली तो वही हो और अर्थ भी एक-सा ही प्रतीत होता हो किन्तु अन्वय करने पर अर्थ की विभिन्नता प्रकट हो वहाँ लाटानुप्रास अलंकार होता है। जैसे,

तीरथ-व्रत-साधन कहा जो निसि-दिन हरि-गान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा बिन निसदिन हरि-गान।

इस दोहे की दोनों पङ्क्तियों में शब्द और अर्थ एक से ही दिखाई पड़ते हैं किन्तु अन्वय करने पर दोनों के तात्पर्य में भेद प्रकट हो जाता है। कवि कहता है कि यदि कोई व्यक्ति दिन-रात भगवान् का गुण-गान करता रहे तो उसे तीर्थ और व्रत आदि क्रियाओं के करने की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु इसके विपरीत यदि कोई तीर्थ और व्रत निरन्तर करे और वह दिन-रात भगवान् का गुण-गान न करे तो उसकी तीर्थ-यात्रा और व्रत आदि की क्रिया सब व्यर्थ है।

विशेष—यह अनुप्रास केवल वर्ण पर निर्भर न करके अर्थ पर भी निर्भर करता है।

## यमक

जहाँ एक ही शब्द अनेक बार आवे किन्तु प्रत्येक बार उसका अर्थ भिन्न-भिन्न हो, वहाँ 'यमक' अलङ्कार होता है। जैसे,

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
यह पाए बौरात नर, वह खाए बौराय॥

इस दोहे में 'कनक' शब्द दो बार आया है किन्तु प्रथम बार आए हुए 'कनक' का अर्थ है 'सोना' या 'धन' और दूसरी बार आए हुए 'कनक' का अर्थ है 'धतूरा', इसलिए यहाँ यमक अलङ्कार हुआ।

कहीं कहीं भङ्ग-पद यमक भी होता है, जब पद को तोड़कर भी पहले के समान दूसरा शब्द बन जाता है। जैसे,

करौ कसर तनिकौ नहीं कसरत निकौ निकाम।
कसरत में कस रत रहे पल्लक सरत हे काम॥

इस दोहे में 'कसरत' शब्द की आवृत्ति पाँच बार हुई है, किन्तु यह शब्द दो शब्दों के अंश को तोड़कर मिलाने से ही तीन बार बनता है और सब के अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं। इसी प्रकार

'तनिकौ' शब्द भी दो बार आया है और दूसरी बार 'कसरत' शब्द का 'त' और 'निकौ' के मिलन से वह बनता है। इसे भङ्गपद-यमक कहते हैं।

विशेष—अनेक आचार्यों ने इसके अनेक भेद बतलाए हैं और उनके उदाहरण भी या तो स्वयं बनाए हैं या कहीं न कहीं से ढूँढ़कर रख दिए हैं। किन्तु सच्चा 'यमक' का आनन्ददायक चमत्कार इन्हीं दोनों रूपों में पाया जाता है और इन्हीं रूपों में यमक की स्वाभाविकता भी रहती है। दूसरे भेदों में कवि को यत्न करके अलङ्कार लाना पड़ता है और कविता की स्वाभाविकता जाती रहती है।

---

## श्लेष

जहाँ एक ही शब्द में दो या दो से अधिक अर्थ छिपे हों वहाँ 'श्लेष' नामक अलङ्कार होता है।

यह अलङ्कार जहाँ केवल शब्दों में ही सीमित रहता है शब्दालङ्कार होता है और जहाँ पदगत होकर दो या दो से अधिक प्रस्तुत अर्थों का मुख्य रूप से बोध कराता है वहाँ अर्थालङ्कार हो जाता है।

*उदाहरण,—*

रावन-सिर-सरोज-बनचारी।
चलि रघुवीर सिलीमुख-धारी॥

इसमें 'सिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं, (१) बाण और (२) भौंरा। यह श्लेष केवल एक शब्द पर ही टिका है इसलिए इसे शब्द-श्लेष कहेंगे।

# अर्थालङ्कार

अर्थालङ्कार के भेदों को समझने के पूर्व उसकी कुछ बातों का जानना अत्यन्त आवश्यक है, यहाँ उन्हें बतला दिया जाता है।

**उपमेय**—जिस वस्तु का वर्णन कवि को अभीष्ट होता है उसे 'उपमेय' कहते हैं।

**उपमान**—उपमेय की समता के लिए जो वस्तु सामने लाई जाती है, उसे 'उपमान' कहते हैं।

**साधारण धर्म**—जिस गुण, वर्ण, क्रिया या आकार को लक्ष्य करके उपमा दी जाती है उसे 'साधारण धर्म' कहते हैं।

**वाचक**—जिस शब्द के द्वारा यह उपमा जताई जाती है उसे 'वाचक' कहते हैं। जैसे,

रामहिं लखन बिलोकत कैसे।
ससिहिं चकोर-किसोरक जैसे॥

इसमें 'लखन' (लक्ष्मण) उपमेय, 'चकोर-किसोरक' (चकोर का बच्चा) उपमान, 'बिलोकत' साधारण धर्म और 'जैसे' वाचक पद है।

अर्थालङ्कारों में 'उपमा' अलङ्कार का प्रमुख स्थान है और औपम्य-मूलक अलङ्कार ही सबसे अधिक होते हैं, अतएव सर्वप्रथम प्रायः उसी को आलङ्कारिकों ने स्थान दिया है।

## उपमा

जहाँ दो भिन्न-भिन्न पदार्थों में गुण, क्रिया, वर्ण आदि की समानता को देखकर तुलना की जाय।

यह दो प्रकार की होती है, (१) पूर्णोपमा और (२) लुप्तोपमा।

## पूर्णोपमा

जहाँ ऊपर कहे गए उपमा के चारों अङ्ग अर्थात् उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म वाच्य रूप में उपस्थित हों उसे पूर्णोपमा कहते हैं।

*उदाहरण*

बृन्दाबन बानक बिसद बगर्‍यो बहुरि बसन्त ।
बिबुध-बधूटी-सी बिमल, ब्रज-बनिता बिलसन्त ॥

यहाँ उपमा के चारों अंग प्रस्तुत हैं, अतः यह पूर्णोपमा हुई ।

## लुप्तोपमा

उपमा के चार अङ्गों ( उपमेय, उपमान, वाचक और साधारण-धर्म ) में से एक, दो अथवा तीन का जहाँ लोप हो उसे लुप्तोपमा कहते हैं । जैसे,

( १ ) कुन्द, इन्दु सम देह, उमारवन करुनाअयन ।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ॥

उपर्युक्त दोहे में शिव के 'देह' की उपमा 'कुन्द' और 'इन्दु' से दी गई है, 'सम' वाचक शब्द है किन्तु साधारण धर्म (उज्वलता) का वाच्य रूप में उल्लेख नहीं है । अतः यह धर्म-लुप्तोपमा हुई ।

( २ ) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुंदरी परी सी
धीरे धीरे धीरे ॥

( ३ ) तड़ित्-सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार उर चीर
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर
मुझे करता है अधिक अधीर
जुगुनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान ।

विशेष--इसमें कभी वाचक, कभी धर्म, कभी उपमान और कभी उपमेय लुप्त हो जाता है और कभी दो तथा कभी तीन अंगों तक का लोप हो जाता है । इस प्रकार इसके अनेक भेद होते हैं ।

## मालोपमा

जहाँ एक ही उपमेय के अनेक उपमान कहे जाते हैं वहाँ मालोपमा अलङ्कार होता है।

इसके दो भेद होते हैं :—

( १ ) भिन्न-धर्मा और ( २ ) अभिन्न-धर्मा।

### (१) भिन्नधर्मा

जहाँ उपमेय के जितने उपमान कहे जायँ उन सबके भिन्न-भिन्न धर्म कहे गए हों। जैसे,

( १ ) सफरी-से चञ्चल घने, मृग से पीन सुऐन।
कमल-पत्र-से चारु ये राधा जू के नैन॥

यहाँ नेत्रों की उपमा सफरी से चञ्चलता के कारण, मृग से विशालता के कारण, कमल-पत्र से सुन्दरता और आह्लादजनकता के कारण दी गई है। अर्थात् सभी उपमानों के धर्म भिन्न-भिन्न कहे गए हैं।

( २ ) चञ्चलता मृग की, मयङ्क की-सी मञ्जुलता।
बिजुलता की-सी द्युति मादक तिहारे में॥

( ३ ) राम काम सतकोटि सुभग तन।
दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा।
नभ सत कोटि अमित अवकासा॥
मरुत कोटि सत विपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव-त्रास॥

### (२) अभिन्नधर्मा

जहाँ एक ही धर्म के लिए अनेक उपमान लाए जायँ।

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
'भूषन' बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है॥

इसमें एक ही नाशक धर्म के ही कारण इन्द्र आदि उपमान लाए गए हैं।

---

## रशनोपमा

जहाँ पहले कहे गए उपमेय उत्तरोत्तर उपमान होते जायँ और इस प्रकार उपमाओं की एक शृङ्खला बन जाय। जैसे,

मति-सी नति, नति-सी बिनति, बिनती सी रति चारु।
रति-सी गति, गति सी भगति तो में पवनकुमार॥

यहाँ 'नति' पहले उपमेय कहा गया है, फिर वही 'बिनति' उपमेय का उपमान हो गया है, इसी प्रकार 'विनती' आगे चलकर उपमान बन गई है।

# प्रतीप

जिस कविता में उपमान को उपमेय के रूप में वर्णन किया जाय अथवा प्रसिद्ध उपमान का उपमेय द्वारा तिरस्कार दिखाया जाय वहाँ प्रतीप अलङ्कार होता है। जैसे,

(१) बिदा किये बटु बिनय करि फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाने जमुन-जल जो सरीर सम स्याम॥

यहाँ यमुना का श्याम जल उपमेय के रूप में लाया गया है

जो वास्तव में श्याम शरीर का वर्ण-साम्य के कारण प्रसिद्ध उपमान है।

( २ ) प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा।
सीय-बदन-सम लखि सुख पावा॥

यहा 'ससि' (चन्द्रमा) जो मुख का प्रसिद्ध उपमान है, उपमेय के रूप में कहा गया है।

विशेष – उपर्युक्त उदाहरण के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी प्रतीप अलङ्कार होता है। कहीं उपमान द्वारा उपमेय का अनादर, कहीं उपमेय द्वारा उपमान का अनादर, कहीं उपमान की व्यर्थता आदि दिखाने पर भी यह अलंकार माना जाता है। जैसे,

नँद-नन्दन से बिछुरे अंखियाँ उपमा-जोग नहीं।
कंज, खंज, मृग, मीन न हाहीं कबि-जन बृथा कहीं॥
कञ्ज होत मुँदि जात पलक में जामिनि होति जहीं।
खंज होत उड़ि जात छिनक में प्रीतम जित तितहीं॥
मृग होतीं रहतीं निसि बासर चंद-बदन ढिगहीं।
रूप-सरोवर तें बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं॥

यहाँ अनेक उपमानों द्वारा उपमेय का अनादर प्रकट किया गया है। इसी प्रकार अन्य ढंग से भी प्रतीप होता है।

## रूपक अलंकार

जहाँ उपमेय और उपमान का निषेध के बिना ही परस्पर अभेद रूप में वर्णन किया जाय अथवा जहाँ उपमेय को उपमान का ही रूप दे दिया जाय।

इस प्रकार इसके दो भेद होते हैं, 'अभेद' और 'तद्रूप'।

## अभेद रूपक

जहाँ उपमान और उपमेय में अभेद सम्बन्ध हो वहां अभेद रूपक होता है। जैसे,

मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र-दृग-सुमन फाड़ ।
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार ।

यहाँ 'दृग-सुमन' में अभेद रूपक है क्योंकि 'दृग' उपमान और 'सुमन' उपमेय दोनों में अभेद सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

## तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान का ही रूप देकर कवि सामने लाता है वहाँ 'तद्रूप रूपक' होता है । जैसे,

रच्यो बिधाता दुहुन लै बिगरी सोभा साज ।
तू सुन्दर रति दूसरी, यह दूजो सुरराज ॥

यहाँ नायिका जो उपमेय है वह 'रति' के रूप में दिखाई गई है और नायक 'सुरराज' के रूप में अङ्कित किया गया है ।

## अभेद और तद्रूप का अन्तर

तद्रूप रूपक में उपमेय और उपमान की भिन्नता दूसरा, अपर, अन्य आदि वाचक शब्दों द्वारा व्यक्त हो जाती है, किन्तु अभेद रूपक में किसी भी प्रकार दोनों की भिन्नता परिलक्षित नहीं होती ।

---

## उल्लेख

जहाँ पर वर्णनीय या उपमेय का अनेक प्रकार से उल्लेख अथवा वर्णन किया जाता है, वहाँ उल्लेख अलङ्कार होता है ।

यह दो रूपों में आता है ।

## प्रथम उल्लेख

प्रथम वहाँ जहाँ प्रस्तुत का अनेक लोग अनेक रूपों में वर्णन करें अथवा अनेक रूपों में उसे देखें या सुनें । जैसे,

जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है, प्रीतम जानत प्रीति॥

यहाँ राधा को उनकी सपत्नियों ने अनीति समझा, सखियों ने नीति के रूप में जाना, गुरुजनों ने उसे साक्षात् लज्जा और उसके प्रियतम कृष्ण ने मूर्तिमती प्रीति ही समझा। अर्थात् यहाँ एक ही राधा को अनेक व्यक्तियों ने अनेक रूपों में जाना।

## द्वितीय उल्लेख

जहाँ एक ही व्यक्ति अथवा वस्तु को एक ही व्यक्ति अनेक रूपों में देखे, समझे अथवा वर्णन करे, वहाँ दूसरा उल्लेख होता है। जैसे,

साधुन को सुखदानि है, दुर्जन को दुखदानि।
बैरिन विक्रम-हानिप्रद, राम तिहारे पानि॥

यहाँ एक ही व्यक्ति ने राम के 'पानि' (हाथ) का अनेक रूपों में वर्णन किया है। अतः यहाँ द्वितीय उल्लेख हुआ।

## स्मरण

जहाँ किसी वस्तु के देखने से उसी के समान रूपवाली किसी दूसरी पहले देखी हुई ज्ञात वस्तु का स्मरण हो आए वहाँ स्मरण अलङ्कार होता है। जैसे,

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा।
सीय बदन सम लखि सुख पावा॥

यहाँ चन्द्रमा के देखने से राम को सीता के स्मरण हो आने का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ स्मरण अलङ्कार हुआ।

## भ्रान्तिमान् अथवा भ्रम

जहाँ किसी वस्तु को देखकर उसीके समान किसी दूसरी वस्तु का भ्रम उत्पन्न हो। जैसे,

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन-मोर।
जानति हौं नन्दित करी इहिं दिसि नन्द-किसोर॥

दूर से कृष्ण को आते देखकर मोरों को बादल का भ्रम हो गया। इसलिए यहाँ भ्रान्ति अलङ्कार हुआ।

## सन्देह

जहाँ किसी वस्तु को देखकर उसी के समान दूसरे अनेक उपमानों की कल्पना की जाय किन्तु उन उपमानों में किसी एक का भी निश्चय न हो और बराबर सन्देह बना ही रहे, वहाँ सन्देह नामक अलङ्कार होता है। जैसे,

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं
लङ्क लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप कैधौं दामिनि-कलाप,
कैधौं चली मेरु सों कृसानु सरि भारी है।

यहाँ हनुमान की जलती हुई पूँछ को देखकर काल की जिह्वा, आकाश-बीथी में धूम्रकेतुओं के समूह, वीररस की तलवार आदि अनेक अन्य उपमानों के होने का सन्देह प्रकट किया गया है।

सूचना—स्मरण रहे कि भ्रान्तिमान में वर्णित उपमेय में किसी अन्य उपमान का निश्चित भ्रमात्मक ज्ञान हो जाता है किन्तु सन्देह में दूसरे उपमानों की सम्भावना अन्त तक बनी रहती है किसी भी उपमान के प्रति निश्चित भ्रम नहीं होता।

## अपह्नुति

जहाँ उपमेय को निषेधपूर्वक छिपाकर उसपर उपमान का आरोप किया जाता हो वहाँ अपह्नुति अलङ्कार होता है।

जैसे, (१)

तिय-मुख-रूप-समुद्र में, तिल पन्थी मत चेत।
बिरही बूड्यो जात है, सीस दिखाई देत॥

यहाँ पर कवि ने नायिका के मुख के तिल को निषेधपूर्वक छिपाकर उसपर (तिलपर) बिरही के सिर का आरोप किया है। इसमें 'मतचेत' अपह्नुति का वाचक शब्द है।

(२)

बेसरि-मोती-दुति-झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय॥

यहाँ पर नायिका की सखी यह कहकर उसकी भ्रान्ति मिटाती है कि तेरे अधर पर पान खाते समय चूना नहीं लगा है जिसे तू बार-बार वस्त्र से पोंछकर दूर करना चाहती है बल्कि यह तेरी बेसर नामक आभूषण में जड़े हुए मोती की दुति की झलक है।

## उत्प्रेक्षा

जहाँ कवि उपमेय को अपने दिये गए उपमान से भिन्न जानते हुए भी उसमें अपने कल्पित उपमान की सम्भावना करता है।

*वाचक शब्द--*

मनु, जनु, मानो, जानो, मानहु, मनहु, मनो, मेरे जान, इव आदि।

*उदाहरण*

( १ )

लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल-बिधु, जलद-पटल बिलगाइ॥

राजा जनक की पुष्प-वाटिका में राम और लक्ष्मण फूल लेने गए थे। वहाँ जब वे लता-भवन से, जहाँ थे, बाहर निकले, तब वे ऐसे प्रतीत हुए मानो दो चन्द्रमा बादल की घटा से निकलकर बाहर चमक उठे हों। यहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने राम और लक्ष्मण दोनों के मुख-मण्डल पर दो चन्द्रमा की सम्भावना की है।

( २ )

गोरे मुख पर स्याम तिल, ताको करौं प्रनाम।
मानहुँ चन्द बिलाइ के, पौढ़े सालिग्राम।

यहाँ कवि ने गोरे मुख के श्याम तिल में शालिग्राम की सम्भावना की है।

( ३ )

पावकमय ससि स्रवत न आगी।
मानहु मोहि जानि हतभागी॥

यहाँ सीता को राम के विरह में चन्द्रमा अग्निमय प्रतीत होता है। सीता कहती हैं कि अग्निमय होने पर भी जो चन्द्रमा अग्नि नहीं देता वह मानों मुझे भाग्यहीना समझ कर ऐसा कर रहा है। 'हतभागी' कारण की यहाँ सम्भावना की गई है।

सूचना—कहीं-कहीं वाचक शब्द के बिना भी उत्प्रेक्षा की जाती है। उसे प्रतीयमाना या गम्योत्प्रेक्षा अथवा लुप्तोत्प्रेक्षा कहते हैं। जैसे,

रमनी-मुख-मण्डल निरखि, राका-रमन लजाइ।
जलद, जलधि, सिव, सूर में राखत बदन छपाइ॥

यहाँ रमणी के मुख के सौन्दर्य से चन्द्रमा के लज्जित होने की सम्भावना की गई है। कारण भी दिखा दिया गया है कि इसी लिए वह बादल, समुद्र, शिव और सूर्य में मुहँ छिपाता फिरता है।

## अतिशयोक्ति

जहाँ उपमेय की अत्यन्त प्रशंसा के लिए लोक-सीमा के बाहर की कोई बात कही जाती है वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है।

इसके सात भेद कहे गए हैं, किन्तु मुख्य भेद तीन हैं।

( १ ) भेदकातिशयोक्ति, ( २ ) अक्रमातिशयोक्ति और ( ३ ) रूपकातिशयोक्ति।

( १ )

**भेदकातिशयोक्ति**—जहाँ पर उपमेय और उपमानों में भेद न होने पर भी उपमेय की विशेषता सूचित करने के लिए उसे उपमानों से भिन्न बताया जाय वहाँ भेदक नामक अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है।

*१—उदाहरण*

दीरघ अनियारे दृगनि किती न तरुनि समान।
वे नैना औरे कछू जिहिं बस होत सुजान॥

विशाल और नुकीले सभी नेत्र समान होते हैं। किन्तु इस दोहे में कवि ने अपनी प्रस्तुत नायिका के नेत्रों को "औरे कछू" कहकर औरों से उसकी भिन्नता और विशेषता प्रकट की है।

*२—उदाहरण*

अंबर तें अति ऊँची वहै अस ऊँडी रसातल हू तें अथारी।
तूहिन[1] के गिरि तें अति सीतल, पावक तें अति जारनहारी।
मारहु[2] तें कटु, मीठी सुधाहु तें, झीनी अनू[3] तें, सुमेरु तें भारी।
जानत जान, अजान न जानत, 'सागर' बात सनेह भी न्यारी॥

---

१—बर्फ़। २—विष। ३—अणु, कण।

## २—अक्रमातिशयोक्ति

जहाँ कारण और कार्य का क्रम से वर्णन न करके दोनों का एक साथ ही हो जाना कहा जाय, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है।

*१—उदाहरण*

उत गँकार मुख ते कढ़ी, इत निकसी जमधार।
'वार' कहन पायौ नहीं, भई कलेजे पार।

वीरवर अमर सिंह राठौर को बादशाह का साला सलावत खाँ 'गँवार' कहने वाला था। उसके मुहँ से ज्यों ही 'गँ' अक्षर निकला त्योंही राठौर की तलवार ने उसका काम तमाम कर दिया और वह 'वार' कह भी नहीं सका। यहाँ कारण और कार्य का आगे-पीछे होना न कहकर दोनों का एक साथ हो जाना कहा गया है।

*२—उदाहरण*

गज के मुहँ ते कढ़त ही हरि को नाम ललाम।
ग्राह-प्रान तन तें कढ़्यौ, गज पहुँच्यौ निज धाम॥

यहाँ गजराज के मुँह से हरि नाम का उच्चारण होने के साथ ही ग्राह का प्राण तजना रूपी कार्य का होना कहा गया है।

सूचना—चपलातिशयोक्ति और अत्यन्तातिशयोक्ति इसी अक्रमातिशयोक्ति के ही स्वरूप हैं। आचार्य मम्मट ने इसीलिये अतिशयोक्ति के केवल चार ही भेद किए हैं जब कि आगे के आचार्यों ने इसके सात भेद कर डाले हैं।

## २—रूपकातिशयोक्ति

जहाँ उपमान उपमेय को अपने में इस प्रकार छिपाले, या निगल ले कि उपमेय का उपमान से पृथक् अस्तित्व ही न दिखाई

दे, किन्तु अर्थ करते समय उपमान द्वारा निगले गए उपमेय बाहर निकलते जायँ वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार होता है।

*१—उदाहरण*

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सरपर निविर, गिरि पर फूले कंज, पराग।

यहाँ नायिका का नख-शिख वर्णन करते हुए कवि ने उसके अंगों के केवल उपमानों के ही क्रम से प्रस्तुत किया है।

## प्रतिवस्तूपमा

जहाँ पर उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों का एक ही साधारण धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा दो बार कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है।

*उदाहरण*

तजत न सज्जन बाहँ गहि कियौ जु अंगीकार।
अंक मयंक, भुजग भव, धरत धरनि मल-भार।

यहाँ ऊपर के वाक्य का धर्म 'तजत न' और नीचे के वाक्यका धर्म 'धरत' एक ही है जो भिन्न-भिन्न शब्दों में कहा गया है।

## दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों एवं उनके धर्मों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है।

सूचना—इसमें दोनों वाक्य या तो सामान्य होंगे अथवा दोनों विशेष। एक सामान्य और दूसरा विशेष नहीं होगा।

*उदाहरण*

भरतहि होइ न राज-मद, बिधि, हरि, हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काजी-सीकरन्हि छीर-सिन्धु बिनसाइ॥

यहाँ कविने उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों तथा 'राजमद न होना' और 'न बिनसाना' उनके धर्मों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव दिखलाया है। इसलिए यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार हुआ।

## निदर्शना

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों के अर्थों में सर्वथा भिन्नता होते हुए भी उन दोनों में उपमा की कल्पना की जाय वहाँ निदर्शना अलङ्कार होता है।

इसके तीन भेद कहे गए हैं—

### प्रथम निदर्शना

जहाँ ते, जे, जो, सो आदि वाचक शब्दों द्वारा उपमेय और उपमान वाक्यों के समान अर्थों में अभेद-सम्बन्ध आरोपित किया जाय। इसे **वाक्यार्थ वृत्ति** निदर्शना कहते हैं।

जे अघि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी।

यहाँ दोनों वाक्यों में असम्भव सम्बन्ध होने पर भी दोनों में एकता स्थापित की गई है। जे, ते वाचक द्वारा यह कल्पना की गई है।

### द्वितीय निदर्शना

जहाँ उपमेय के गुण का उपमान में अथवा उपमान के गुण का उपमेय में आरोप किया जाय। इसे पदार्थवृत्ति निदर्शना कहते हैं।

#### उपमेय के गुणों का उपमान में आरोप

जेहि दिन दसन-जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
रवि-ससि-नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन, पदारथ, मानिक, मोती॥

(१) अभवन्वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः। —मम्मट

पद्मावती के दाँतों की ज्योति का आरोप रवि, शशि, नक्षत्र, रत्नादिकों में किया गया है।

## तृतीय निदर्शना

जहाँ किसी की सत् या असत् क्रिया द्वारा अच्छी अथवा बुरी शिक्षा दी जाय वहाँ तृतीय निदर्शना होती है।

तजि आसा तन-प्रान की, दीपहिं मिलत पतङ्ग।
दरसावत सब नरन को, परम प्रेम को ढंग॥

यहाँ प्रेम-पथ पर चलकर सुखपूर्वक प्राण तजने की शिक्षा पतङ्ग द्वारा दी गई है।

## व्यतिरेक

जहाँ उपमेय में उत्कर्ष अथवा उपमान में अपकर्ष दिखाकर उपमेय की विशेषता प्रकट की जाय उसे व्यतिरेक अलङ्कार कहते हैं।

*उदाहरण*

सिवराज साहिसुव सत्थ नित, हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कए गयंद, यक्कइ तुरँग, किमि सुरपति सरवरि करइ॥

यहाँ शिव जी के पास लाखों हाथी, घोड़े दिखाकर एक ही हाथी और एक ही घोड़े वाले इन्द्र से विशेषता प्रकट की गई है।

## सहोक्ति

जहाँ सह, संग, साथ, समेत आदि वाचक शब्दों द्वारा एक ही क्रिया-पद दो अर्थों का ( एक का प्रधान और दूसरे का गौण रूप से ) बोधक हो वहाँ सहोक्ति होती है।

*उदाहरण*

दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं
उत्तर की आस जीव आस एक संग ही।

यहाँ एक ही 'तजै' क्रिया-पद उत्तर की आस और जीव-आस दोनों का पूरक या बोधक है।

जनकराज के राज में पहुँचि रमापति आप।
परसुराम के गर्व सँग भंज्यो हर को चाप॥

## परिकर

जहाँ विशेष्य के साथ साभिप्राय विशेषण दिए जायँ वहाँ परिकर अलङ्कार होता है।

*उदाहरण*

ससि-बदनी तोसौं कहत, सो यह साँची बात।
नैन-नलिन ये रावरे, न्याय निरखि नै जात।

यहाँ नायिका को 'ससि-बदनी' विशेषण देना साभिप्राय है क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा के देखने पर कमल नीचे की ओर झुक जाते हैं उसी प्रकार मुख को देखकर नेत्रों का झुक जाना कहा गया है।

## परिकराङ्कुर

जहाँ विशेष्य का प्रयोग साभिप्राय हो वहाँ परिकराङ्कुर अलङ्कार होता है।

*१—उदाहरण*

कियौ सबै जग कामबस, जीत्यौ जिते अजेइ।
कुसुमसरहिं सर-धनुष कर, अगहन गहन न देइ।

यहाँ 'अगहन' विशेष्य का प्रयोग कवि ने साभिप्राय किया है अर्थात् जो 'ग्रहण करने न दे'। यहाँ अगहन कामदेव को धनुष और बाण पकड़ने नहीं देता।

२—उदाहरण

हौं मनमोहन मोहे कहूँ न
बिधा बिमनैन की मानौ कहा तुम ?

यहाँ 'मनमोहन' शब्द साभिप्राय है अर्थात् जिसके मन में मोह न हो।

## अन्योक्ति

जहाँ केवल अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय, वहाँ अन्योक्ति अलङ्कार होता है।

१—उदाहरण

मधुकर, हम न हाहिं वे बेली।
जिनकों तुम तजि भजत प्रीति बिनु, करत कुसुम-रस-केली॥

यहाँ गोपियाँ मधुकर के प्रति अपनी बात कहकर कृष्ण के आचरण का बोध कराती हैं।

२—उदाहरण

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु यहि काल।
अली, कली ही तें बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

यहाँ कविवर बिहारी ने भौंरे को वाच्य रूप में अभिहित करके महाराज जयसिंह को उनकी यथार्थ स्थिति का बोध कराया है, जो अपनी छोटी रानी के प्रेम में पड़े राज्य-कार्य छोड़ बैठे थे।

## विभावना

जहाँ कार्य और कारण के सम्बन्धों का विचित्रतापूर्ण वर्णन हो, वहाँ 'विभावना' होती है।

*१—उदाहरण*

छूटे बार बार छूटे बारन तें लाल देखि
'भूषन' सुकवि बरनत हरषत है।
क्यों न उतपात होय बैरिन के झुण्डन में
कारे घन उमड़ि अँगारे बरषत हैं।

यहाँ काले बादलों रूपी कारण से अंगारों का बरसना रूप विपरीत कार्य की उत्पत्ति दिखलाई गई है इसलिए यहाँ विभावना अलङ्कार हुआ।

*१—उदाहरण*

तो सो को सिवाजी, जेहि दो सो आदमी सों जीत्यौ,
जँग सरदार सौ हजार असवार को॥

यहाँ केवल दौ सौ आदमियों द्वारा सौ हजार असवारों के जीतने का वर्णन करके कवि ने अधूरे कारण से कार्य की पूर्णता दिखाई है।

विशेष—इसी प्रकार अकारण से कार्य की उत्पत्ति, बिना कारण के कार्य होना, विपरीत कारण से कार्य होना आदि इस अलङ्कार में दिखा जाता है।

## असङ्गति

जहाँ कारण कहीं अन्यत्र उपस्थित हो और कार्य कहीं अन्यत्र हो जाय वहाँ असङ्गति अलङ्कार होता है।

*१—उदाहरण*

मनसिज माली की उपज, 'रहिमन' कही न जाय।
फूल स्याम के उर लगे, फल स्यामा के आय॥

यहाँ फूल ( प्रसन्नता ) रूप कारण कृष्ण के हृदय में है और उसका फल ( कुच ) राधा के उर में दिखाए गए हैं।

*२—उदाहरण*

दग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुर्जन हिये, दई नई यह रीति ॥

---

यहाँ कारण कहीं तथा कार्य कहीं और दिखाए गए हैं ।

## अर्थान्तरन्यास

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है । अर्थात् जहाँ सामान्य बात का समर्थन विशेष बात द्वारा अथवा विशेष का समर्थन सामान्य बात द्वारा किया जाय ।

'रहिमन' अँसुवा नयन ढरि, जिय-दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ ॥

यहाँ, आँसू जब हृदय से निकाल दिए जाते हैं तब वे मन का दुःख प्रकट कर देते हैं, इस बात का समर्थन यह कहकर किया गया है कि जिसे घर से निकाल दिया जायगा वह घर का भेद अवश्य ही प्रकट कर देगा ।

---

## उभयालङ्कार

जहाँ एक ही छन्द या वाक्य में एक से अधिक अलंकार आ जाते हैं वहाँ उभयालंकार होता है । इसके दो भेद हैं—

### ( १ ) संसृष्टि

जहाँ एक से अधिक अलंकार एक दूसरे से अलग अलग अस्तित्व रखते हुए तिल-तन्दुल-न्यायसे, दिखलाई पड़ें वहाँ संसृष्टि नामक अलङ्कार होता है ।

*उदाहरण*

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
तज्यौ मनो तारन-बिरद, बारक बारन तारि ॥

इसमें नीकी, फीकी तथा परी, गुहारि और बिरद, बारक, बारन में अनुप्रास अलंकार है। इसी प्रकार 'तज्यौ मनो तारन-बिरद' में उत्पेक्षा नामक अर्थालंकार है। दोनों अलग अलग अपना स्पष्ट अस्तित्व रखते दिखाई पड़ते हैं। अतः यहाँ संसृष्टि हुई।

## सङ्कर

जहाँ एक से अधिक अलङ्कार नीर क्षीर के समान इस प्रकार घुलमिल गये हों कि उनका अलग अलग अस्तित्व न दिखाई पड़े, वहाँ सङ्कर नामक उभयालङ्कार होता है।

*उदाहरण*

वचन सुधा मुख स्रवत इत, कोकिल कण्ठ लजात।
होत बिरह-बिष-बस अधिक, उत अलि स्यामल गात॥

इसमें रूपक अङ्ग और विरोध अङ्गी है। अतः यहाँ अङ्गागी-भाव सङ्कर हुआ।

# नवाँ अध्याय

## रस-प्रकरण

# रसों की संख्या

प्राचीन आचार्यों ने मानव-मन में सदा स्थायी रूप से रहने वाले दस प्रकार के रस बताए हैं—

(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) वीभत्स, (८) अद्भुत, (९) शान्त और (१०) वात्सल्य।

इन रसों के स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और सञ्चारी भाव पृथक् पृथक् गिनाए गए हैं।

## शृंगार रस

इसके दो भेद होते हैं, (१) संयोग और (२) विप्रलम्भ या वियोग।

**स्थायी भाव**—रति।

**विभाव** { **आलम्बन**—नायक और नायिका।
**उद्दीपन**—त्रिविध समीर, वन, उपवन, चन्द्र, चन्द्रिका, सरिता-तट, पुष्प आदि।

**अनुभाव**—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, स्वर-भङ्ग, अश्रु आदि। ये अनुभाव तीन प्रकार के होते हैं—

(१) **सात्विक**—वे अनुभाव या कार्य जिनके द्वारा हृदय में प्रेम-सञ्चार की प्रतीति हो जाती हो।

(२) **कायिक**—जिनको नायिका अपने आप जानबूझकर अङ्ग-सञ्चालन द्वारा प्रकट करती है। जैसे—कटाक्ष, भुज-क्षेप आदि।

(३) आहार्य—जिन्हें वाणी द्वारा व्यक्त किया जाता है।

## सञ्चारी भाव

ये भाव क्षण-स्थायी होते हैं, जो हृदय में क्षणभर के लिए आकर स्थायी भाव को कुछ अधिक वेगवान् बनाकर फिर विलीन हो जाते हैं।

## शृङ्गार रस के सञ्चारीभाव

असूया, शङ्का, श्रम, जड़ता, उग्रता, मोह, विषाद, चिन्ता, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, निद्रा, व्याधि आदि।

## संयोग शृङ्गार

नायक और नायिका जब एक दूसरे के पास रहते हैं अर्थात् जब वे परस्पर वियुक्त नहीं रहते तब उनके रति-भाव का चित्रण करनेवाली रचना **संयोग-शृङ्गार** की रचना कही जाती है। इसमें प्रिय-मिलन का हर्ष प्राप्त होता है।

*उदाहरण*

सखि हौं तो गई जमुना-जल को
सु कहा कहौं, बीर, बिपत्ति परी।
घहराइ के कारी घटा उँमड़ी
इतनेई में गागर सीस धरी।
रपट्यो पग घाट चढ्यो न गयो
कवि 'मंडन' ह्वै के बिहाल गिरी।
चिरजीवहु नन्द को बारो, अरी
गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी।

यहाँ वचन-विदग्धा नायिका द्वारा अपनी सुरति-क्रिया का संगोपन किया गया है। इसमें संयोग-शृङ्गार व्यंग्य है।

## विप्रलम्भ या वियोग शृङ्गार

जहाँ नायक और नायिका की विरहावस्था चित्रित की जाती है और जिसके द्वारा पाठक या श्रोता के हृदय में दुःखात्मक रति-भाव का उद्दीपन होता है उसे **विप्रलम्भ या वियोग** शृंगार कहते हैं।

**विप्रलम्भ के भेद**—अवस्था अथवा दुःखानुभूति के स्वरूप-भेद से विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद होते हैं—

**(१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास और (४) करुण।**

**पूर्वराग**—नायक और नायिका के परस्पर साक्षात्कार होने पर दोनों एक दूसरे से मिलने को उत्कण्ठित तो हो जाते हैं किन्तु परिवार या समाज के बन्धन के कारण एक दूसरे से मिल नहीं पाते। इस दशा में दोनों को अत्यन्त व्यथा प्राप्त होती है, इसी दशा का नाम **पूर्वराग** या **पूर्वानुराग** है।

*उदाहरण*

जब तें कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी वाके कहूँ सुजस-कहानी-सी।
तब ही तें 'देव' देखी देवता-सी, दौरति-सी
रीझति-सी खीझति-सी रूठति रिसानी-सी।
छोही-सी छली-सी छीन लीनी-सी छकी-सी छिन
जकी-सी टकी-सी लखी थकी थहरानी-सी।
बाँधी-सी बँधी-सी बिष-बूड़ति बिमोहित-सी
बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी-सी।

## मान

नायक द्वारा जब कुछ त्रुटि हो जाने पर नायिका रूठ जाती है और उससे बात तक नहीं करती तब उस दशा का नाम **मान** होता है और मान करनेवाली नायिका **मानिनी** कहलाती है।

*उदाहरण*

सखी के सँकोच, गुरु-सोच मृगलोचनी
रिसानी पिय सों जु उन नैकु हँसि छुयो गात।
'देव' वै सुभाव मुसकाय उठि गये
यहि सिसिकि सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात॥
को जानै री बीर बिनु बिरही-बिरह-बिथा
हाय हाय करि पछिताय ना कछू सुहात।
बड़े बड़े नैननि सों अँसुवा भरि भरि ढरि
गोरे गोरे मुख परि ओरो-लौं बिलानो जात॥

## प्रवास

नायिका को छोड़कर जब नायक परदेश चला जाता है तब उस दशा का नाम प्रवास होता है। ऐसी दशा को व्यक्त करने वाला शृंगार प्रवास-शृंगार कहलाता है।

*१—उदाहरण*

एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन वारी
तो सो और कौन मनै ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्रान छोटे बड़े तो समान
'घन आनँद' निधान सुखदान दुखियानि दै॥
जान उजियारे गुनभारे अति मोहि प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायँनि की हा हा नैंकु आनि दै॥

*२—उदाहरण*

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन
ता थल काँकरी बैठि चुन्यौ करैं।

जा रसना सों करीं बहुत बातनि
ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करैं ॥
'आलम' जौन से कुंजनि में
करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं ।
आँखिन में जे सदा रहते
तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ कर ॥

## करुण विप्रलम्भ

जब नायक और नायिका एक दूसरे से सदा के लिए पृथक् हो जाते हैं किन्तु फिर भी उनकी मिलन की आशा बनी रहती है ।

*उदाहरण*

'प्रवास' का प्रथम उदाहरण भी 'करुण' का उदाहरण ही है ।

परकाज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ ॥
'घन आनँद' जीवनदायक हौ कछु मेरियौ पीर हिये परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो असुँवानहु लै बरसौ ॥

---

## करुणरस

**स्थायी भाव**—करुण अथवा शोक ।

**आलंबन**—प्रिय-बन्धु, देश की दुर्दशा, स्वजन का मरण, दुखी व्यक्तिविशेष आदि ।

**उद्दीपन**—दाह-कर्म, यातनाएँ, दुःख-दर्शन आदि ।

**अनुभाव**—भूमि-पतन, रुदन, भाग्य की निन्दा, विवर्णता, उच्छ्वास, स्तम्भ आदि ।

**सञ्चारी भाव**—निर्वेद, मोह, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद आदि ।

*उदाहरण*

तन मन जिस पर मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनों में जायगा हाय ! दैव !!
सरसिज-तन हा हा ! कण्टकों में छिदेगा ?
घृत-मधु-पय-पाला स्वेद ही से सिचेगा !
खल पतित अभागे प्राण ! जाते नहीं क्यों ?
रहकर तन में वे हैं लजाते नहीं क्यों ?

## हास्य-रस

**स्थायी भाव**—हास

**आलम्बन विभाव**—मूर्ख या कोई हँसी की वस्तु।

**उद्दीपन**—विचित्र स्वरूप, अव्यवस्थित वेश-भूषा, टेढ़ी-मेढ़ी बातें, अङ्गों का विचित्र ढङ्ग से संचालन।

**अनुभाव**—आँखों का कुछ-कुछ मुँद जाना, ओठों का खिल जाना, हँसना, खिलखिलाना आदि।

**सञ्चारी भाव**—निद्रा, आलस्य, हर्ष, चपलता आदि।

*उदाहरण*

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी
महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी 'तुलसी'
सो कथा सुनि भे मुनि-वृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद-मञ्जुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू !
करुना करि कानन को पग धारे॥

# रौद्र रस

**स्थायी भाव**—क्रोध।

**आलम्बन**—शत्रु, देश अथवा जाति का द्रोही, दुराचारी आदि।

**उद्दीपन**—शत्रु की चेष्टाएँ, उसकी बातें, अस्त्र-शस्त्र-प्रहार, दुष्कर्म आदि।

**अनुभाव**—भ्रूभङ्ग, होंठ काटना, ताल ठोंकना, ललकारना, रोमाञ्च, स्वेद, कठोर भाषण आदि।

**सञ्चारी भाव**—गर्व, चपलता, मोह, अमर्ष, उग्रता, आवेग आदि।

*उदाहरण*

जौ राउर अनुसासन पावउँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावउँ।
काँचे घट इव डारउँ फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी।
तव प्रताप-महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।
तोरौं छत्रक-दंड जिमि, तव प्रताप-बल नाथ!
जौ न करौं प्रभु-पद-सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

# वीर रस

**स्थायी भाव**—उत्साह।

**आलम्बन विभाव**—शत्रु, प्रतिपक्षी।

**उद्दीपन विभाव**—शत्रु की चेष्टाएँ, शत्रु की ललकार, मारू बाजे, रण-कलकल, वीरगीत आदि।

**अनुभाव**—अङ्गों का फड़कना, आँखों का लाल होना, शस्त्र की खोज, सैन्य-संग्रह आदि

**संञ्चारी भाव**—गर्व, असूया, मति, उग्रता, तर्क, धैर्य, स्मृति आदि।

विशेष—वीर रस के, आचार्यों ने, चार प्रकार माने हैं—

**( १ ) धर्म-वीर, ( २ ) दानवीर, ( ३ ) दया-वीर, और युद्ध-वीर।**

*उदाहरण*

कतहुँ बिटप, भूधर उपारि पर-सेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन-चोट, चटकन-चकोट अरि उर-सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर चारिद जिमि गज्जत।

---

## भयानक रस

**स्थायी भाव**—भय।

**आलम्बन विभाव**—भयङ्कर दृश्य, भयङ्कर पशु ( सिंह, व्याघ्रादि )।

**उद्दीपन विभाव**—भयप्रद दृश्य या वस्तु का दर्शन, उनकी चेष्टाएँ आदि।

**अनुभाव**—कम्प, विवर्णता ( पीला पड़ जाना ), मूर्च्छा, स्वेद, रोमाञ्च आदि।

**सञ्चारी भाव**—आवेग, मोह, त्रास, दैन्य, शङ्का आदि।

**सूचना**—इसके आश्रय का पुरुष, बालक अथवा स्त्री होते हैं।

*( १ ) उदाहरण*

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

कैधौं ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर-तरवारि-सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप कैधौं दामिनि-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्यो, अब नगर प्रजारी है॥

(२) उदाहरण

भहरात झहरात दावानल आयो।
घेरि चहुँओर करि सोर अंदोर बन।
धरनि आकास चहुँपास छायो।
बरत बन-बाँस थरहरत कुस काँस
जरि उड़त बहु झाँस, अति प्रबल धायो।
झपटि झपटत लपटि, फूल फूटत पटकि
चटकि लट लटकि द्रुम फटि नवायो।
अति अगिनि झार भंभार धुंधार करि
उचटि अंगार झंझार छायो।
बरत बन-पात भहरात झहरात
अररात तरु महा धरनी गिरायो॥

## वीभत्स रस

**स्थायी भाव**—जुगुप्सा या घृणा।

**आलम्बन विभाव**—दुर्गन्धित स्थान या वस्तु, मांस-रुधिर-चर्बी आदि।

**उद्दीपन विभाव**—घृणित वस्तु में कीड़े पड़ना, मक्खियों का भनभनाना आदि।

**अनुभाव**—थूकना, मुहँ फेर लेना, आँखें मूँदना, नाक सिकोड़ना आदि।

**सञ्चारी भाव**—मोह, मूर्च्छा, आवेग, व्याधि आदि।

*( १ ) उदाहरण*

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेली बाँधे,
मुंड को कमंडल, खपर किए कोरि कै।
जोगिनी-झुटुङ्ग झुण्ड-झुण्ड बनीं तापसी-सी
तीर-तीर बैठीं वे समर-सरि खोरि कै।
सोनित सों सानि-सानि गूदा खात सतुवा-से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।
'तुलसी' बैताल, भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै॥

## अद्भुत रस

**स्थायी भाव**—आश्चर्य अथवा विस्मय।

**आलम्बन विभाव**—अलौकिक वस्तु, लोकोत्तर कर्म, विचित्र दृश्य आदि।

**उद्दीपन विभाव**—गुण-श्रवण, अवलोकन आदि।

**अनुभाव**—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गदवाणी, नेत्रों का बिकास आदि।

**सञ्चारी भाव**—वितर्क, आवेग, स्तम्भ, चापल्य, औत्सुक्य, भ्रान्ति आदि।

*उदाहरण*

लीन्हों उखारि पहार बिसाल
चल्यो तिहिं काल बिलम्ब न लायौ।

मारुत-नन्दन मारुत को, मन को,
खगराज को बेग लजायौ।
तीखी तुरा कहतो 'तुलसी' पै
हिये उपमा को समाउ न आयौ।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ
लीक लसी कपि यों धुकि धायौ॥

## शान्त रस

**स्थायी भाव**—निर्वेद या शम।

**आलम्बन विभाव**—संसार की निस्सारता और नश्वरता का ध्यान, परमात्मानुभूति।

**उद्दीपन विभाव**—सत्सङ्ग, सद्गुरु-प्राप्ति, शान्त आश्रम, तीर्थ-स्थान, एकान्त वन, सच्छास्त्रानुशीलन आदि।

**अनुभाव**—रोमाञ्च, पुलक, अश्रु आदि।

**सञ्चारी**—धृति, मति, हर्ष, स्मृति, जीव-दया आदि।

*उदाहरण*

चल फिर सकैं न, परे हैं फेर माहिं तऊ
बार-बार फेरे पाप-पथ तें फिरे नहीं।
घरी-घरी घर के घनेरे दुःख घेरे रहैं
तबहूँ रुचिर रुचि घेरे ते घिरे नहीं।
'हरिऔध' आयु-भोग-भाजन भरत जात
चित-भीरुता ते तऊ उभरि भिरे नहीं।
गई आँखि तऊ आँखि होति आँखि-वारन की
गिरे दाँत तऊ दाँत बिन के गिरे नहीं॥

# वात्सल्य रस

**स्थायी भाव**—वत्सलता या शिशुपरक रति।

**आलम्बन**—शिशु।

**उद्दीपन**—बालक की चेष्टाएँ या बाल-कर्म, भोलापन, तुतली बोली आदि।

**अनुभाव**—हँसना, रोमाञ्च, पुलक आदि।

**संचारी भाव**—चंचलता, मोह, स्मृति, विबोध, गर्व आदि।

*उदाहरण*

( १ )

मैया, मैं नहिं माखन खायौ !
भोर भई गैयन के पीछे मधुबन मोहिं पठायौ ॥

( २ )

मैया, कबहिं बढ़ैगो चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी भुइँ-लोटी।
काचो दूध पियावति पचि-पचि देति न माखन रोटी।
'सूरदास' चिरजिवौ दोउ भैया हरि-हलधर की जोटी ॥

( ३ )

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ !
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोहिं जसुमति कब जायौ ?
गोरो नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर,
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर।
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहीं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ?
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई, जनमत ही को धूत,
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

# रस-दोष

**स्वशब्दवाच्यत्व दोष**—जिस रस की कविता हो उसमें उस रस का अथवा उसके स्थायी भाव का नाम नहीं आना चाहिए। यदि रस या स्थायी भाव का नाम आएगा तो वहाँ स्वशब्दवाच्यत्व दोष होगा, क्योंकि रस या भाव कभी वाच्य नहीं हुआ करते वे सर्वदा व्यंग्य ही होते हैं। कविता पढ़ने से ही उसकी उद्दीप्ति पाठक के हृदय में होनी चाहिए।

*उदाहरण*

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगम्बर को
कामिनि जे आवैं हिमाचल के उछाह में।
× × ×
सीस पर गंगा हँसैं भुजनि भुजंगा हँसैं
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में॥

—पद्माकर।

इसमें हास्य रस नहीं होगा, उल्टे हँसि, हँसि की पुनरावृत्ति होने के कारण स्वशब्द-वाच्यत्व दोष भी आ गया है।

## रसाभास

(२) किसी रस के प्रकरण में उसका विरोधी रस नहीं आना चाहिए, अन्यथा वहाँ **रसाभास** नामक दोष होगा। जैसे, शृंगार के वर्णन में करुण-रस नहीं आना चाहिए।

## प्रमुख रस और उसके सहायक रस

| प्रमुख रस | सहायक रस |
|---|---|
| शृंगार रस | हास्य और अद्भुत रस |
| वीर रस | रौद्र और भयानक रस |
| शान्त रस | वीभत्स और करुण रस |

ऊपर दी हुई सूचिका के द्वारा यह जान लेना चाहिए कि किस रस का कौन रस पोषक है और कौन विरोधक। इसके परिज्ञान से कविता में रसाभास या भावाभास की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार पाठकों को करुण रस और करुण-विप्रलम्भ का अन्तर भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

# दसवाँ अध्याय

## काव्य-प्रकरण

# काव्य-प्रकरण

विभिन्न साहित्य के विभिन्न कवियों, आचार्यों और विद्वानों ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण कहे हैं।* आज भी कविता की नये-नये ढङ्ग से परिभाषाएँ बनती जा रही हैं। मैं नीचे कविता के स्वरूप को थोड़े में व्यक्त करूँगा।

## कविता क्या है ?

कविता वह वस्तु है जो मानव-मन को अनन्त काल से प्रभावित करने वाले रूपों, कर्मों को भाव-तत्त्व के पास पहुँचाकर बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तः प्रकृति का मेल कराके उसकी आवश्यक सत्ता का प्रसार करती है। कविता, मानव का सम्बन्ध अशेष सृष्टि के साथ जोड़ती है, उसे स्वार्थमयी पशुता से ऊपर उठाती है। उसमें एक इस प्रकार की रमणीयता होती है जो मानव के मन को अपने में मिलाकर आत्म-सत्ता-शून्य कर देती है। साथ ही यह भी सोच रखना चाहिए कि कविता का चरम लक्ष्य केवल मनोरञ्जन नहीं है। कविता द्वारा मनुष्य का मनुष्यत्व सुरक्षित रहता है, वह दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुःख में दुःखी होकर पूर्ण मनुष्यता प्राप्त करने की शक्ति संगृहीत करता है। यह सच है कि कविता का चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है। काव्य पाठक के हृदय का सम्बन्ध अपने से अपरिचित व्यक्ति, प्राणी और वस्तु के साथ जोड़ता है, इसलिए काव्य को 'अलौकिक आनन्ददाता' कहा गया है।

---

*(१) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।—आचार्य मम्मट

(२) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।—महापात्र विश्वनाथ

(३) रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।—पण्डितराज जगन्नाथ

(४) अलौकिकानन्ददाता शब्दः काव्य नामभाक्।

## काव्य के भेद

उत्तमता के विचार से काव्य के तीन भेद कहे गये हैं—
(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अधम।

**उत्तम काव्य**—जिस वाक्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थ या व्यङ्ग्यार्थ या प्रतीयमान अर्थ की प्रधानता होती है उसे 'उत्तम काव्य' कहते हैं।

**मध्यम काव्य**—जिस काव्य में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ समान कोटि के होते हैं उसे मध्यम काव्य कहते हैं।

**अधम काव्य**—जिस काव्य में केवल कोरा चमत्कार हो और वाच्यार्थ ही प्रधान हो उसे अधम काव्य कहा जाता है। चित्र-काव्य इसी के अन्तर्गत आता है। अलंकार का चमत्कार रखनेवाले काव्य, जिसको समझकर पाठक चमत्कृत हो उठते हैं और तुरत वाह, वाह कर बैठते हैं, अधम कोटि के ही हैं।

## स्वरूपभेद से काव्य के भेद

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद होते हैं—
(१) श्रव्य काव्य, और
(२) दृश्य काव्य।

**श्रव्य काव्य**—उसको कहते हैं जिसका रसास्वादन दूसरे से सुनकर या स्वयं पढ़कर किया जाय। आजकल स्वयं पढ़कर ही लोग काव्य का रसास्वादन करते हैं, इसलिए इसका नाम 'पाठ्यकाव्य' भी हो गया है। जैसे, राम-चरित-मानस, कामायनी आदि।

(२) **दृश्य काव्य**—उसे कहते हैं जिसका आनन्द अभिनय देखकर लिया जाय। लोग इसका आनन्द दर्शक के रूप में लेते

हैं। नाटक दृश्य काव्य होता है। जैसे, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि।

## श्रव्य काव्य के भेद

श्रव्य काव्य के दो भेद होते हैं, (१) प्रबन्ध, और (२) मुक्तक।

**प्रबन्ध काव्य**—प्रबन्ध काव्य उसे कहते हैं जिसमें कोई प्रमुख कथानक काव्य के आदि से अन्त तक शृङ्खलाबद्ध रूप में चला गया हो। कथावस्तु का क्रम कहीं बीच में टूटना नहीं चाहिए। जो अप्रधान या गौण कथाएँ बीच में आएँ, वे प्रधान कथा की सहायिका के रूप में हो रहें, प्रधान कथा को दबा न दें। इसमें प्रत्येक छन्द किसी भाव अथवा रस के उद्दीपन में क्षम नहीं होता। इसमें अनेक पंक्तियाँ रस या भाव से शून्य भी होती हैं।

## मुक्तक काव्य*

मुक्तक काव्य वह है जिसका केवल एक ही छन्द किसी भाव अथवा रस की व्यञ्जना में पूर्ण समर्थ हो। इसमें पूर्वापर अन्य छन्दों की अपेक्षा नहीं होती। वह स्वयं अपने में एक कथानक को छिपाए रहता है। इसलिए प्रबन्ध काव्य के किसी एक छन्द को अलग निकालकर उसे मुक्तक नहीं कहा जा सकता। कृष्णभक्ति-शाखा के कवियों के पद, शृंगारी कवियों की स्फुट रचनाएँ और आधुनिक युग के प्रगीत काव्य मुक्तक के ही अन्तर्गत आते हैं।

*उदाहरण*

**बीती विभावरी जाग री।**
**अम्बर—पनघट में डुबा रही तारा-घट ऊषा-नागरी।**
**खग कुल कुलकुल-सा बोल रहा, किसलय का अञ्चल डोल रहा,**

---

*मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्।

लो यह लतिका भी भर लाई मधु-मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमन्द पिये, अलकों में मलयज बन्द किये,
तू अब तक सोई है आली आँखों में भरे विहाग री।
बीती विभावरी जागरी।

—श्रीजयशंकर'प्रसाद'

## प्रबन्ध काव्य के भेद

प्रबन्ध काव्य दो प्रकार के होते हैं—

(१) महाकाव्य और (२) खण्डकाव्य।

*महाकाव्य—महाकाव्य किसी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक महापुरुष के सम्पूर्ण जीवन की कथा को लेकर चलता है। इसमें निम्नांकित बातों का होना आवश्यक है :—

(१) नायक पौराणिक अथवा ऐतिहासिक प्रख्यात पुरुष हो। उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

(२) सम्पूर्ण जीवन का कथानक चित्रित किया गया हो।

(३) आठ या आठ से अधिक सर्गों का होना आवश्यक है।

(४) वीर, शृंगार और शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता हो।

(५) सभी रसों का यथास्थान परिपाक हो।

(६) संध्या, प्रभात, दोपहर, दिन, रात का वर्णन हो।

(७) नदी, नद, नाले, समुद्र, पर्वत, वन, उपवन आदि सभी बाह्य दृश्यों का चित्रण हो।

(८) षट् ऋतु अथवा बारहों मास का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हो।

(९) प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित हो जाना चाहिए।

(१०) एक सर्ग के अन्त में दूसरे का आभास मिल जाय।

---

*सर्गबद्धो महाकाव्यम्।

(११) तपोवन, महर्षि-आश्रम, खग, मृग आदि का भी चित्रण आवश्यक है।

(१२) आदि से अन्त तक उसमें अनुज्झितार्थ-सम्बन्ध हो, जिससे पूरा काव्य पढ़ जाने पर सबका एक समन्वित प्रभाव ( unity of impression ) पाठक के हृदय पर पड़े।

---

## खण्ड काव्य

खण्ड काव्य वह है जिसमें किसी के जीवन का एक पक्ष-विशेष उपस्थित किया गया हो।

(१) जिसमें सात या उससे कम सर्ग या अध्याय हों।

(२) कथावस्तु काल्पनिक भी हो सकती है।

(३) अनुज्झितार्थ-सम्बन्ध का होना आवश्यक है।

(४) इसमें लिया गया जीवन का पक्षविशेष अपने में पूर्ण हो। अर्थात् किसी महाकाव्य का एक अंश खण्ड काव्य नहीं हो सकता।

(५) बाह्य दृश्य-चित्रण देश और काल के अनुसार आएँ।

## शैली के अनुसार काव्य-भेद

शैली के अनुसार काव्य के तीन भेद होते हैं—( १ ) गद्य-काव्य, ( २ ) पद्य-काव्य और ( ३ ) चम्पू काव्य।

**गद्य काव्य**—गद्य में रचा गया काव्य गद्य काव्य होता है। इसके वे ही भेद होते हैं जो ऊपर दिखाए जा चुके हैं। आजकल हिन्दी-साहित्य में स्फुट गद्य-काव्य लिखने की प्रणाली चल पड़ी है, जो श्री रवीन्द्र ठाकुर की बँगला से अनूदित अँग्रेजी की गद्य-बद्ध गीताञ्जलि की अनुकृति का परिणाम है।

---

*खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च। —साहित्य-दर्पण

**पद्य काव्य**—इसके विषय में ऊपर कहा जा चुका है।

**चम्पू काव्य**—गद्य और पद्य दोनों से युक्त काव्य को चम्पू काव्य कहते हैं। हिन्दी में श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' रचना चम्पू है।

गद्य में काव्य-रचना करने में कवि को विशेष सरलता होती है। उसमें छन्दों की शृङ्खला से कवि मुक्त हो जाता है और फिर वह अपनी भावनाओं को निर्मुक्त रूप में उपस्थित करने में किसी प्रकार के बन्धन का अनुभव नहीं करता। किन्तु सच तो यह है कि सच्चा प्रतिभाशाली कवि पद्य की नियमावली में ही स्वच्छन्दता और मुक्ति की साँस लेता है। उसकी भाव-राशि पद्य के महल में विशेष शोभा पाती है।

काव्य-वृक्ष
स्वरूप-विचार
श्रेणी-विचार
शैली-विचार
दृश्य
श्रव्य
उत्तम
मध्यम
अधम
गद्य
पद्य
चम्पू
प्रबन्ध
मुक्तक
खण्डकाव्य
महाकाव्य
गीत
प्रगीत
मुक्तक
रूपक
उपरूपक
नाटक
भाण
प्रकरण
व्यायोग
डिम
समवकार
प्रहसन
ईहामृग
अङ्क
वीथी

## गद्य-रचना के विभिन्न स्वरूप

गद्य में साहित्य-सर्जन के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। गद्य का क्षेत्र पद्य के क्षेत्र से अधिक व्यापक और विशाल है। गद्य-रचना के अनेक स्वरूप साहित्य में देखने को मिलते हैं। जैसे, (१) नाटक, (२) उपन्यास, (३) कहानी, (४) निबन्ध, (५) आलोचना, (६) गद्य-काव्य, (७) लक्षण-ग्रन्थ और (८) साहित्य का इतिहास।

## नाटक या रूपक

**नाटक की उत्पत्ति और उसकी आवश्यकता**—नाटक-रचना का आरम्भ-काल बहुत ही प्राचीन है। हमारे देश में यह प्रथा प्राचीन काल से रही है कि जब कृषक-वर्ग खेत का अनाज खलिहान और वहाँ से घर में लाते थे तब वे उस हर्ष में उत्सव मनाते थे। दीपावली और होली का त्योहार ठीक उसी समय पड़ते हैं जब किसान खेत का अन्न अपने घर में लाते हैं। आज भी हम देखते हैं कि होली के अवसर पर लोग तरह-तरह के स्वांग करते हैं और इस प्रकार जनता का मनोरञ्जन होता है।

ये ही प्रारम्भिक स्वांग बाद में चलकर परिमार्जित होते हुए नाटक के रूप में परिणत हो गए और उसका स्वरूप साहित्यिक हो गया।

कुछ विद्वानों का कहना है कि नाटक यूनान की देन है। भारत ने यह कला यूनान से पाई है। जिसके समर्थन में वे हमारे प्राचीन नाटकों में पर्दे के लिये प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द को प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि 'यवन' शब्द का प्रयोग यूनान-निवासियों के लिए होता था। इसलिए वहीं से यह 'यवनिका' शब्द आया। किन्तु दूसरे पक्ष के विद्वानों का कहना है कि शब्द 'यवनिका' नहीं बल्कि 'जवनिका' है, जिसका अर्थ है, वेग से जाने और आने वाली (जवेन वेगेन गच्छत्या-

गच्छतीति जवनिका । पर्दा एक दृश्य के समाप्त हो जाने पर वेग से गिरता है, इसीलिए पर्दे के लिए 'जवनिका' शब्द लाया गया है। दूसरी बात यह है कि नाटक-रचना भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से पाई जाती है।

प्रसिद्ध वैयाकरण और अष्टाध्यायी के निर्माण-कर्ता पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में 'कृशाश्व' और 'शिलालिन' दो प्रख्यात नाटक के आचार्यों का नाम लिया है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीय' नाटक की प्रस्तावना में 'भास' और 'सौमिल्ल' आदि नाटककारों का बड़ी ही श्रद्धा के साथ नाम लिया है और उन्हें महान् नाटककार बताया है। भास के अनेक नाटक प्राप्त भी हो चुके हैं और वे अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। भास, कालिदास और भवभूति जैसे नाटककार यूनानी साहित्य में नहीं पाए जाते, अतः यह कहना कि यह कला भारत ने यूनान से पाई है, कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकती।

## नाटक की आवश्यकता

स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य रसास्वादन के लिए पर्याप्त थे तब नाटक की आवश्यकता ही क्यों पड़ी ?

**कारण**—भारत में समाज चार भागों में आरम्भ से ही विभक्त था, समाज की सर्वाङ्गीण रक्षा के लिए। अतः अभिजात-वर्ग के लोग तो इतने शिक्षित होते थे और उन्हें इतना अवकाश भी प्राप्त हो जाता था कि वे श्रव्य-काव्य को पढ़ अथवा सुनकर अपनी मनस्तृप्ति कर सकते थे। किन्तु सेवा-वृत्तिवाला वर्ग जैसे शूद्र और स्त्रियाँ, इन्हें अवकाश ही नहीं मिल पाता था कि ये भी किसी प्रकार अपनी मनस्तृप्ति कर सकें। विशेष रूप से इसी बात को दृष्टि में रखकर नाटक की अवतारणा हुई, ताकि लोग थोड़े

समय में अपना मनोरञ्जन कर सकें और साथ ही उनके हृदय की रसात्मकता भी बनी रहे। इसीलिए नाटक की रचना करते समय लेखक को निम्नकोटि की जनता का भी बराबर ध्यान रखना पड़ता है।

## श्रव्य काव्य से दृश्य काव्य की श्रेष्ठता

संस्कृत में एक पुरानी उक्ति है 'काव्येषु नाटक-रम्यम्' अर्थात काव्यों में नाटक सबसे रम्य या उत्तम होता है। उसमें रमणीयता का श्रव्य या पाठ्य काव्य से आधिक्य होता है। इसका कारण यह है कि नाटक की सारी बातें दर्शक के सामने प्रत्यक्ष रूप में दिखाई जाती हैं और नाटक में प्रत्यक्षानुभूति का प्राधान्य होता है। इसके विपरीत पाठ्यकाव्य में परोक्षानुभूति की प्रधानता होती है। उसमें चित्रित पात्र परोक्षरूप में हमारे सामने आते हैं और नाटक में सभी पात्र प्रत्यक्ष रूप में सामने आकर अपनी कार्यावली द्वारा दर्शकों के हृदय पर सीधा प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि नाटक का स्थान श्रव्य काव्य से श्रेष्ठ हैं।

दूसरी बात जो नाटक की प्रमुख विशेषता है वह यह कि नाटक का आनन्द दर्शक और पाठक दोनों रूपों में लिया जा सकता है और लिया जाता है, जब कि श्रव्य कव्य केवल पढ़े ही जा सकते हैं उनका अभिनय नहीं हो सकता अथवा वे रङ्ग-मञ्च पर उपस्थित भी नहीं किए जा सकते। नाटक की सफलता बहुत कुछ रङ्गमञ्च की रचना और अभिनेता के अभिनय पर निर्भर करती है।

## नाटक के रस

प्रख्यात नव रसों में शान्त रस को नाटक में स्थान नहीं दिया जाता, शेष आठ रस उसमें स्थान पाते हैं। वीर अथवा शृङ्गार कोई भी नाटक का प्रधान रस होता है। 'प्रसाद' जी

का चन्द्रगुप्त वीररस प्रधान-नाटक है और स्कन्दगुप्त शृङ्गार-रस-प्रधान।

## नाटक के नायक

नाटक के नायक चार प्रकार के कहे गए हैं। कथावस्तु के अनुकूल इनमें से कोई भी नायक हो सकता है।

( १ ) धीरोदात्त, ( २ ) धीर ललित, ( ३ ) धीर शान्त और ( ४ ) धीरोद्धत।

**धीरोदात्त**—यह वीर और एक पत्नीव्रत होता है। शृङ्गार और वीर दोनों रसों का आलम्बन होता है।

**धीरललित**—वीर होते हुए भी अधिक शृंगारी होता है।

**धीरशान्त**—यह वीर और शान्त स्वभाव का होता है। इसमें चञ्चलता और प्रगल्भता नहीं होती।

**धीरोद्धत**—यह वीर होते हुए भी विशेष उद्धत होता है और अनेक स्त्रियों से प्रेम करता है।

## नाटक के तत्त्व

नाटक के प्रमुख तीन तत्त्व होते हैं।

( १ ) वस्तु, ( २ ) नेता या पात्र और ( ३ ) रस।

**वस्तु**—इससे तात्पर्य कथावस्तु या कथानक से है। यह दो या तीन प्रकार की होती है; पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक।

**नेता या पात्र**—नाटक में आए हुए पात्र ही नेता कहे जाते हैं। इनका चरित्र नाटककार अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

**रस**—ऊपर कहा जा चुका है कि नाटक में आठ ही रस होते हैं, शान्त रस को नाटक में स्थान नहीं दिया जाता।

## अर्वाचीनों के मत से नाटक के अन्य तत्त्व

यों तो नाटक में ऊपर कहे हुए तत्त्व ही प्रधान होते हैं, किन्तु अर्वाचीन समीक्षकों की दृष्टि से नाटक के सात तत्त्व होते हैं:—

( १ ) कथावस्तु, ( २ ) कथोपकथन ( ३ ) चरित्र-चित्रण, ( ४ ) घात-प्रतिघात, ( ५ ) कुतूहल, ( ६ ) अभिनयशीलता ( विस्तार या समय, भाषा और अङ्क-क्रम ) और ( ७ ) परिणाम, या सन्देश।

## नाटक की सन्धियाँ

नाटक में पाँच सन्धियाँ होती हैं। इनका आना नाटक में अनिवार्य होता है। ये नाटक के विकास-क्रम से निर्धारित की गई हैं—

( १ ) प्रारम्भ, ( २ ) प्रयत्न, ( ३ ) प्राप्त्याशा, ( ४ ) नियताप्ति और ( ५ ) फलागम।

**प्रारम्भ**—यह नाटक का बीज होता है। इसमें फल-प्राप्ति की उत्सुकता मात्र दिखाई जाती है। जिसके कारण नायक को कर्म-क्षेत्र में अवतरित होना पड़ता है।

**प्रयत्न**—फल-प्राप्ति के निमित्त नायक जो कर्म करता है उसे ही प्रयत्न कहते हैं। अभी फल-प्राप्ति का कोई भी निश्चय नहीं होता है और वह दृष्टि से दूर ही रहता है।

**प्राप्त्याशा**—जब फल-प्राप्ति की थोड़ी आशा हृदय में बँध जाती है और नायक उसकी कल्पना अपने मन में करने लगता है उस स्थल पर 'प्राप्त्याशा' नामक सन्धि होती है।

**नियताप्ति**—जब नायक के मन में फल-प्राप्ति का दृढ़ निश्चय हो जाता है और उसके मन में या दर्शक के मन में

फल-प्राप्ति के प्रति किसी प्रकार की आशङ्का नहीं रह जाती, तब 'नियताप्ति' नामक सन्धि होती है।

**फलागम**—जब नायक का अभिप्रेत अर्थ पूर्णतया सिद्ध हो जाता है, उस नियत फलप्राप्ति को फलागम सन्धि कहते हैं।

## सन्धियों की आवश्यकता

किसी भी नाटक में इन सन्धियों का समावेश यथास्थान होता है। इसी को विकास-क्रम कहते हैं। इनके क्रम में नाटक की कथा-वस्तु के प्रति दर्शक की कुतूहल की भावना बनी रहती है। इनके व्यतिक्रम में नाटक का नाटकत्व ही नष्ट हो जाता है और दर्शक की अरुचि उत्पन्न हो जाती है देखने से।

## अर्थ-प्रकृतियाँ

नाट्य-शास्त्र के रचयिता भरतमुनि के अनुसार नाटक में पाँच अर्थ-प्रकृतियों का होना आवश्यक होता है। वे ये हैं—

(१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी और (५) कार्य।

(१) **बीज**—कथावस्तु के आरम्भ से लेकर अन्त तक अर्थात् फलागम तक जो कथासूत्र बना रहता है उसे बीज कहते हैं।

(२) **बिन्दु**—प्रयोजनों के विच्छेद हो जाने पर भी जिसके द्वारा वृत्त समाप्ति तक अविच्छिन्न बना रहता है उसे ही 'बिन्दु' कहते हैं।

(३) **पताका**—प्रधान कार्य के उपकारक वृत्त या प्रासङ्गिक कथा-वस्तु को **पताका** कहते हैं।

( ४ ) **प्रकरी**—जिसका फल आधिकारिक वृत्त के लिये सीधे सीधे नहीं होकर परार्थ के निमित्त होता है। उसे प्रकरी कहते है।

( ५ ) **कार्य**—जो आधिकारिकवृत्त या कथावस्तु होती है और जिसको मुख्य रूप में अङ्कित करना नाटककार का उद्देश्य होता है, उसके निमित्त जो कर्म का समारम्भ होता है उसी को आचार्यों ने कार्य कहा है।

## नाटक में वर्जित दृश्य

आचार्यों ने कुछ ऐसे दृश्यों को नाटक में वर्जित कर दिया है, जो अस्वाभाविक, कुरुचिपूर्ण और आमङ्गलिक होते हैं।

जैसे, रंगमञ्च के निमित्त स्थान पर एक पात्र द्वारा दूसरे को जोर जोर से पुकारना दर्शकों को अस्वाभाविक लगेगा और इससे रसाभास की उत्पत्ति होगी। इसी प्रकार अन्य सभी वर्ज्य दृश्य हैं। निषिद्ध बातें ये हैं—

( १ ) दूर पर रहने वाले व्यक्ति को बुलाने के लिए नाटक में भी दिखाने के लिए वैसे ही **जोर से पुकारना**।

( २ ) **वध या हत्या**—किसी पात्र की रंगमंच पर हत्या नहीं दिखाई जानी चाहिए।

( ३ ) **युद्ध**—रंगमञ्च पर युद्ध और रक्तपात दिखलाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह अस्वाभाविक और कुरुचिपूर्ण दोनों ही है।

( ४ ) **राज्य या देश का विप्लव या विद्रोह**—युद्ध के ही समान अस्वाभाविक होगा।

( ५ ) **भोजन**—रंगमंच पर सब के सामने खाने-पीने का दृश्य सुरुचिपूर्ण नहीं और वह अस्वाभाविक भी होगा। इससे रसाभास होता है।

---

दूराह्वानं वधो युद्धं राज्य-देशादि-विप्लवः।

इसप्रकार नाटककार को उपर्युक्त बातों को दर्शकों के सामने प्रत्यक्ष न दिखाकर किसी पात्र के मुँह से उनका उल्लेख-मात्र करके छोड़ देना चाहिए। ये कार्य पर्दे के पीछे हो जाने चाहिएँ। जहाँ तक हो नाटक की रचना ऐसी हीनी चाहिए कि जिससे दर्शकों के ऐसा प्रतीत हो कि वे अभिनय नहीं देख रहे अपितु उन घटनाओं और परिस्थितिओं को प्रत्यक्ष देख रहे हैं जिसका वर्णन नाटककार ने किया है। यही नाटककार की सब से बड़ी सफलता है।

## उपन्यास

उपन्यास में किसी व्यक्तिविशेष का सम्पूर्ण जीवन आना चाहिए। अथवा ऐसी घटना जो सर्वाङ्गीण रूप से उसमें आगई हो। अनेक प्रकार के चरित्रों का उसमें समावेश होना चाहिए। भाँति भाँति के बाह्य दृश्य या प्रकृति-चित्र उसमें आने चाहिएँ।

### उपन्यास के प्रकार

**कथावस्तु की दृष्टि से** दो प्रकार के होते हैं।

( १ ) काल्पनिक, और ( २ ) लोक-प्रसिद्ध या ऐतिहासिक।

**वर्ण्य विषय की दृष्टि से—**

( १ ) सामाजिक, ( २ ) राजनीतिक और, ( ३ ) धार्मिक।

**शैली की दृष्टि से :—**

इस दृष्टि से नाटक बहुत प्रकार के हो सकते हैं, कम से कम पन्द्रह प्रकार के, उनका वर्णन यथास्थान होगा।

### सृष्टि-आरम्भ

उपन्यास-साहित्य का निर्माण हमारे साहित्य में पाश्चात्य देशों के साहित्य से प्रभावित होने पर हुआ। यह प्रणाली हमारे

यहाँ की अपनी नहीं है, किन्तु है अत्यन्त महत्वपूर्ण। हमारे यहाँ इस पथ पर लोग चले भी तो उन्होंने काव्य का ही निर्माण किया। **कादम्बरी** नामक 'बाण' का प्रख्यात काव्य एक प्रकार का उपन्यास ही है, इसी प्रकार हर्ष-चरित भी। पर कादम्बरी में पूरे काव्य गुण हैं, इसलिए वह उपन्यास नहीं कहा जा सकता और हर्ष-चरित जीवनी ( Autobigraphy ) ही कही जायगी।

**प्रयोजन और उपयोगिता**—कम पढ़ी हुई जनता के लिए उपन्यास ही अध्ययन की वस्तु है। इस साहित्य के द्वारा जनता के जीवन को जिधर चाहे समर्थ लेखक मोड़ सकता है। देश, और राष्ट्र के निर्माण में भी इसका बहुत बड़ा हाथ रहता है। आज भी अच्छे या बुरे उपन्यासों का प्रभाव जन-जीवन पर स्पष्ट देखा जा सकता है। इसलिए उपन्यासकार को मनीषी होना आवश्यक है, जिसके हृदय में देश-प्रेम और सच्ची मानवता हो, जिसके मानस में लोक—हित की सच्ची भावना हो, क्योंकि उपन्यासकार के ऊपर बहुत बड़ा दायित्व आ जाता है। आज किसी भी साहित्य में और किसी भी देश में उपन्यासों की जितनी माँग है उतनी साहित्य के किसी दूसरे अंग की नहीं।

## उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास के प्रमुख छः तत्व होते हैं--

( १ ) **कथावस्तु**—वृत्त या कथानक को कहते हैं। यह कथा-धारा के आदि से अन्त तक अटूट क्रम से चलती है। यह दो प्रकार की होती है—

( १ ) आधिकारिक और ( २ ) प्रासङ्गिक।

**आधिकारिक**—मुख्य कथानक को आधिकारिक कथा कहते हैं, जिसको आदि से अन्त तक सफलता के साथ निभाना लेखक

का मुख्य उद्देश्य होता है। जिस कथा के साथ नायक का सम्बन्ध रहता है।

**प्रासङ्गिक**—आधिकारिक कथा के बीच-बीच में आने वाली गौण कथाएँ जो प्रधान कथा से उसी प्रकार सम्बन्ध रखती हैं जिस प्रकार किसी बड़ी नदी से उसकी सहायक नदियाँ सम्बन्ध रखती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि ये प्रासङ्गिक कथाएँ मुख्य कथावस्तु की उपकारिका होती हैं।

### ( २ ) कथोपकथन ( Diologue )

पात्रों का परस्पर वार्तालाप ही कथोपकथन कहा जाता है। इसका होना भी उपान्यास की रोचकता की वृद्धि के साथ-साथ ही उसमें स्वाभाविकता ला देता है।

### ( ३ ) चरित्र-चित्रण ( Charactzation )

**चरित्र-चित्रण**—नायक तथा अन्य पात्रों का चरित्र अपने आप कथा-धारा में निर्मित होता चलता है। यह ऐसा एक तत्व है जिसका निर्माण लेखक के हाथों में होता है। जानबूझकर लेखक अपने पात्रविशेष के चरित्र को आदर्श अथवा घृणास्पद बना देता है। यही एक ऐसी वस्तु है जिसका प्रभाव पाठकों पर पड़ता है और अपरिपक्व बुद्धि के पाठक अपनी रुचि उसी प्रकार की, अपनी क्रिया उसी प्रकार की बनाने की चेष्टा करते हैं, इस चेष्टा या प्रयत्न में वे बन भी सकते हैं और बिगड़ भी।

### ( ४ ) घात-प्रतिघात

यह एक ऐसा तत्व है जो नाटक, उपन्यास और कहानी सब का प्राण है। इसके द्वारा पाठक किसी एक निश्चय पर नहीं पहुँच पाते कि नायक को बुरा या भला किस प्रकार का परिणाम-भागी होना पड़ेगा।

### ( ५ ) कुतूहल ( Sensation )

घात-प्रतिघात की मात्रा के ही कारण पाठकों में आगे होने-वाली घटनाओं की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है जब तक कि वे परिणाम तक न पहुँच जायँ। लेखक की सफलता इसी में है। कवीन्द्र रवीन्द्र के 'गोरा' नामक उपन्यास में यह तत्त्व प्रधान होकर अन्त में पाठकों को आश्चर्यचकित कर देता है।

### ( ६ ) उद्देश्य

प्रत्येक साहित्यिक कृति के निर्माण के पीछे कोई न कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। प्रायः यह व्यंग्य हुआ करता है। यदि व्यंग्य नहीं है तो वाच्य होकर वह अस्वाभाविक हो जाता है। इसलिए स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए लेखक को चाहिए कि वह इस तत्व को सांकेतिक ही रहने दे।

## उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास के भेद

लक्ष्य की दृष्टि से उपन्यास दो प्रकार के होते हैं अथवा यों कहा जा सकता है कि आजकल इस क्षेत्र में दो दल (Schools) हो गए हैं—

( १ ) **आदर्शवादी**—इस दल के लेखकों का कहना है कि हमें उपन्यास में ऐसे चरित्र उपस्थित करने चाहिएँ जिनका निर्माण आदर्श की भूमि पर हुआ हो अर्थात् ऐसा होना चाहिए। इनका विश्वास संकेत द्वारा चरित्र-निर्माण पर नहीं है, उससे पाठक बुरे पथ पर जा सकते हैं। हमारे साहित्य के प्रख्यात उपान्यासकार श्री प्रेमचन्द आदर्शवादी लेखक थे।

( २ ) **यथार्थवादी**—इस दल का उद्देश्य है कि जैसा समाज है हमें ठीक-ठीक उसी का चित्रण कर देना चाहिए। उसमें अपनी ओर से कुछ मिलाना ठीक नहीं। उसे देखकर

पाठक यह निर्णय अपने आप कर लेंगे कि कौन-सा पथ हमारे हित के लिये है और कौन अहित के लिए। इस दल के लेखक हैं, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री बेचनशर्मा 'उग्र' आदि।

## कहानी

इसमें किसी पात्र के जीवन के एक अंश की झाँकी रहती है। कहानी में तीन या चार से अधिक पात्र नहीं होने चाहिएँ। जो अंश उसमें चित्रित हो वह अपने में पूर्ण हो। जो तत्त्व उपन्यास में प्रदर्शित किए गए हैं वे ही कहानी में भी होते हैं।

**उपयोग**—कहानी में जीवन के विभिन्न अङ्गों का चित्रण होता है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य जीवन के कर्म-क्षेत्र में इस प्रकार उलझा हुआ है कि उसे अध्ययन का अवसर ही नहीं मिल पाता। इसलिए आज के मानव को मानस की खूराक कहानियों के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। जितनी ही छोटी कहानी हो उतनी ही वह अच्छी समझी जाती है। कहानी-क्षेत्र में रूस का सर्वश्रेष्ठ स्थान है, वहाँ इतनी छोटी कहानियाँ बनी हैं जो छः या सात पंक्तियों में और कुछ तो इससे भी कम में ही समाप्त हो जाती हैं।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## शब्द-शक्तियाँ

# शब्द-शक्तियाँ

साहित्य-शास्त्र में शब्द तीन प्रकार के कहे जाते हैं—

(१) वाचक, (२) लाक्षणिक और (३) व्यञ्जक।

इसी प्रकार उपर्युक्त तीनों प्रकार के शब्दों के अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) वाच्य, (२) लक्ष्य और (३) व्यंग्य।

उपर्युक्त शब्दार्थ काव्य में होते हैं, सर्वत्र नहीं।

( सूचना ) इन शब्दों से यह नहीं समझना चाहिए कि वाचक शब्दों में केवल वाच्यार्थ, लक्षक शब्दों में केवल लक्ष्यार्थ और व्यञ्जक शब्दों में केवल एक ही व्यङ्ग्यार्थ हुआ करता है बल्कि तीनों प्रकार के अर्थों में कोई न कोई 'व्यंग्यार्थ' भी अवश्य रहता है।

## (१) वाचक शब्द

जिस शब्द के द्वारा उसका लोक-विदित अर्थ प्रकट हो उस शब्द को **वाचक** कहते हैं।

### मुख्यार्थ और अभिधाशक्ति

किसी शब्द के मुँह से निकलते ही या पढ़ते ही तुरत जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे **मुख्यार्थ** कहते हैं। यह मुख्यार्थ जिस व्यापार के द्वारा विदित होता है उसे **'अभिधा'** कहते हैं। सामान्य बातचीत में अथवा कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि में मुख्यार्थ ही का प्रयोजन होता है और वहाँ 'अभिधा शक्ति' ही व्यवहार में लाई जाती है। किन्तु काव्य में अभिधाशक्ति की प्रधानता नहीं होती। जिस काव्य में मुख्यार्थ ही कवि का लक्ष्य

होता है उसे अधम कोटि का काव्य कहते हैं। उच्चकोटि के काव्यों में लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है।

## (२) लक्षक या लाक्षणिक शब्द

जहाँ कवि द्वारा चुने गए शब्द के द्वारा उसके अभीष्ट अर्थ की सिद्धि न हो, केवल उसका सम्बन्ध बना रहे, और वाच्यार्थ के द्वारा उस अभीष्ट अर्थ की सिद्धि में बाधा पड़ती हो, तब उस अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ या वाच्यार्थ को छोड़कर जिस शब्द-शक्ति के बल पर एक भिन्न अर्थ लगाया जाय उसे 'लक्षणा शक्ति'[1] कहते हैं और ऐसे शब्द को जो अपने वाच्यार्थ द्वारा अभीष्टार्थ में बाधा पहुँचाता है, **लक्षक या लाक्षणिक शब्द** कहते हैं।

ऊपर जिस अभीष्टार्थ की बाधा की चर्चा की गई है, वह बाधा मुख्यतः दो कारणों से सामने आती है, एक तो जब कोई शब्द आरम्भ में अपना जो वाच्यार्थ रखता है उसको छोड़कर लोग उसका प्रयोग दूसरे अर्थ में करने लगते हैं तब उसका **अर्थ रूढ़िगत हो जाने के कारण** और दूसरा, **किसी मुख्य प्रयोजन के कारण** (जब कि शब्द अपने वाच्यार्थ को छोड़ने को बाध्य होता है)।

### लक्षणा के भेद

लक्षणा के मुख्य दो भेद होते हैं—

**(१) रूढ़ि लक्षणा और (२) प्रयोजनवती लक्षणा।**

**रूढ़ि लक्षणा**—जब कोई शब्द अपने पहले के वाच्यार्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाता है और लोग

---

१. मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया॥ काव्य-प्रकाश, १२ सू०

उसका उसी रूढ़ि अर्थ में ही प्रयोग करने लगते हैं तब वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है।

*उदाहरण*

कुशल करों में मृदुल तूलिका लेकर
चित्र बनानेवाले।
मेरे मानस की छवि कर दो
अङ्कित प्राण जुड़ाने वाले॥

उपर्युक्त कविता में 'कुशल' शब्द का जो प्रयोग हुआ है, वह अपने वाच्यार्थ (कुश को ग्रहण करने वाला) को छोड़कर प्रवीण या चतुर के रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अतः यहाँ रूढ़ि लक्षणा हुई।

## प्रयोजनवती लक्षणा

जहाँ किसी शब्द के वाच्यार्थ को किसी प्रयोजन विशेष के कारण छोड़कर एक दूसरे ही अर्थ की कल्पना करली जाती है वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

*उदाहरण*

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान;
*उमड़कर आँखों से चुपचाप*
*बही होगी कविता अनजान!*

इस कविता में कवि कहता है कि 'कवि की आँखों से पहले-पहल कविता उमड़कर बही होगी।' किन्तु हम देखते हैं कि आँखों से कविता नहीं बहा करती बल्कि आँसू बहा करते हैं। अतः कवि के अभिप्रेत अर्थ में वाच्यार्थ द्वारा बाधा पहुँची और तब प्रयोजनवश हमने यह अर्थ किया कि कविता का जन्म

आँखों के आँसुओं की तरह वेदना से होता है। अतः यहाँ **प्रयोजनवती लक्षणा** हुई।

( सूचना ) यहाँ एक बात जान लेनी चाहिए कि रूढ़ि लक्षणा में व्यंग्यार्थ नहीं होता और प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंग्यार्थ होता है।

पुनः इन दोनों लक्षणाओं के दो भेद हो जाते हैं—

**(१) शुद्धा और (२) गौणी**

## शुद्धा लक्षणा

जहाँ विषयी या आरोप्यमाण और विषय या आरोप्य में कार्य-कारण या जन्य-जनक भाव होता है वहाँ **शुद्धा लक्षणा** होती है।

## गौणी लक्षणा

जहाँ विषयी और विषय में सादृश्य-सम्बन्ध ( समानता ) होता है वहाँ **गौणी लक्षणा** होती है।

पुनः शुद्धा लक्षणा और गौणी लक्षणा के दो-दो भेद हो जाते हैं।

## शुद्धा लक्षणा के भेद

( १ ) **सारोपा,** ( २ ) **साध्यवसाना,** ( ३ ) **लक्षण** और ( ४ ) **उपादान शुद्धा सारोपा**—जहाँ पर विषयी ( आरोप्यमाण ) और विषय ( आरोप्य ) दोनों स्पष्टरूप से कार्य-कारण रूप में भिन्न-भिन्न कहे जायँ और एक ही आधार पर स्थित हों वहाँ **सारोपा शुद्धा लक्षणा** होती है।

*उदाहरण*

*सरलपन ही था उसका मन,*
*निरालापन था आभूषन।*

कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।

'पल्लव'

उपर्युक्त कविता में कवि कहता है कि उसका ( प्रेयसी का ) मन सरलपन ही था। मन से ही सरलता उत्पन्न होती है अतः दोनों में जन्य-जनक भाव होने के कारण **शुद्धा लक्षणा** हुई। मन और सरलपन दोनों का अपना-अपना पृथक् अस्तित्व है, अतः यहाँ **'शुद्धा सारोपा'** लक्षणा हुई। इसी प्रकार आगे की पंक्ति में जहाँ कवि कहता है।

*'निरालापन था आभूषन।'*

यहाँ निरालापन और आभूषण दोनों अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं और दोनों समानाधिकरण हैं, साथ ही दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध भी है। निरालापन के कारण कवि की प्रिया का सौंदर्य बढ़ जाता था अतः यहाँ **शुद्धा सारोपा लक्षणा** हुई।

## शुद्धा साध्यवसाना

जहाँ विषयी ( आरोप्यमाण ) और विषय ( आरोप्य ) दोनों में अभेद-सम्बन्ध हो, अर्थात् विषय विषयी में इस प्रकार घुल-मिल जाय कि उसका पृथक् अस्तित्व ही विलीन हो जाय वहाँ **शुद्धा साध्यवसाना** लक्षणा होती है।

जैसे, यदि कहा जाय कि **घृत ही आयु है** ( आयुरेव घृतम् ) तो यहाँ अर्थ यह हुआ कि घी ही आयु का कारण है, अर्थात् आयु में ही घृत मिल गया है, विलीन हो गया है। उसका अपना आयु से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है, अतः यहाँ **शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा** हुई।

*उदाहरण*

*यही तो है बचपन का हास,*
*खिले यौवन का मधुप-विलास।*
*प्रौढ़ता का वह बुद्धि-विकास,*
*जरा का अन्तर्नयन-प्रकाश।*
*जन्म-दिन का है यही हुलास,*
*मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास!*

उपर्युक्त रचना में कवि ने स्नेह को ही **बचपन का हास, खिले यौवन का मधुप विलास, प्रौढ़ता का बुद्धि-विकास और जरा का अन्तर्नयन-प्रकाश** कहा है। अर्थात् स्नेह के ही कारण बचपन का हास छूटता है, यौवन का विलास भी स्नेह के ही कारण होता है, स्नेह के ही कारण प्रौढ़ता में बुद्धि विकसित होती है और वृद्धावस्था में अन्तश्चक्षु प्राप्त हो जाते हैं; इसका अपना कोई पृथक् अस्तित्व नहीं हैं। यहाँ विषयी (हास, विलास, बुद्धि-विकास और अन्तर्नयन प्रकाश) में स्नेह घुलमिल कर विलीन हो गया है। अतः उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों में **शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा** हुई।

## (३) लक्षण लक्षणा

जहाँ कोई शब्द किसी विशेष अर्थ की सिद्धि के लिए आत्म-समर्पण कर देता है अपने अस्तित्व को खो देता है वहाँ 'लक्षण लक्षणा' होती है।

*यथा—*

महात्मा गांधी के दर्शन के लिए *सारा नगर चल पड़ा।*

यहाँ 'सारा नगर चल पड़ा' इस वाक्य का वाच्यार्थ यह हुआ कि विशाल भवनों और सड़कों से सुसज्जित नगर एक चेतन

प्राणी की भाँति चल पड़ा। किन्तु नगर कोई चेतन पदार्थ नहीं है, अतः 'नगर' का अर्थ करना पड़ा 'नगर-वासी'। यहाँ नगर-वासियों के लिए नगर ने आत्म-समर्पण कर दिया, अतः यहाँ **लक्षण लक्षणा** हुई। इसी प्रकार 'कुआँ खारी है' आदि वाक्यों में भी लक्षण लक्षणा समझनी चाहिए।

*उदाहरण*

अपनी ही छवि से विस्मित हो,
*जगती* के *अपलक लोचन*।
सुमनों के पलकों पर सुख से,
करने लगे सलिल—**मोचन**।

यहाँ 'जगती के अपलक लोचन' पद में यह तात्पर्य निकालना पड़ा कि 'जगतीवाले मनुष्यों की अपलक आँखें' अतः अपेक्षित अर्थ की सिद्धि के लिए 'जगती' शब्द का आत्म-समर्पण होने के कारण यहाँ **लक्षण लक्षणा** हुई।

## ( ४ ) उपादान लक्षणा

जहाँ कोई लाक्षणिक शब्द अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए औरों का आक्षेप कर ले, अर्थात् जहाँ केवल एक अंश मात्र से अर्थ की सिद्धि न होती हो वहाँ उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य पदार्थों का भी उपादान या आक्षेप कर लिया जाता है। इस प्रकार दूसरेका आनयन कर लेने वाली शुद्धा लक्षणा को, **उपादान लक्षणा**[1] कहते हैं।

यथा

**गांधी टोपियाँ चली आ रही हैं।**

यहाँ 'गांधी-टोपियों' के निर्जीव एवं गमन-व्यापार में अक्षम

१. स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थे स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणञ्चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा ॥ का० प्र०, उ०, सू० १२

होने के कारण यह आक्षेप करना पड़ा कि 'गांधी टोपीधारी पुरुष' चले आ रहे हैं। अतः यहाँ **उपादान लक्षणा** हुई।

*उदाहरण*

पैर मेरे रुक गये होते कभी
राह में ही एक ठंडी साँस ले,
किन्तु तुम मुझको बढ़ाती ही गईं
प्राण में रोदन, अधर पर हास ले।

उपर्युक्त कविता में मेरे पैर एक ठंडी साँस ले राह में ही रुक गये होते, कहा गया है, जिसका अर्थ हुआ 'मैं राह में ही एक ठंडी साँस लेकर रुक गया होता और मंजिल तक पहुँच भी नहीं पाता" इतना आक्षेप करना पड़ा, अन्यथा वाच्यार्थ से अर्थव्यक्ति नहीं हो सकती थी। अतः इस कविता में उपादान नामक **शुद्धा लक्षणा** हुई।

## गौणी लक्षणा

जहाँ विषयी और विषय दोनों में सादृश्य सम्बन्ध हो अर्थात् जहाँ आरोप्यमाण और जिसका आरोप किया जाय दोनों में उपमान और उपमेय का सम्बन्ध हो, वहाँ **गौणी लक्षणा** होती है।

यथा--

सब सुत-बधू देवसरि-बारी।

'महाराज दशरथ की चारों कुलबधुएँ गंगा-जल हैं' अर्थात् वे सब गंगा-जल के समान शुद्ध, निर्मल और शीतल स्वभाववाली हैं। यहाँ विषयी देवसरि-बारि ( गंगा-जल ) और विषय सुतबधुएँ हैं, इन दोनों में सादृश्य-सम्बन्ध है। अतः यहाँ **गौणी लक्षणा** हुई।

इसके दो भेद हैं:--

(१) गौणी सारोपा और (२) गौणी साध्यवसाना।

**गौणी सारोपा**—जहाँ विषयी और विषय दोनों समानाधिकरण होते हुए अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व रखते हों वहाँ **गौणी सारोपा** होती है। ऊपर दिया गया उदाहरण ( सब सुतबधू देवसरि-बारी ) गौणी सारोपा का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार जहाँ किसी मनुष्य पर मनुष्येतर ( बृहस्पति, इन्द्र, स्वर्गीय कोई महापुरुष अथवा बैल, कुत्ता, गधा ) जीव का आरोप किया जाता है वहाँ 'गौणी सारोपा' लक्षणा होती है।

## गौणी साध्यवसाना

जहाँ पर विषयी ( आरोप्यमाण ) में विषय इस प्रकार विलीन हो जाय कि उसके पृथक् अस्तित्व का पता ही न चले वहाँ **गौणी साध्यवसाना** होती है।

*उदाहरण*

*धूलि की ढेरी में अनजान।*
*छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥*

यहाँ कवि ने **संसार का आरोप धूलि की ढेरी पर किया है** और संसार धूलि की ढेरी में विलीन हो गया है, साथ ही **असारता** को दोनों का धर्म बनाकर दोनों में सादृश्य भी स्थापित किया है। इसी प्रकार **मधुमय गान में सुन्दर वस्तुओं को** अध्यवसित कर दिया है और दोनों की साम्य-भावना भी व्यञ्जित है अतः यहाँ **गौणी साध्यवसाना** लक्षणा हुई।

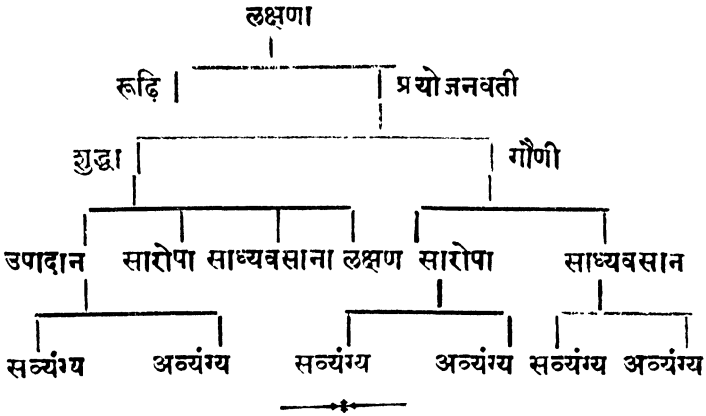


## व्यञ्जना शक्ति

लोक-ज्ञान और काव्यानुशीलन से प्रखर बुद्धिशाली पुरुषों को किसी कविता में स्थान-स्थान पर वाच्यार्थ से भिन्न जो एक प्रकार की अर्थ प्रतीति होती है, उसके कारण-रूप व्यापार का ही नाम **व्यञ्जना** है।

उच्चकोटि के काव्यों में जो व्यंग्य होते हैं उन्हें सामान्य या मोटी बुद्धि के पाठक समझ नहीं सकते, क्योंकि उनकी बुद्धि उस अभीष्ट गहराई तक पहुँच ही नहीं सकती।

*वक्ता, श्रोता, काकु ( ध्वनि-विकार ), वाक्य, वाच्य ( वाच्यार्थ ), प्रकरण, स्थान, काल आदि का परिज्ञान रखने वाला ही व्यंग्य को समझ सकता है।*

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान अर्थ को ही **व्यंग्यार्थ** कहते हैं। इसी शक्ति को **ध्वनि** कहते हैं और व्यंग्यार्थ को **ध्वन्यार्थ**।

*उदाहरण*

सखि हौं तो गई जमुनाजल को,
सु कहा कहौं बीर विपत्ति परी।

घहराय के कारी घटा उमड़ी,
इतनेई में गागरि सीस धरी।
रपट्यो पग घाट चढ्यौ न गयौ,
कवि 'मंडन' ह्वै के बिहाल गिरी।
चिरजीवहु नन्द को बारो, अरी,
गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी॥

नायिका जमुना के तट पर जल लेने गई थी, वहाँ एकान्त था। उसी समय वहाँ उसका प्रियतम आ पहुँचा और दोनों ने वहीं रति-क्रीडा की। तदनन्तर जब दोनों अभी वहाँ से अलग नहीं हुए थे तभी एक दूसरी युवती उधर से आ निकली और उसने दोनों को पास-पास कुछ बातें करते देख लिया। इतने ही में दोनों ने अपना-अपना रास्ता पकड़ा। जब नायिका उस युवती के पास पहुँची तब उसे यह भय हुआ कि मेरे धूल में सने और मसले हुए वस्त्रों को देखकर कहीं वह यह न समझ जाय कि हम दोनों ने सम्भोग-सुख लिया है, इसी को छिपाने के लिए वह कहने लगी कि मैं जल्दी घाट पर चढ़ने के कारण अचानक गिर पड़ी, इतने ही में कृष्ण उधर से आ निकले और मेरी बाँह पकड़कर मुझे खड़ी किया और उसी गिरने के कारण मेरे कपड़े मसल उठे हैं।

इस कविता में रति-क्रिया का गोपन व्यंग्य है।

(२) उदाहरण

सीख सिखाई न मानति है,
घर ही बस संग सखीन के धावै।
खेलति खेल नए जल में;
बिन काम वृथा कत जाम बितावै।
छोड़ि के साथ सहेलिन को,
रहि कै कहि कौन सवादहि पावै।
कौन परी यह बानि, अरी,
नित नीर भरी गगरी ढरकावै॥

यहाँ वयःसन्धि की देहरी पर पहुँची हुई नायिका को घड़े के जल में अपनी आँखों को देखने से मछलियों का भ्रम होता है और इसीलिए वह भरे हुए घड़े का पानी नित्य गिराकर मछलियों को पाना चाहती है। यहाँ भ्रान्ति अलंकार व्यंग्य हुआ और व्यंग्यार्थ हुआ कि उस अज्ञात-यौवना-नायिका की आँखें मछली के समान हैं। इसी प्रकार और भी स्थलों पर कहीं **लक्षणा मूलक ध्वनि** होती है और कहीं **अभिधा मूलक**।

व्यञ्जना के दो भेद होते हैं:—

(१) **लक्ष्यक्रम व्यंग्य** और (२) **अलक्ष्यक्रम व्यंग्य**।

अत्यन्त **उत्तम कोटि के काव्य में अलक्ष्य क्रम व्यंग्य** ही पाया जाता है क्योंकि अत्यन्त कुशल काव्य-मर्मज्ञों की ही अन्तर्दृष्टि वहाँ तक पहुँच सकती है।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## निबंध का स्वरूप

# निबंध का स्वरूप

गद्य-लेखन के अनेक प्रकार के स्वरूपों में निबन्ध भी उसका एक विशिष्ट स्वरूप है। गद्य-बद्ध लेख दो प्रकार के होते हैं।

( १ ) प्रबन्ध और

( २ ) निबन्ध।

**प्रबन्ध** उस प्रकार के लेख को कहते हैं जिसका बन्ध या आकार विस्तृत हो। इसमें लेखक को अपनी बात समझाने के लिए विशाल अवकाश होता है। किसी विषय पर लिखा गया एक प्रबन्ध पुस्तकाकार हो सकता है। इसमें समय अथवा स्थान की कोई परिमित सीमा नहीं निश्चित होती। अतः साधारण कोटि का लेखक भी प्रबन्ध-रचना सफलता के साथ कर सकता है।

**निबन्ध** उस रचना को कहते हैं जिसमें लेखक अपने भावों अथवा विचारों को सुसंगठित और परिष्कृत रूप में एक परिमित सीमा के भीतर अभिव्यक्त कर दे। साथ ही उसकी भावगत एवं विचारगत कोई बात छूटने भी न पाए। निबन्ध शब्द का अर्थ ही है जिसका बन्ध या रचना गँठी हुई हो। इसकी रचना के लिए भाषा पर पूर्ण अधिकार एवं संयम की नितांत आवश्यकता होती है। जिस विषय पर लेखक निबन्ध-रचना के लिए प्रस्तुत हो उस पर उसका पूर्ण पाण्डित्य अपेक्षित होता है। भाषा से व्यर्थ और फालतू के शब्दों का अनिवार्य रूप से बहिष्कार होना चाहिए। इसीलिए निबन्ध-रचना विशिष्ट विद्वानों का ही काम है, जो अभ्यास एवं अध्ययन द्वारा परिपुष्ट हो सकती है।

## विषय-सीमा

निबन्ध का विषय अनन्त सृष्टि की कोई भी वस्तु हो सकती है। निबन्धकार अपनी रुचि एवं अध्ययन के अनुसार अपने

निबन्ध के लिए कोई भी विषय चुन सकता है। उसकी तर्क-प्रणाली प्रौढ़, विचार-धारा परिष्कृत, रुचि प्रशस्त और अभिव्यक्ति की शैली आकर्षक होनी चाहिए। मानव मनोभाव भी निबन्ध के विषय हो सकते हैं और होते हैं। जैसे, हर्ष, शोक, प्रेम, घृणा, उत्साह, क्रोध, लज्जा आदि।

## शैली

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, निबन्ध में समास-शैली काम में लाई जाती है। व्यास-शैली प्रबन्ध में ही व्यवहृत होती है। निबन्धों में ही लेखकविशेष की शैली निर्धारित होती है। इसमें लेखक का पूर्ण व्यक्तित्व उतर आता है। गूढ़ एवं जटिल विचारों की अभिव्यक्ति में उसके मस्तिष्क की सुलझन, विषय पर अधिकार, रुचि-सौष्ठव, स्वभाव-गाम्भीर्य आदि का पता चलता है।

## निबन्ध के प्रकार

विषय की अनेकता और निबन्धों के स्वरूप को दृष्टि में रख कर उसे चार भागों या प्रकारों में विभक्त किया गया है।

(१) विचारात्मक,
(२) भावात्मक,
(३) वर्णनात्मक और
(४) कथात्मक।

यद्यपि निबन्धों के श्रेणी-विभाजन में यदि अधिक सूक्ष्मता से काम लिया जाय तो और भी अनेक भेद निकल सकते हैं किन्तु प्रमुख रूप से ये चार ही प्रकार सर्वमान्य हैं और मोटे रूप में सभी निबन्ध इन्हीं के अन्तर्गत पर्यवसित हो जाते हैं।

## विचारात्मक निबन्ध

लेखक जब किसी विषय को लेकर उस पर अपने विचारों

के ही अनुकूल पाठक के विचारों को भी बना लेने का प्रयत्न करता है तब वह निबन्ध विचारात्मक हो जाता है। अपने विचार के प्रतिपादन के लिए लेखक तर्क-शैली को अपनाता है और अपने विचारों की प्रौढ़ता प्रौढ़ भाषा में व्यक्त करता जाता है। इस प्रकार के निबन्धों की भाषा गठी हुई, प्राञ्जल और गम्भीर होती है। अनावश्यक शब्दों का इसमें पूर्णतया बहिष्कार होता है। विचार-प्रकटन की प्रणाली अटूट और क्रमबद्ध होती है। अन्य प्रकार के निबन्धों की अपेक्षा इसमें विषयान्तर को सर्वथा बचाना पड़ता है। कहीं-कहीं गम्भीर विचारों को पूर्ण रूप में उपन्यस्त करने में वाक्य लम्बे हो जाते हैं। छोटे-छोटे वाक्य ऐसे निबन्धों के अनुकूल नहीं होते।

लेखक का ध्यान मुख्य विषय को विविक्त एवं स्पष्ट करने की ओर अधिक होता है। वह इस बात की चेष्टा करता रहता है कि पाठक का ध्यान प्रस्तुत विषय से हटकर दूसरी ओर न चला जाय। प्रस्तुत विषय का ज्ञान जितना ही अधिक होता है लेखक उतना ही ऐसे निबन्धों को प्रस्तुत करने में सफल और अपने विचारों के पाठक के मन में बैठा देने में समर्थ होता है।

ऐसे निबन्धों की रचना करने वाले समर्थ लेखक हिन्दी में **आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सरदार पूर्ण सिंह और पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी** हैं।

## भावात्मक निबन्ध

जब लेखक अपने हार्दिक भावों को भावुकता के साथ प्रस्तुत करता है, जिसमें विचारों की अपेक्षा भावों का ही चित्रण उसे अभीष्ट रहता है तब उस भावात्मक निबन्ध की संज्ञा प्राप्त होती है। इस प्रकार का निबन्ध पाठक के हृदय के भावों को ही उद्दीप्त करता है, जिस प्रकार कविता भावों को उद्दीप्त करती है। यह तो

एक सर्व-विदित बात है कि जब लेख में भावुकता का प्राधान्य रहता है तब वह बौद्धिकता से मेल नहीं खाता, यही बात भावात्मक निबन्ध में भी चरितार्थ होती है। कविता के ही समान इसमें अलङ्कार-योजना, मनोहर पदावली, लाक्षणिकता और अलौकिकता रहती है। भावानुकूल ही इसकी भाषा भी कहीं गतिमती, कहीं मंदगति और कहीं मधुर और कहीं आक्रोशमयी हो जाती है। इसमें प्रकृति का चित्रण भी भावात्मकता से भरा होता है। लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम को लेकर हिन्दी में भावात्मक निबन्ध लिखे गए हैं। श्री वियोगीहरि, श्री रायकृष्णदास आदि ने इस प्रकार के निबन्ध प्रस्तुत किए हैं।

## वर्णनात्मक निबन्ध

वर्णनात्मक निबन्ध में लेखक किसी वस्तु अथवा व्यापार का चित्रण करता है। उस वस्तु, स्थान, दृश्य अथवा व्यापार का कहीं तो वह पूर्णतया स्वरूप उपस्थित करके पाठक को उसका परिचय देता है और कहीं वह उसके प्रति पाठक के हृदय में प्रेम, आनन्द, करुणा आदि भावों को जाग्रत करता है। इस प्रकार के निबन्ध या तो जानकारी की प्राप्ति की दृष्टि से लिखे जाते हैं या भावोन्मेष की दृष्टि से, अतः लेखक इन्हें आकर्षक बनाने के लिए कला का आश्रय विशेष रूप से ग्रहण करता है।

तद्विषयक भावों को उद्दीप्त करने की दृष्टि से लिखे गए निबन्ध में लेखक ऐसे दृश्य उपस्थित करेगा, उसका वर्णन इतना भाव-प्रवण होगा कि पाठक के हृदय में उस वस्तु, दृश्य या स्थान आदि के प्रति तदनुकूल भाव उद्दीप्त हो उठेगा। कहीं वह उसे रंगीन, सुन्दर, आकर्षक करके सामने लाएगा, कहीं उसका भयङ्कर रूप उपस्थित करके पाठक के मन में भय अथवा उत्साह को जगाएगा, कहीं उसमें अलौकिकता का आनयन करके पाठक को विस्मय-विमुग्ध बना देगा। कहीं किसी की दयनीय स्थिति का साङ्गोपाङ्ग

स्वरूप दिखाकर उसके प्रति करुणा जगाएगा और कहीं किसी के अन्यायपूर्ण चरित्र को दिखाकर पाठक के मन में उसके प्रति रोष और क्रोध को जगा देगा। विषय एवं भावानुकूल इसकी भाषा भी कहीं मृदुल, मन्थर गति वाली, कहीं प्रवाहमयी, कहीं संस्कृत की कोमल-कान्त-पदावली से युक्त होगी। निबन्ध वर्णन-प्रधान होने के कारण लेखक को भाषा पर विशेष ध्यान देना पड़ता है।

कभी कभी किसी प्रस्तुत विषय को लेकर लेखक उसका वर्णन करते हुए उसके स्वरूप को भी अङ्कित करता जाता है और साथ ही पाठक के हृदय में प्रेम, करुणा आदि भावों को भी जगाता चलता है। दोनों विशेषताओं के समन्वित हो जाने के कारण ऐसे निबन्ध बड़े ही मार्मिक हो उठते हैं। **राजकुमार श्री रघुवीरसिंह** ऐसे निबन्ध प्रस्तुत करने में विशेष सफल हुए हैं। उनके निबन्धों में वर्णन के साथ-साथ भावात्मकता का अद्भुत समन्वय हुआ है।

## कथात्मक निबन्ध

कथात्मक निबन्ध किसी घटना अथवा चरित्र विशेष को लेकर प्रस्तुत किया जाता है। इसमें किसी एक घटना अथवा अनेक घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन रहता है। लेखक अपनी प्रतिभा के बल क्रमशः उसे विकास प्रदान करता जाता है। इसमें कथावस्तु का होना अनिवार्य होता है। किसी छोटी से छोटी घटना को भी प्रतिभाशाली लेखक अत्यन्त आकर्षक और महान बनाकर उपस्थित करता है। यहीं उसकी सबसे बड़ी विशेषता परिलक्षित होती है।

कोई-कोई विद्वान् **राजकुमार रघुवीरसिंह** के निबन्धों को कथात्मक निबन्ध में ही परिगणित करते हैं।

उदाहरण के लिए कुछ निबन्धों का अंकन आगे किया जावेगा।

# भारत और लोकतंत्र-शासन

( १ ) लोकतंत्र का उद्‌गमस्थान।
( २ ) सच्चे लोकतंत्र की रूपरेखा।
( ३ ) लोकतंत्र की असफलता।
( ४ ) भारतीय परिस्थिति।
( ५ ) निष्कर्ष।

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकतंत्र का उद्‌गम प्लेटो, सुकरात एवं अरस्तू से ही माना है। सर्वप्रथम योरोपीय देशों में यूनान और इटली में इस प्रकार की शासनप्रणाली थी। पश्चात् अन्य योरोपीय राज्यों में इसका प्रचार हुआ। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति ने इस व्यवस्था को अपनाकर योरोप में एक नए युग का सूत्र-पात किया। रोजुआ और बेन्थम की कृतियों ने इसके लिए मार्ग प्रशस्त किया था।

भारतीय आर्ष-ग्रन्थों में लोकतंत्र शासन के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत में बहुत से लोकतंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक राज्य थे। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि भारत में यह व्यवस्था बहुत पूर्व से रही है। काल-चक्र के वेग से वह लुप्त हो गई।

लोकतंत्र की व्यवस्था में बहुसंख्यक जनता के सुखों की ओर ध्यान दिया जाता है। पर यदि विभिन्न लोकतंत्रात्मक देशों की शासनप्रणालियों पर दृष्टिपात किया जावे तो ज्ञात होगा कि इस प्रकार के शासनों ने ही पूँजीवाद, औपनिवेशिक-प्रतिस्पर्द्धा, अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्ध, दमन और अन्याय तथा स्वार्थ के युग का बीजारोपण किया है। प्रजा-सत्तावाद की आड़ में इस प्रकार के शासक समस्त विश्व का दोहन कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। यही कारण है कि इस प्रकार के शासन से

सर्वहारा वर्ग असन्तुष्ट है। किसान, मजदूर और मध्यम वर्ग के व्यक्तियों का हित इससे कभी भी सम्पादित नहीं हो सकता।

योरोप तथा अन्य पाश्चात्य देशों में प्रजातंत्र बनाम लोकतंत्र का यही स्वरूप आज सर्वत्र विराज रहा है, जहाँ शताब्दियों से इस प्रकार का शासन चलाया जा रहा है। फिर भारत की बात क्या है अभी तो यह लोकतंत्रात्मक शासन सीख रहा है।

भारत में लोकतंत्र की सफलता में सन्देह है। यहाँ के आदर्श अन्य पाश्चात्य देशों से भिन्न हैं। अतः शासन-व्यवस्था का कोई नया मार्ग ढूँढ़ना श्रेयस्कर होगा। लोकतंत्र शासन के अनुसार बालिग होने पर सभी स्त्री-पुरुष शासन में मतदान देकर भाग ले सकते हैं। मतदान की व्यवस्था पर विचार करने से इसकी कठिनाई का अनुमान लगाया जा सकता है।

लोकतंत्र की सफलता के लिये प्रत्येक नागरिक का अपने देश की राजनीति में दिलचस्पी लेना आवश्यक है। इस प्रकार का कार्य शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। भारत में यह परिस्थिति कई वर्षों में आवेगी। जनता इसके लिए तैयार नहीं है। वह अधीर हो चली है। पढ़े-लिखे शिक्षित लोग भी स्वार्थी तथा पदलोलुप हो रहे हैं फिर लोकतंत्र को सफल कौन बना सकता है?

किसी भी सत्य का निर्णय बहुमत से कभी भी ठीक नहीं हो सकता। संभव है कि स्वार्थवश बहुमत गलत निर्णय कर दे, क्योंकि निर्वाचित सदस्यों का व्यक्तिगत स्वार्थ होता ही है। वे देवता नहीं हैं कि अपने को मिटा कर दूसरों की सेवा करें। ऐसे लोग समाज में इने-गिने ही होते हैं।

प्रजातंत्र पार्टियों के बल पर चलते हैं। इससे आपसी संघर्ष, दाँव-पेंच और मनमुटाव बढ़ जाता है। पदों की लालसा से शासन में भ्रष्टाचार फैल जाता है। व्यक्ति स्वार्थ-साधन में लग

जाता है। जनहित की उपेक्षा की जाती है। निर्वाचित सदस्य कुछ ही वर्ग की सेवा कर पाते हैं। फिर लोकतंत्र से बहुसंख्यक व्यक्तियों को लाभ कैसे होगा ?

भारत में लोकतंत्र आज तानाशाही का रूप धारण किए हुए है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ की तानाशाही एक पार्टी से सम्बन्धित है, एक व्यक्ति से नहीं। एक बार शक्ति पाकर अधिकारी इसका दुरुपयोग कर रहे हैं। जनता के धन का दुरुपयोग हो रहा है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था हो। निर्वाचित सदस्य केवल संस्तुति के बल पर ही मंत्रिपद या किसी अधिकारपूर्ण स्थान पर न रखे जाँय। जनता को अधिकार हो कि अनुचित कार्य करने वाले निर्वाचित प्रतिनिधि को हटा सके। ऐसा होने पर ही कुछ अंशों में लोकतंत्र सफल हो सकता है।

## भगवान् बुद्ध

१—जीवन-वृत्त (क) जन्म (ख) बाल्यावस्था (ग) वैराग्य-सत्य का ज्ञान।

२—गौतम बुद्ध के उपदेश।

३—धार्मिक क्रान्ति की आवश्यकता।

४—निर्वाण की प्राप्ति।

५—बौद्ध धर्म का वास्तविक रूप और महत्व।

भगवान् बुद्ध का जन्म ५७८ ई० पू० के लगभग शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु में हुआ था। इनके पिता का नाम शुद्धोधन और माता का नाम महामाया था। इनकी ग्यारह दिन की आयु में ही इनकी माता का देहावसान हो गया। इनका लालन-पालन इनकी माता की बहन माया के द्वारा हुआ। महामाया की मृत्यु के बाद

शुद्धोदन ने माया से विवाह भी कर लिया था और इसी से देवदत्त का जन्म हुआ। देवदत्त ने सिद्धार्थ के जीवन में एक महत्वपूर्ण भाग लिया था।

शाक्य-राजकुमार सिद्धार्थ के सम्बन्ध में बहुत सी किम्वदन्तियाँ मिलती हैं। इन किंवदन्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका शरीर सुन्दर था। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ इनमें पर्याप्त थीं।

बुद्ध को बाल्यकाल से ही सांसारिक विषयों से अरुचि थी। अपने भृत्य छंदक के साथ जब वे घूमने निकलते तब किसी भी घटना को देखकर उसके जानने की जिज्ञासा होती। कहा जाता है कि कपिलवस्तु के चारों द्वारों पर उन्हें क्रमशः एक वृद्ध, एक रोगी, एक मृतक और एक संन्यासी के दर्शन हुए। संन्यासी के दर्शन से उन्हें ज्ञात हो गया कि जीवन के दुःखों को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए।

इन घटनाओं ने सिद्धार्थ का दृष्टिकोण बदल दिया और वे एकान्त में चिन्तन करना अधिक पसन्द करने लगे। इनके पिता इसे देखकर भयभीत हो गए। उन्हें शंका होने लगी कि सिद्धार्थ कहीं घर द्वार छोड़ कर चले न जाँय। अतः शुद्धोदन ने सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा नामक राजकुमारी से कर दिया। वैवाहिक सूत्र में बँधने के कारण सिद्धार्थ कुछ काल के लिये जगत की ओर झुक गए। पर यह तो क्षणिक था। पुत्र उत्पन्न होने के बाद सिद्धार्थ ने निश्चय कर लिया कि दुःख के कारण और उसके उपचार के लिए प्रयत्न करना होगा। इसी निश्चय से ये एकदिन आधीरात के समय उठे। राजमहल के पुरुष आमोद-प्रमोद से थककर प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थे। इन्होंने रंगमहल के प्रधान कक्ष की ओर झांक कर देखा। मदिरापान, विलास और नींद में डूबी हुई नर्तकियाँ जड़ नग्न चित्रों

की तरह अचेत पड़ी थीं। इन्हें इससे घृणा हुई। फिर ये यशोधरा के कक्ष में गए। वहाँ इनकी स्त्री और पुत्र सो रहे थे। उन्हें देखकर सिद्धार्थ बाहर अश्वशाला में आए और छंदक को जगाया। अपने प्रिय अश्व कंथक पर चढ़ छंदक के साथ ये नगर के बाहर हो गए। मोह की कड़ियाँ टूट चली थीं।

नगर के बाहर जाकर इन्होंने अपने राजसी वस्त्र उतार डाले और उसे छंदक को सौंप दिया और जिज्ञासु का वेष धारण कर लिया। छंदक को लौटाकर वे गया की ओर गए। तप की प्रधानता सब अर्हतों के मुख से सुनकर ये उरुविला के समीप नयनरंजन नदी के किनारे एक वट वृक्ष के नीचे तप करने लगे। इनके साथ इनके पाँच शिष्य और थे। कठोर तप के कारण उनका शरीर क्षीण होने लगा। अन्त में केवल कंकाल मात्र ही रह गया। इस प्रकार ६ वर्ष तक इन्होंने घोर तपस्या की। एक दिन कुछ ग्राम-युवतियाँ उधर से गीत गाती हुई निकलीं। 'अपनी वीणा के तार ढीले मत छोड़। उनसे स्वर न निकलेगा। अपनी वीणा के तारों को अधिक मत कस। अरे, उनसे स्वर नहीं निकलेगा, वे टूट जायँगे।' इस गीत से गौतम ने शिक्षा ली। इसी समय एक लड़की खीर लेकर आई। सिद्धार्थ ने उसे ग्रहण किया। अब इन्हें निश्चय हो गया था कि शरीर को कष्ट देने से कार्य सिद्ध न होगा। इनके इस निश्चय से इनके शिष्य इन्हें छोड़ कर चले गए। पर गौतम का शरीर तपसे पवित्र हो गया था। वृक्ष की शाखाओं के सहारे झुककर इन्होंने नदी में स्नान किया और ऊपर आकर वृक्ष की छाया में ध्यानस्थ हो गए। सहसा इन्हें ऐसा लगा कि मुझे सत्य का ज्ञान हो गया है और मैंने जीवन-मरण की समस्या को सुलझा लिया है! अब ये अपने धर्म के प्रचारार्थ वहाँ से आगे बढ़े। ये प्रबुद्ध हो गए थे, अतः इन्होंने अपना नाम बुद्ध रखा। सर्वप्रथम ये

अपने उन पाँच शिष्यों से सारनाथ में मिले और उनको उपदेश दिया। वे बुद्ध के मतावलंबी हो गए।

इन्होंने कहा था—'चार महान सत्य हैं जिन्हें समझ लेना चाहिए। दुःख सत्य है, जन्म दुःखमय है, जरा दुःखमय है, रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है। जिसे हृदय प्रेम न करे उसे समर्पित करने में दुःख है। वियोग में दुःख है। अतृप्त वासना दुःख का कारण है। संक्षेप में अस्तित्व का मूल ही दुःख है। उन्होंने कहा कि मनुष्य की वासना जो अहंकार से उत्पन्न होती है, सब सांसारिक दुःखों का कारण है। मनुष्य इन्द्रियसुख चाहता है।

इनकी दृष्टि में तीसरा सत्य यह है कि इन दुःखों का नाश हो सकता है। इन्द्रियों के दमन के द्वारा ही वासनाएँ दुर्बल होंगी और उनका नाश भी हो जायगा। इन तीन सत्यों को जानने वाला ही अर्हत् हो सकता है। फिर भी लक्ष्य दूर है जब तक कि वह चौथे सत्य को न जान ले। इस सत्य का उद्घाटन आर्य-अष्टांग मार्ग पर चलने से हो सकता है।

उस समय भारत में कर्मकाण्ड का महत्व था। वर्ण-व्यवस्था के नियम कड़े थे। अन्य जातियों के लिए मोक्ष का कोई सुगम मार्ग नहीं था। बुद्ध ने कर्मकाण्ड की व्यवस्था का विरोध किया। ये सबको निर्वाण के मार्ग पर लाना चाहते थे। इसीलिए इन्होंने अपना सरल मार्ग निकाला। इसके लिए इन्होंने भिक्षु-संघ की स्थापना की और अनेक स्थानों में घूमकर अपना धर्म फैलाया। इनके जीवनकाल में ही इनका धर्म भारत के अनेक खण्डों में फैल गया और बौद्ध धर्म के तीन प्रचार-मंत्र सर्वत्र गूँजने लगे, 'धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि'।

८० वर्ष की आयु में बुद्ध ने कुशीनगर में शरीर का परित्याग

किया। बुद्ध ने तत्कालीन भारत में फैले हुए अनाचारों को अपने महान श्रम से दूर किया। वर्ण-व्यवस्था के जटिल बंधनों को ढीला किया। सबको मुक्ति का मार्ग बताया। इनका धर्म दुःख का अस्तित्व स्वीकार करते हुए भी उसके निराकरण का मार्ग बताता है।

## मनोरंजन के आधुनिक साधन

(१) विषय-प्रवेश।
(२) मनोरंजन का जीवन में स्थान।
(३) प्राचीन और नवीन मनोरंजन।
(४) परिष्कृत मनोरंजन से ही व्यक्ति तथा समाज का हित।
(५) उपसंहार।

मानवजीवन-संघर्ष से थककर कुछ काल के लिए विश्राम चाहता है। विश्राम के समय वह अपनी चित्तवृत्ति को किसी ऐसे कार्य में लगा देना चाहता है जिससे वह कुछ काल के लिए आत्मविस्मृत होकर नूतन शक्ति प्राप्त कर ले। जीवन में मनोरंजन की इसीलिए आवश्यकता पड़ती है।

दैनिक जीवनसम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा हुआ संसार का प्राणी निरन्तर के परिश्रम से श्रान्त होकर मनोरंजन के साधन ढूँढ़ता है। कुर्सी, मेज पर काम करनेवाले दौड़ धूप के खेलों द्वारा मनोरंजन करते हैं, शारीरिक परिश्रम करनेवाले गृह के भीतर ही मनबहलाव के साधनों से मनोरंजन करते हैं। आज का संसार घात-प्रतिघात के थपेड़ों से आक्रान्त हो रहा है। प्राचीनकाल में जीवनयापन करने में उतनी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता था जितना आजकल। पहले का जीवन सरल था। आज जहाँ देखिए प्रतिद्वन्द्विता के कारण किसी भी जीवनसम्बन्धी सामग्री का मिलना कठिन हो रहा है। यही कारण है कि आज के युग का मानव अधिक मनोरंजन के साधनों की खोज में लगा है।

मनोरंजन कालगत विशेषता से परिवर्तित होते रहते हैं। किसी युग में आखेट द्वारा मनोरंजन होता था तो किसी में नृत्य-गीत तथा वाद्य यंत्रों द्वारा। किसी-किसी युग में द्यूत-क्रीड़ा से भी लोग मनोरंजन कर लेते थे।

आज की परिस्थिति दूसरी है। पहले धनाढ्य तथा राजा महाराजा ही मनोरंजन की सामग्री जुटा सकते थे पर आज मनोरंजन सर्वसाधारण के लिए आवश्यक हो रहा है। विज्ञान के पदार्पण के पूर्व भारत में कठपुतली का नृत्य, बाजीगर के खेल, नाटक आदि मनोरंजन के साधन थे, पर आज सिनेमा, रेडियो, ग्रामोफोन आदि ने मनोरंजन के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

कुछ समय पूर्व ग्रामोफोन का प्रचार इतना बढ़ा था कि बहुत से लोगों के घरों में यह मनोरंजन का एक प्रधान अंग हो गया था। जन साधारण संगीत के ऊँचे कलापक्ष से परिचित हो गए थे। सिनेमा के आगमन से एक दूसरी क्रान्ति मनोरंजन के क्षेत्र में हुई। सामान्य वर्ग भी इससे मनोरंजन करने लगे।

रेडियो के आविष्कार ने मनोरंजन की परिधि को और भी विस्तृत कर दिया। आज हम हिन्दुस्तान में रहकर किसी भी देश की संगीत-कला का आनन्द ले सकते हैं।

सर्कस और कार्निवाल भी प्रायः घूम-घूम कर जनता का मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार की कम्पनियाँ शेर, चीता, बंदर, घोड़ा, हाथी एवं विभिन्न प्रकार के व्यायामों द्वारा जनता को आकर्षित करती हैं।

स्कूल और कालेज के विद्यार्थी खेल-कूद द्वारा मनोरंजन करते हैं। इन खेलों में क्रिकेट, फुटबाल, हाकी, टेनिस, वालीबाल और बैडमिंटन प्रधान हैं। इससे मनोरंजन के साथ-साथ व्यायाम भी होता है। मैच और टूर्नामेन्टों के समय दर्शकों में

जो आनन्द की लहरें उठती हैं, प्रेक्षणीय होती हैं। किसी-किसी स्थान पर ये मैच टिकट से होते हैं।

घर के भीतर मनोरंजन के साधनों में शतरंज, ताश, चौपड़, कैरम और पिंगपांग मुख्य हैं। इनमें अधिक व्यक्तियों की संगति की आवश्यकता नहीं होती।

मुद्रणयंत्र की कृपा से अब जनता की रुचि परिष्कृत हो चली है। कहानी, समाचारपत्र, उपन्यास तथा और भी साहित्यिक साधनों से बहुत से लोग मनोरंजन करते हैं।

मनोरंजन इस प्रकार का हो जिससे हमें सर्वप्रकार से लाभ हो। केवल कालक्षय करनेवाला मनोरंजन दो कौड़ी का है। यदि किसी भी मनोरंजन से हमारी बुद्धि विकृत होती है, हमारा स्वभाव अश्लील होता है तो इस प्रकार के मनोरंजन से बचना चाहिए।

## व्यवसाय का चुनाव

१—विषय-प्रवेश
२—व्यवसाय के चुनाव की आवश्यकता
३—चुनाव में किन-किन बातों का ध्यान आवश्यक है
४—व्यवसाय के चुनाव की कठिनाइयाँ
५—व्यवसाय के चुनाव से लाभ
६—निष्कर्ष

विद्याध्ययन करते-करते ज्यों-ज्यों बाल्यावस्था समाप्त होने लगती है, प्रत्येक युवक अपने भविष्य के बारे में चिन्तित हो उठता है। जीवन को सफल एवं सुखी बनाने की लालसा से वह किसी ऐसे कार्य में लगना चाहता है जो उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल हो तथा साथ ही उसके द्वारा प्राप्त धन से वह अपना जीवन-यापन सरलता से कर सके।

वर्तमान युग में जीविकोपार्जन का प्रश्न बड़ा ही जटिल हो रहा है। मशीनों तथा कलों की अधिकता से कितने लोग बेकार हो रहे हैं क्योंकि इनके द्वारा कार्य शीघ्र ही थोड़े ही व्यक्तियों द्वारा सम्पादित हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतियोगिता बढ़ जाती है।

पूँजी का केन्द्रीकरण ज्यों-ज्यों एक ही स्थान में होता गया अधिकांश लोगों के जीविकोपार्जन के साधन घटते गए। जब मशीनों का युग नहीं था सभी लोग कुछ न कुछ कार्य कर लेते थे। जिसके घर में जो कार्य होता वह उसे आसानी से सीखता और उसमें कुशलता प्राप्त करता। पैसे की इतनी हाय हाय उस समय नहीं थी। सब सुखी हों यही भाव सबके हृदयों में भरा रहता था।

थोड़े ही समय में अधिक धन-संचय की प्रवृत्ति ने आज घरेलू व्यवसायों को हटाकर एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। शिक्षा भी इस प्रकार की दी जा रही है कि युवक पढ़ने-लिखने पर हवाई किले बनाने लगता है, घर के काम करने में उसे लज्जा लगती है। उसकी रुचि बदल जाती है। वह नवीन प्रकार के आकर्षक व्यवसाय की ओर झुक जाता है। चाहे भले ही उसमें उसे सफलता न मिले।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की इतनी वृद्धि होगई है कि किसी भी कार्य में दक्षता प्राप्त करने पर भी यह निश्चित नहीं रह गया है कि कोई सफलता प्राप्त कर ही लेगा। प्रायः देखने में आता है कि किसी ने दक्षता तो दूसरे कार्य में प्राप्त की और परिस्थितिवश वह दूसरा कार्य कर रहा है। रोटी-दाल की समस्या सुलझाने के लिए प्रायः इस प्रकार की विषम परिस्थिति में लोग अपने को डाल देते हैं। परिणाम यह होता है कि रुचि के अनुसार कार्य न मिलने से सारा जीवन अशान्त हो जाता है।

जब तक किसी व्यक्ति को अपने चुने हुए व्यवसाय में आनंद नहीं आता तब तक वह उन्नति नहीं कर सकता।

रुचि का अध्ययन किए बिना ही जो युवक किसी भी व्यवसाय में कूद पड़ता है वह सदा ही असफल होता है। पर कठिनाई इस बात की है कि बहुत से युवकों में इतनी योग्यता होती ही नहीं कि वे स्वतः अपनी रुचि का अध्ययन कर सकें, अतः किसी भी देश में इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए जो युवकों को व्यवसाय के चुनाव में उचित निर्देश दे सके। अमेरिका, इंगलैण्ड तथा अन्य पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की व्यवस्था है जिससे युवक ठीक से व्यवसाय चुन सकें।

रुचि के पश्चात् योग्यता का प्रश्न आता है। यदि किसी की रुचि अच्छा डाक्टर बनने की है पर तदनुकूल योग्यता उसमें नहीं है तो सफलता कैसे मिलेगी? कभी-कभी देखा जाता है कि मानसिक योग्यता तो है पर शारीरिक योग्यता नहीं है। कोई युवक पढ़ने-लिखने में इतना व्यस्त रहता है कि शरीर की परवाह नहीं करता, फल यह होता है कि उसका शरीर दुर्बल और कार्य करने के अनुपयुक्त हो जाता है। फिर यदि वह कोई ऐसा कार्य करे जिसमें तनिक भी शारीरिक श्रम की आवश्यता हो तो वह बीमार हो जाता है। अतः शारीरिक और मानसिक योग्यता के बिना व्यवसाय में सफलता मिलनी संभव नहीं।

व्यवसाय के चुनाव में धनोपार्जन ही एक मात्र लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति धनोपार्जन के पश्चात् समाज में सम्मानित पद प्राप्त करना चाहता है और यदि धनोपार्जन के बीच में ही उसके निन्दनीय कार्यों से अपकीर्ति फैल गई तो उसे अंत में दुःख ही होता है। इस प्रकार की अपकीर्ति दुराचरण तथा अनुचित व्यवहारों से होती है। जो लोग उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखते, मनुष्यता के आदर्श को नहीं समझते और

मानवता से दूर रहते हैं वे धनोपार्जन को ही लक्ष्य मानकर अपने तो दुःखी होते ही हैं, दूसरों को भी गर्त में डालते हैं।

आजकल के संरक्षक बालकों की रुचि पर ध्यान न देकर स्वतंत्र रूप से उनको किसी भी कार्य में लगा देते हैं। इससे बालक की उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रकार की भूल से न बालक का लाभ होता है और न संरक्षक का।

उपयुक्त व्यवसाय के चुनाव से राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। अतः प्रत्येक राष्ट्र को नवयुवकों के व्यवसाय के चुनाव में सहायता देना आवश्यक एवं हितकारी है।

## मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र

(१) बाल्यकाल
(२) विश्वामित्र की सेवा में
(३) धनुर्भङ्ग, अयोध्या-आगमन
(४) १६ वर्ष वन में
(५) लङ्का विजय
(६) अयोध्या-आगमन
(७) राज्यारोहण तथा प्रजापालन

महाराज इक्ष्वाकु के वंश में महाराज दशरथ एक प्रतापी राजा उत्पन्न हुए। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी जब कोई संतान न हुई तब राजा को बड़ी चिन्ता हुआ। मृत्यु के बाद कौन उत्तराधिकारी होगा? प्रजा की रक्षा किस प्रकार होगी आदि चिन्ताओं से राजा का मुख म्लान होगया और राजा चिन्ता से व्यथित हो उठे। ऐसे ही समय में ब्रह्मा के मानस पुत्र श्री वशिष्ठजी का सहसा वहाँ आगमन हुआ। राजा को शोकातुर देखकर कुलगुरु ने कारण पूछा। राजा ने सब बातें कह सुनाईं। अंत में वशिष्ठजी

ने ब्राह्मणों की सलाह से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। अग्निदेव प्रसन्न हुए और उनके ही प्रताप से राजा के चार पुत्र हुए। कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न।

बाल्यकाल से ही सब भाई परम शान्त, शीलवान तथा उदार थे। इन सबमें राम की बुद्धि एवं उदारता विलक्षण थी। प्रत्येक कार्य में उनकी गंभीरता और बुद्धि-वैलक्षण्य दिखलाई पड़ता। राजा ने पुत्रों की उचित शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था की। अल्प-काल में ही राम सब भाइयों सहित सब विद्या में प्रवीण होगा। उनके लिये कोई भी कार्य दुष्कर न था।

एकबार राजा दशरथ दरबार में बैठे थे। द्वारपाल ने मुनिश्रेष्ठ श्रीविश्वामित्र के शुभागमन की सूचना दी। राजा स्वयं अगवानी के लिये द्वार तक आए और सभा में ले जाकर उनको उचित आसन पर बिठाया। वार्तालाप के सिलसिले में राजा ने मुनि से कुछ सेवा करने की आज्ञा चाही। विश्वामित्रजी ने सेवा के उपलक्ष्य में कुछ दिनों के लिये राम और लक्ष्मण को अपने आश्रम की रक्षा के लिए माँगा। राजा इस याचना के लिये प्रस्तुत नहीं थे। उन पर मानों वज्रपात सा हो गया। वे कुछ देर मौन रहकर बोले, 'महाराज' इसके अतिरिक्त कुछ और माँगिये। ये पुत्र तो मेरे प्राणों से प्यारे हैं, इनको मैं क्षण भर के लिए दूर नहीं कर सकता, ये सुकुमार बालक आपके आश्रम की रक्षा भी नहीं कर सकते। आप हमारी चतुरंगिणी सेना ले जायँ। इससे आपका कार्य हो जायगा।' विश्वामित्र रूठकर जाने लगे। अन्त में वशिष्ठजी के समुझाने-बुझाने पर महाराज दशरथ राम और लक्ष्मण को देने के लिये तैयार हुए।

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ तपोवन में पहुँचे। दूसरे दिन प्रातःकाल यज्ञ प्रारंभ हुआ। यातुधानों की सेनाएँ

घिर आईं इन सेनाओं तथा इनके अधीश्वरों को राम और लक्ष्मण ने तत्क्षण इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर डाला जैसे सूर्य अंधकार को नष्ट कर डालता है। पर राम को सदा मर्यादा की रक्षा की चिन्ता थी। ताड़का नाम की राक्षसी पर वे बाण इसलिये नहीं चलाना चाहते थे कि वह स्त्री जाति की थी। गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर ही उन्होंने उसका वध किया। मानवजीवन की उच्चता इन्हीं उचित और अनुचित का विचार करनेवाले कार्यों पर अवलंबित होती है।

राम ने जनक के स्वयंवर में धनुर्भङ्ग कर सीता को ग्रहण किया। परशुराम के साथ उनका शिष्टाचार स्तुत्य था। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा का क्षत्रिय पहले कितना ध्यान रखते थे यह राम के वचन से सिद्ध होता है। 'मारत हूँ पा परिय तुम्हारे।' ऐसा क्यों होता था? इसलिये कि इन्हीं तपस्वियों की तपस्या से पृथ्वी की पवित्रता सुरक्षित थी। पृथ्वी में धन-धान्य की कमी नहीं थी। दूसरे राम को परशुराम की कठोरता ज्ञात थी। यह तो उनका स्वभाव ही था।

जनकपुर से सीता को लेकर वे अयोध्या आए। पिता ने राज्याभिषेक के लिए शुभदिन नियत किया गया पर विधि-विधान कुछ और ही था। राज्याभिषेक के स्थान पर चौदह वर्षों का वन-वास होगया। परन्तु इस परिवर्तन से राम की प्रसन्नता में कुछ भी अन्तर न आया। माता कौशल्या से विदा माँगते समय वे कहते हैं 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू, जहँ सब भाँति मोर बड़काजू।' पुत्र की प्रसन्नता माता-पिता के आज्ञा-पालन में ही हैं, इसे राम ने अपने कार्यों द्वारा कर के दिखाया। वन गमन के समय सीता जी भी जाने को तैयार होगईं। राम ने उन्हें बहुत समझाया कि स्त्री को साथ लेकर वन में रहना बड़ा ही कठिन है पर सीताजी की दलीलों के आगे राम को हार जाना पड़ा। लक्ष्मण भी साथ

हो लिए। ऐसे महान परिवर्तन के समय राम सागर की तरह शान्त तथा स्थिर दिखलाई पड़ते थे, इसी से उनकी विशेषता परिलक्षित होती है।

जंगल में जाकर राम का कर्तव्य हो जाता है मुनियों की सेवा। ऐश्वर्य की गोद में पला हुआ शरीर कंकड़ पत्थरों से नहीं घबराया। परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना इसी को कहते हैं।

वनवास के सब दिनों में परहित में तत्पर रहे। मुनि-मंडली असुरों से त्रस्त थी। राम ने प्रण किया 'निसिचर हीन करौं मही भुज उठाइ प्रण कीन्ह'। अयोध्या में रहते तो कहाँ ऐसी सेवा का अवसर आता। 'क्षत्रियों के लिये ब्राह्मणों की सेवा से बढ़कर दूसरा धर्म है ही नहीं' इसको प्रधान मानकर रामचन्द्रजी वनवास के दिनों में कार्य में संलग्न रहे।

अवसर के समय चतुराई से काम करने की शक्ति उनमें खूब थी। सीताहरण के बाद जब कोई उपाय न सूझा तो बन्दरों से मैत्री भी की। पशु और मानव की मित्रता का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने रखा। आज के लोग इसे गल्प कहेंगे। स्वार्थ के कारण मैत्री स्थावर और जंगम सब में हो सकती है। इसी भाव को राम ने दिखलाया है।

सीता का पता लग जानेपर वानरी सेना को लेकर राम समुद्र के तीर पहुँचते हैं। समुद्र पार कर लंका जाने का प्रश्न हल करना था। पहले पहल समुद्र से मार्ग माँगते हैं। तीन दिन व्यतीत हो जाता है, कुछ भी उत्तर नहीं मिला। तब तो राम के क्रोध की सीमा न रही। आजकल के लोग राम के इस कार्य को सुनकर हँसेंगे, पर उन्हें यह मालूम नहीं कि संसार के सभी चर और अचर प्राणयुक्त हैं। बिना प्राणशक्ति के क्रिया नहीं होती। वायु और जल द्वारा क्रिया होती है, अतः उनमें भी प्राणशक्ति है।

महान का क्रोध महान होता है 'उठी उदधि उर अंतर ज्वाला' और वह ब्राह्मण के वेष में पूजा की सामग्री लिये सामने उपस्थित हुआ। प्रार्थना की कि महाराज मेरी मर्यादा की रक्षा कीजिए। नल और नील का नाम भी उसने बताया जिनके स्पर्श से शिला पानी में तैरने लगती थी। नल और नील बुलाए गए, पुल बाँधा गया। सेना लंका में पहुँच गई।

लंका पहुँचने पर सबसे बड़ी कठिनाई उस समय उपस्थित हुई जब कि विभीषण राम की शरण में आया। राम की सेना के अधिपतियों की विभिन्न रायें थीं। सब लोग यही कह रहे थे कि भेद लेने के लिए आया है। पर राम ने कहा, चाहे जो हो विभीषण शरणागत है। उसे तो आश्रय मैं दूँगा ही। शरणागत की रक्षा में हित अनहित का ध्यान नहीं रखा जाता। जहाँ धर्म की इतनी प्रतिष्ठा हो वहाँ से क्या विजयश्री दूर जा सकती है? जिस राम के वनवास का अन्तिम उद्देश्य रावण-वध था उसे भी विभीषण को शरण देने के समय भूल गए। राम की इसी महत्ता से आज समस्त हिंदू जाति उन्हें भगवान का अवतार मानती है।

श्री राम सती सुलोचना के विलाप को सुनकर इतने द्रवित हो गए कि मेघनाद को जिलाने के लिये भी तैयार हो उठे। दया इसी को कहते हैं कि बैरी पर भी उतनी दया, जितना मित्र पर।

लंका-विजय के पश्चात् एक क्षण भी न रुके। भरत की याद उन्हें व्यथित कर रही थी। देर होने में भरत को जीते जी देखने में सन्देह था। भरत की अनन्यता पर राम के हृदय में इतना विश्वास था। निश्चय ही भरत अपने ही कार्यों से राम के अधिक समीप थे। वे अयोध्या लौट आये। पुनः राज्याभिषेक हुआ। पर मर्यादा की रक्षा सदा करते रहे। जिस सीता के लिए इतने बड़े-बड़े युद्ध हुए उनको ही केवल मर्यादा की रक्षा के लिए पुनः

वनवास दे दिया। कर्तव्य की गुरुता के आगे हृदय की कोमलता दब जाती है। राम की यह कठोरता न थी बल्कि थी कर्तव्य-परायणता। क्या राम को सीता के लिए कष्ट न हुआ होगा पर ऐसा क्यों? प्रजा की प्रसन्नता के लिए, अपयश को दूर करने के लिए। राजा का कर्तव्य लोकधर्म की रक्षा होती है, यदि वह यह न कर सका तो प्रजा अधर्म की ओर बढ़ती है। पृथ्वी पर अनाचार बढ़ते हैं, भयंकर उत्पात होते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र की विवेचना करने पर पता चलता है कि उनमें मानवी सभी गुणों का परम विकास था और इन्हीं गुणों का समन्वय मनुष्य को भगवान् बनाता है। आज के भारतीय राम के आदर्श को भूल गए हैं फिर रामराज्य की कल्पना कैसे हो सकती है?

## हमारा स्त्री-समाज

(१) भूमिका
(२) भारतीय नारी का आदर्श
(३) भारतीय नारी की समस्याएँ
(४) आज का युग
(५) निष्कर्ष

स्त्री और पुरुष जीवनरथ के दो चक्र हैं। अतः प्रत्येक का महत्व एक दूसरे से कम नहीं है। आज के युग में नारी का स्थान विशेष महत्वपूर्ण इसलिए हो गया है कि पुरुष अत्यन्त कठोर और बुद्धिवादी हो गया है। नारी अपने उदार और सरल हृदय से उसका परिवर्तन कर सकती है। यदि स्त्रीसमाज सावधान न हुआ तो परिस्थिति भयंकर हो जावेगी।

ईश्वर ने नारी में पुरुष से अधिक बल प्रदान किया है। माँ, पत्नी और गृहलक्ष्मी के रूप में भारत उसे सदा से उच्च आसन प्रदान करता रहा है। भारतीय नारी त्याग, तपस्या और

वात्सल्य की शुद्ध मूर्ति है। प्राचीन ऋषियों ने उसे क्षमा, करुणा, दया और शक्ति की जननी माना है। उसकी दीप्ति से पारिवारिक जीवन में एक नया अपार्थिव आलोक भर जाता है।

पत्नी के रूप में नारी का रूप भारत में धार्मिक और आत्मिक माना गया है। भारतीयों के लिये स्त्री केवल संतान उत्पन्न करने के लिए या भोग की वस्तु कभी नहीं रही है। पत्नी को सह-धर्मिणी तथा अर्द्धाङ्गिनी स्वीकार करने में इसी महत्व को स्थान दिया जाता है। सभी धार्मिक तथा पुनीत कार्य उसके अभाव में अपूर्ण माने जाते हैं। हिन्दू के लिए नारी का सम्बन्ध वासना की पृष्ठभूमि से ऊपर उठकर पवित्र धर्मलोक में स्थापित किया गया है।

प्राचीन ऋषियों ने जहाँ स्त्रियों के अनेक गुणों की चर्चा की है, वहाँ इनमें स्थित दोषों की ओर भी संकेत किया है। यही कारण है कि ऋषियों ने उसे बाल्यावस्था में माता-पिता के आश्रय में रहने को कहा है। प्रौढ़ होने पर पति के साथ तथा वृद्धा होने पर पुत्र के आश्रय में। ऐसा इसलिए कहा गया है कि स्त्री में चंचलता एवं अदूरदर्शिता अधिक मात्रा में वर्तमान रहती है। आज की नारी इसे स्वीकार न करके भयंकर भूल कर रही है।

पाश्चात्य सभ्यता के आवेग में आज की नारी पुरुषों के समान अधिकारलोलुप तथा वासनामयी हो चली है। वह कर्तव्य की ओर ध्यान न देकर अधिक लोलुप हो गयी है। स्त्रियों और पुरुषों की प्रकृति में मौलिक भेद होता है। दोनों के कार्य-क्षेत्र अलग अलग हैं। एक दूसरे का स्थान लेकर जीवन आनंदमय नहीं बना सकता है। पाश्चात्य सभ्यता में नारी नए सामाजिक जीव की उत्पत्ति का साधन मानी गई है। यही कारण है कि वहाँ की स्त्रियाँ संगठित होकर पुरुषों के साथ जीवन के प्रत्येक कार्य में

होड़ ले रही हैं। पर इसका परिणाम वहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में भयंकर हो रहा है।

भारतीय नारी आज आवाज उठा रही है कि वह अब घर की परिधि में नहीं रहेगी। वह पुरुषों के साथ उसके जीवन के विभिन्न कार्यों में हाथ बटावेगी। विवाह के प्रति भी उसका आदर्श बदलता जा रहा है। आज की पाश्चात्य सभ्यता में रँगी हुई नारी विवाह को केवल एक ठीका मान रही है। ऐसी स्थिति में वह जब चाहे सम्बन्ध-विच्छेद कर सकती है। वह इस सम्बन्ध पर लौकिक दृष्टि से विचार करती है। पर यहाँ तो पार-लौकिक दृष्टिकोण की प्रधानता रही है। इस प्रकार का दृष्टिकोण सांसारिक भोगों की अनित्यता स्वीकार करता है और उससे उपराम प्राप्त करने के लिए संयमित जीवन रखने की सलाह देता है। पाश्चात्य नारी इसे गल्प तथा कोरे मस्तिष्क की सूझ मानती है। पर क्या वस्तुतः यही बात है? क्या भोगों को भोगकर पूर्ण शान्ति मिल सकती है? भोग अनन्त हैं। उनके भोगने में तृप्ति न होगी। तृप्ति तो संयम और नियमित जीवन से ही आवेगी।

चित्रपट के आविष्कार ने जिस प्रकार पाश्चात्य नारी की लज्जा का अपहरण कर लिया, उसी प्रकार भारतीय नारी के उज्वल चरित्र को भी मिटा डाला है। आज की शिक्षित सिनेमा की अभिनेत्री जिस हाव-भाव से अश्लील भावनाओं का भारतीय नवयुवकों के सामने प्रदर्शन कर रही है, वह लज्जाजनक है। देश के नवयुवक आदर्शच्युत हो रहे हैं।

स्त्रियाँ अपनी मानसिक शक्तियों का विकास तो कर नहीं रही हैं, उल्टे ही औरों को पथ-भ्रष्ट कर रही हैं। भारतीय विद्यालयों में जो शिक्षा बालकों को दी जाती है कुछ ही परिवर्तित रूप में वही बालिकाओं को भी। फिर यदि नारी का वही आदर्श हो जो पुरुष का तो इसमें उसका क्या दोष।

सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की माँग भी स्त्रियाँ आज कर रही हैं। अधिकार कार्य करने से मिलता है, माँगने से नहीं। स्त्रियाँ अपने व्यवहारों तथा कार्यों से सब स्थान प्राप्त कर सकती हैं। उन्हें कौन रोक सकता है? पर यह तभी होगा जब। स्त्रीसमाज पहले कर्तव्य पर ध्यान दे फिर अधिकार याचना करे।

आर्य-सभ्यता ने नारी का पातिव्रत धर्म सब धर्मों से बढ़कर माना है। इस विचारधारा में लौकिक और पारलौकिक सुख दोनों का संमिश्रण है। वर्तमान में शान्ति तथा भविष्य में सुख भी इसी से प्राप्त हो सकता है। आज का यथार्थवादी युग इसे नहीं स्वीकार करता। उसकी पहुँच ही वहाँ तक नहीं है। वह सभी प्राचीन आदर्शों को आज के लिए अनुपयुक्त बता रहा है। क्या सत्य, दया, करुणा, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि गुणों का अभाव समाज को सन्मार्ग पर ला सकता है? वासनामय जीवन समाज की स्थिति को किस प्रकार सुधार सकता है?

गाँधी का भारत पाश्चात्य सभ्यता में रँगा हुआ भारत नहीं है। गाँधीजी ने तो विवाहित जीवन में भी संयमित रहने की सलाह दी है। आज की नारी को इसे समझना है और उसे प्राचीन भारतीय आदर्शों की रक्षा करनी है।

# पत्र-लेखन

**पत्र दो प्रकार के होते हैं**—व्यक्तिगत पत्र और व्यापारिक पत्र।

**व्यक्तिगत पत्र**—सम्बन्धियों और मित्रों के नाम जो पत्र लिखे जाते हैं व्यक्तिगत कहलाते हैं।

**व्यापारिक पत्र**—इनमें वे सब पत्र आते हैं जो व्यक्तिगत सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, जैसे प्रार्थना-पत्र, व्यावसायिक पत्र, समाचार पत्रों के सम्पादकों के नाम की चिट्ठियाँ तथा अन्य कार्यों के पत्र।

**पत्र के चार भाग होते हैं**—आरंभ में लेखक अपना पता लिखता है। व्यापारिक पत्रों में प्रेषक और प्रेष्य दोनों का पता लिखा रहता है। मध्य भाग में विषयसम्बन्धी सामग्री रहती है। पहले भाग में कुशलक्षेम, दूसरे में आशय, तीसरे में शुभ-कामना या प्रार्थना के साथ समाप्ति होती है। अंत में लेखक अपना नाम लिखकर पत्र समाप्त करता है। पत्र लिखकर पुनः उस पर पता लिख दिया जाता है।

पत्र-लेखन में प्रेष्य को प्रशस्ति और निवेदन ठीक-ठीक लिखना चाहिए। छोटे और बड़े के विचार से ही उपयुक्त शब्द रखने चाहिएँ प्रशस्ति और निवेदन के कुछ स्वरूप नीचे दिए जाते हैं।

| प्रेष्य | प्रशस्ति | निवेदन |
|---|---|---|
| बड़े संबंधियों को | महामान्य वर, पूज्य गुरुवर, परम पूज्य, श्री पूज्य, (इन विशेषणों के बाद बड़ों का नाता दिया जाता है) जैसे परम पूज्य गुरुजी, आदरणीय मामा जी, पूजनीया बहन जी, | चरण-सेवक<br>कृपा-भाजन<br>आज्ञाकारी |
| (२) छोटे सम्बन्धियों को | प्रिय, चिरंजीवी। | तुम्हारा हितैषी, शुभचिन्तक। |
| (३) बराबरवालों को | प्रियवर, प्रिय मित्र, प्रिय बन्धु। | तुम्हारा मित्र, या तुम्हारा अभिन्न मित्र या केवल तुम्हारा। |
| (४) परिचितों को | प्रिय टंडन जी, प्रिय वर्मा जी आदि। | आपका, इसके पश्चात् अपना नाम लिखना चाहिए। |
| (५) अपरिचितों को | महाशय या प्रिय महाशय। श्रीमान्, | आपका, (पूरा नाम लिखना चाहिए) |
| (६) स्त्रियों को यदि वे तुम्हारी सम्बन्धी न हों | महोदया | आपका (पूरा नाम लिखना चाहिए) |

# कुछ पत्रों के नमूने

## कपड़े की चोर बाजारी के सम्बन्ध में

सम्पादक–'संसार',
बनारस।

महाशय,

कृपया अपने सम्मानित पत्र में निम्नलिखित समाचार छाप दें, जिससे सरकारी अधिकारियों का ध्यान इधर आकृष्ट हो।

मिर्जापुर जिले के अन्तर्गत कछवा बाजार में कपड़े की चोर बाजारी धड़ल्ले से हो रही है। जिन व्यक्तियों को कपड़ों के वितरण के लिए तैनात किया गया है, वे परम स्वार्थी तथा बेईमान हैं। रुपया लेकर के परमिट दूसरों को दिया जाता है। कपड़े के व्यापारी उनकी इन हरकतों से अनुचित लाभ उठा रहे हैं और कपड़ा मनमाने भाव में बेच रहे हैं। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि एक देहाती को एक जनानी धोती के लिए पन्द्रह रुपया देना पड़ा, जब कि वह धोती पाँच रुपये, दस आने में मिलती है। पुलिस के कर्मचारी भी मिले हुए हैं। जनता की परेशानी बढ़ती जा रही है।

केवल 'राम'

## विवाह का निमंत्रण-पत्र

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन ।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुनसदन ॥

श्रीमान्

जगदीश्वर की असीम अनुकम्पा से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है कि, स्वर्गीय रामनाथ जी की आयुष्मती पुत्री तथा हमारी भगिनी का शुभ पाणिग्रहण-संस्कार कानपुरनिवासी श्री बाबू पुरुषोत्तम दास जी के चिरंजीवी पुत्र श्री रामानन्द जी के साथ मि० बैसाख सुदी ८ वार सोमवार ता० १४-५-५१ ई० को होना निश्चित हुआ है। उसी दिन बारात ८ बजे रात्रि के समय द्वार पर लगेगी।

आपसे सविनय निवेदन है कि उक्त अवसर पर उपस्थित होकर द्वार की शोभा बढ़ाते हुए हमें अनुगृहीत करने का कष्ट करें।

सी ७/५९ ए०, सेनपुरा।
काशी

आपके दर्शनाभिलाषी
छेदीलाल, मोतीलाल कोहली

## ग्राहक का पत्र

सेवामें—

भोलानाथ नन्दकिशोर
पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता
बनारस

महाशय, ५-५-५१

राजनीति के सिद्धान्त नामक पुस्तक आपके यहाँ प्रकाशित हो रही थी। वह अब छपकर तैयार हो गई होगी। कृपया पाँच किताबें वी. पी. से भेज देने की कृपा करें।

भवदीय
शिव शंकर सिंह
छपरा

## विक्रेता का पत्र

१५-५-५१

महोदय,

आपका ५-५-५१ का लिखा पत्र प्राप्त हुआ। राजनीति के सिद्धान्त नामक पुस्तक छपकर तैयार हो गई है। आपके आज्ञानुसार पाँच प्रतियाँ वी. पी. से भेजी जा रही हैं। आपने मुझे याद किया इसके लिये धन्यवाद। कृपा भाव बना रहे।

आपका
भोलानाथ नन्दकिशोर
पुस्तक-प्रकाशक व विक्रेता,
बनारस

## सूचना

सिगरा रोड पर एक आधुनिक ढंग का हवादार तिमंजिला, सुन्दर बँगला बिकाऊ है। बँगले के चारों ओर बगीचा भी है। बगीचे सहित बँगले की कीमत बीस हजार रुपए हैं। विशेष जानकारी के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें।

शीतला सहाय,
सिगरा।

# अभिनंदन पत्र ५१

## जायसवाल हायर सेकेण्डरी स्कूल, बनारस ।

की

दसवीं कक्षा के बन्धुओं को सप्रेम समर्पित

### * विदा-पत्र *

आदरास्पद मान्यवर,

जीवन के रंगमंच पर मिलन और विरह के अभिनय निरन्तर चला ही करते हैं, किन्तु संघर्षों से आक्रान्त प्राणी उनकी ओर विशेष रूप से उन्मुख होनेका अवकाश ही नहीं पाता और वे घटनाएँ समय के गर्भ में अपना प्रभाव लुप्त करती जाती हैं: फिर भी कुछ ऐसे अवसर उपस्थित हो ही जाया करते हैं जो हमारे जीवन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं और हम उन अवसरों का महत्व कभी भुला नहीं सकते। आज हमलोग ऐसे ही उद्देश्य से यहाँ एकत्र हुए हैं। आज की घड़ी—हम से आपके विछोह की है, जीवन की अन्य अनेक घटनाओं की ही भाँति, परन्तु हम इसे सामान्य कह कर टाल नहीं सकते।

बन्धुओ, आप और हम कई वर्षों से साथ रहकर इस विद्या-मन्दिर में सरस्वती की साधना करते रहे हैं। इतने दिनों तक साथ-साथ खेल-कूद लिख-पढ़कर सख्य के प्रबल बन्धन में बँध चुके हैं। अतएव ऐसे अवसर पर यदि हमारा ममत्व कातर हो उठे तो कोई आश्चर्य नहीं— कोई अमानवीय बात नहीं। यही कारण है कि आज विदा-वेला में हम सजल हो रहे हैं। फिर भी कठोर कर्तव्य हमें प्रेरित कर रहा है कि हम आपको प्रसन्न

होकर विदा दें। आप उन्नति-पथ के पथिक हैं और हृदय की सहज दुर्बलता के वशीभूत हो उन्नति-पथ का अवरोध करना कोई भी विज्ञ कदापि स्वीकार न करेगा।

अग्रजो, इसी हेतु भगवान नीलकण्ठ की भाँति इस विरह की घूँट को अंगीकार करते हुए भी हम लोग आज आप लोगों को हृदय की समस्त शुभ-कामनाओं के साथ विदा दे रहे हैं। आपके मार्ग में देवता फूल बिछावें, कल्याण आपका मार्ग प्रदर्शन करे और मंगल आपका सहचर हो। दयामय का दिव्य आलोक आप को नित्य नूतन उन्नति की ओर अग्रसर करता रहे। निवेदन इतना ही है कि आप कहीं भी रहें—कितने ही समुन्नत स्थान पर रहें पर अपने चरण-चिह्नों पर चलनेवाले हमारे कनिष्ट भ्राताओं को और हमें एक सूत्र में बाँधने वाले इस विद्यामन्दिर को अपने हृदय में अवश्य स्थान दें।

श्रद्धेय, हम अपना स्नेह किस प्रकार प्रदर्शित करें? हमारे हृदय का भाव ही स्नेहमय है। उसे ही सुदामा के तन्दुल की भाँति स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।

२२ फरवरी '५१ } हम हैं आपके स्नेह-भाजन
नवीं कक्षा के छात्र-वृन्द

## विज्ञापन

आवश्यकता है हरिचन्द्र डिगरी कालेज बनारस के लिए हिन्दी के सुयोग्य प्राध्यापक की। वेतन योग्यतानुसार।

पत्र-व्यवहार १५ जून तक मंत्री हरिश्चन्द्र इन्टर कालेज बनारस से करें।

## शोक-प्रस्ताव

काशी के साहित्यिकों और हिन्दी-प्रेमियों की यह सभा हिन्दी के प्रखर विद्वान् श्रद्धेय आचार्य केशव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व प्रधान हिन्दी-विभाग काशी विश्वविद्यालय की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। आचार्य जी के निधन से आज हिन्दी-साहित्य सूना हो गया। यह सभा ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दिवङ्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनके शोक सन्तप्त परिवार को इस दारुण प्रहार के सहन की शक्ति दे। इस प्रस्ताव द्वारा यह सभा आचार्य जी के दुखी परिवार के साथ समवेदना प्रकट करती है।

## कुछ निबन्धों का विश्लेषण

### १. देशाटन

(१) देशाटन की व्याख्या।
(२) देशाटन के उद्देश्य।
(अ) व्यावसायिक, (ब) धार्मिक, (स) राजनीतिक और (द) ज्ञानवर्द्धनात्मक।
(३) देशाटन के साधन एवं सुविधाएँ।
(४) देशाटन से प्राप्त ज्ञान एवं अनुभव का उपयोग।
(५) देशाटन से लाभ।
(६) निष्कर्ष।

### २. जीवन में आदर्शों का महत्व

(१) आदर्श क्या है ?
(२) जीवन का आदर्श से सम्बन्ध।
(३) मनुष्य जैसा सोचता है वैसा होता है।
(४) आदर्शों से प्रभावित व्यक्तियों के जीवन-चरित्र के उदाहरण।

( ५ ) आदर्शहीन जीवन की झाँकी।
( ६ ) आदर्श के विभिन्न दृष्टिकोण।
( ७ ) निष्कर्ष।

## ३. आत्म-निर्भरता

( १ ) आत्म-निर्भरता ही शक्ति है।
( २ ) प्रकृति का नियम क्या है ?
( ३ ) आत्म-निर्भरता व्यक्ति को कष्टसहिष्णु, नम्र, धैर्यवान्, कार्यकुशल, मितव्ययी और प्रतिभावान् बनाती है।
( ४ ) परमुखापेक्षी का जीवन।
( ५ ) उपसंहार।

## ४. वैज्ञानिक आविष्कारों से लाभ और हानि

( १ ) आज के जीवन में विज्ञान की महत्ता।
( २ ) कार्य में शीघ्रता, द्रुतता और मितव्ययता लाने वाले विभिन्न आविष्कार ( रेल, तार, डाक, विभिन्न प्रकार के उत्पादन के यंत्र, चीर फाड़ के नवीन यंत्र आदि।
( ३ ) आमोद-प्रमोद में वृद्धि।
( ४ ) संसार की एकता में योग।
( ५ ) वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग—पूँजी का एक स्थान में केन्द्रित हो जाना, मनुष्य का परमस्वार्थी होकर दूसरे के अहित की चिन्ता करना।
( ६ ) वैज्ञानिक आविष्कारों के सदुपयोग के सुझाव।

## ५. अहिंसा

( १ ) अहिंसा की व्याख्या ( मनोमयी, वचनमयी और कर्ममयी )।
( २ ) अहिंसा के व्रती का जीवन।
( ३ ) अहिंसा की आवश्यकता।

( ४ ) अहिंसा से लाभ।
( ५ ) घृणा द्वारा अहित।
( ६ ) उद्देश्य।

### ६. भारत का उद्योगीकरण

( १ ) उपयोगीकरण का अर्थ।
( २ ) भारतीय परिस्थिति।
( ३ ) उद्योगीकरण के लाभ।
( ४ ) उद्योगीकरण के उपाय।
( ५ ) उद्योगीकरण के दोषों का परिहार,
( ६ ) स्वतंत्र विचार।

### ७. व्यवसाय का चुनाव

( १ ) विषय-प्रवेश।
( २ ) जीवन में व्यवसाय के चुनाव का महत्व।
( ३ ) इसके लिये उपयुक्त समय।
( ४ ) चुनाव करने में सावधानी की आवश्यकता।
( ५ ) आज कल यह क्यों कर हो सकता है।
( ६ ) व्यवसाय और मानवता।

### ८. आदर्श गृहिणी

( १ ) आदर्श गृहिणी का स्वरूप,
( २ ) आधुनिक नारी और पुरुष,
( ३ ) आदर्श गृहिणी की दिनचर्या,
( ४ ) आदर्श गृहिणी का महत्व,
( ५ ) नवीन और प्राचीन आदर्श और,
( ६ ) 'गृहलक्ष्मी'

### ९. पुस्तकों का अध्ययन

( १ ) पुस्तकों के प्रकार,
( २ ) पुस्तकों का वर्गीकरण,

( ३ ) अध्ययन किस प्रकार से किया जाय ?
( ४ ) पुस्तकों का चुनाव,
( ५ ) पुस्तकों से लाभ और,
( ६ ) उपसंहार

## १०. पाश्चात्य सभ्यता का भारत पर प्रभाव

( १ ) पाश्चात्य सभ्यता क्या है ?
( २ ) भारतीय सभ्यता का दिग्दर्शन,
( ३ ) संयम और विवेक का ह्रास,
( ४ ) अन्धानुकरण के दोष,
( ५ ) उच्छृङ्खलता की वृद्धि,
( ६ ) फैशन का जोर और
( ७ ) पाश्चात्य सभ्यता से क्या लेना चाहिए और निषर्ष।

## ११. हिन्दी भाषा और साहित्य पर विदेशी प्रभाव

( १ ) प्रस्तावना,
( २ ) विदेशी शासन के दुष्परिमाण,
( ३ ) मुसलिम-काल में हिन्दी का स्वरूप,
( ४ ) यूरोपियन शक्तियाँ और उनका प्रभाव, विशेषतः अँग्रेजी का प्रभाव,
( ५ ) अन्तः प्रान्तीय प्रभाव,
( ६ ) इन सबों के बीच हिन्दी की मौलिकता।

## १२. साहित्य और समाज

( १ ) साहित्य क्या है ?
( २ ) कवि और लेखक विचार या भाव कहाँ से लेते हैं,
( ३ ) साहित्य समाज का दर्पण है,
( ४ ) किसी भी युग के कवि या लेखक की रचना ( तुलसीदास )
( ५ ) हमारे साहित्य और समाज की विशेषताएँ,

( ६ ) युगधर्म और साहित्य तथा
( ७ ) सहित्य का समाज पर प्रभाव,

## १३. दया

( १ ) दया ही धर्म है ( धर्म कि दया सरिस हरियाना ),
( २ ) दया क्यों करनी चाहिए ?
( ३ ) दया कहाँ और किस प्रकार करनी चाहिए ?
( ४ ) दया से आत्म-सन्तोष और सुख की वृद्धि,
( ५ ) भगवान् दयालु है ;
( ६ ) प्रत्येक मानव का लक्ष्य तथा
( ७ ) उपसंहार

## १४—गुरुभक्ति

१—प्रस्तावना ।
२—प्राचीन काल में गुरु-भक्ति ।
३—आज के गुरु और शिष्य ।
४—गुरु-भक्ति की आवश्यकता ।
५—गुरु भक्ति के प्रकार ।
६—समाज को इससे क्या लाभ है ? तथा
७—निष्कर्ष ।

## १५—कृषि का महत्व

१—भोजन की अन्य वस्तुओं से प्राथमिकता ।
२—कृषि ही अन्य कार्यों का आश्रय ।
३—कृषक का जीवन और महत्व ।
४—आज का परिवर्तित युग और भारत की परिस्थिति ।
५—कृषि में सुधार किस प्रकार हो सकता है ? तथा
६—उपसंहार ।

## अभ्यास

विवरणात्मक निबन्ध—एक आदर्श देश-भक्त, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, शिवाजी, अशोक, कविवर जयशंकर प्रसाद आदि।

## वर्णनात्मक निबन्ध

दुर्गापूजा, दीपावली, ग्राम-पाठशाला, जन्माष्टमी, ग्रीष्मऋतु, वर्षा ऋतु, किसी पर्वतीय प्रदेश का दृश्य, बाढ़ आदि।

## विवेचनात्मक निबन्ध

१—आलस्य से हानियाँ।

२—मीठे वचन।

३—मानव-जीवन के आनन्द।

४—साहित्य और कला।

५—मनुष्य के विकास का इतिहास।

६—विज्ञापन।

७—हमारा समाज।

८—आधुनिक परीक्षा-प्रणाली के दोष ९-प्राचीन भारतीय संस्कृति १०-आज के जीवन की जटिलता ११-आज की शिक्षा १२-जनता और नेतागिरी १३-भारतीय लोकतंत्र की असफलता १४-आज का भारतीय नागरिक।

१५—सरकारी कर्मचारी और जनता।

## व्याख्यात्मक निबन्ध

(१) जैसे को तैसा (२) अपकार का बदला उपकार से (३) संघे शक्तिः कलौयुगे (४) सत्संग (सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्) (५) मनकी विशुद्धता (तीर्थम् परम् कि हि स्वमनो विशुद्धम्) (६) कीर्तिर्यस्य स जीवति

# लेखकों के निबन्ध

## कहानी

### प्रेमचन्द

सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोविज्ञान के सत्य पर हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखित होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस आवेग में पिता के मनोवेगों को चित्रित करना और तदनुकूल उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करना कहानी को आकर्षक बना सकती है। बुरा आदमी भी बिलकुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं न कहीं देवता अवश्य छिपा होता है,—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका-लेखक का काम है। विपत्ति पर विपत्ति पड़ने से मनुष्य कितना दृढ़ हो जाता है—यहाँ तक कि वह बड़े से बड़े संकट का सामना करने के लिए ताल ठोंक कर तैयार हो जाता है, उसकी सारी दुर्वासना भाग जाती है, उसके हृदय के किसी गुप्त स्थान में छिपे हुए जौहर निकल आते हैं और हमें चकित कर देते हैं, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। एक ही घटना या दुर्घटना भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित करती है, हम कहानी में इसको सफलता के साथ दिखा सके तो कहानी अवश्य आकर्षक होगी। किसी समस्या का समावेश कहानी को आकर्षक बनाने का सबसे उत्तम ढंग है। जीवन में ऐसी समस्याएँ नित्य ही उपस्थित होती रहती हैं और उनसे पैदा होने वाला द्वन्द्व आख्यायिका को चमका देता है। सत्यवादी पिता को मालूम होता है कि उसके पुत्र के हत्या की है। वह उसे माप की बेदी पर बलि कर दे या अपने जीवन सिद्धान्तों की हत्या कर देना कितना भीषण द्वन्द है। पश्चात्ताप ऐसे द्वन्दों का अखंड स्रोत है। एक भाई ने दूसरे भाई की सम्पत्ति छल-कपट

से अपहरण कर ली है, उसे भिक्षा माँगते देख कर क्या छली भाई को जरा भी पश्चात्ताप न होगा। अगर ऐसा न हो तो वह मनुष्य नहीं है।

उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र प्रधान। चरित्र प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है, मगर कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुञ्जाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अंग दिखाता है। यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्व निकले वह सर्व मान्य हो और उसमें कुछ बाते की हो। यह एक साधारण नियम है कि हमें उसी बात में आनन्द आता है जिससे हमारा कुछ संबंध हो। जुआ खेलने वालों को जो उल्लास और उन्माद होता है वह दर्शक को कदापि नहीं हो सकता। जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि पाठक अपने को उनके स्थान में समझ लेता है, तभी उस कहानी में आनंद आता है। अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर दी तो वह अपने उद्देश में असफल है।

(१) कहानी की पृष्ठ भूमि मनोवैज्ञानिक होनी चाहिए।

(२) कहानी घटना प्रधान और चरित्र प्रधान होती है।

(३) कहानी सर्व मान्य तत्व को सामने लाए और उसके चित्र सजीव तथा आकर्षकर दें।

## डाक्टर श्रीराम प्रसाद त्रिपाठी

## का

# भाषण

उपस्थित संभ्रांत महिलाओ, सज्जनो एवं अध्यापक बन्धुओ, यों तो अध्यापक समाज की बहुत सी जटिल और विचारणीय समस्याएँ हैं। किन्तु उनमें से कुछ तो ऐसी हैं, जिन पर तत्काल ध्यान देने और विचार करने की आवश्यकता है। मैं आपके सहयोग से उन्हीं मुख्य प्रश्नों पर विचार करने का प्रयत्न करूँगा।

अभी अभी आप सब के सामने माननीय विकास-मंत्री श्री केशवदेव मालवीय जी ने खिन्नमनस्क होकर घोषणा की कि 'आज जिस प्रकार की शिक्षा देश के नवयुवकों को दी जा रही है, वह वास्तव में शिक्षा है, अथवा और कुछ। मुझे नहीं मालूम कि यह शिक्षा वास्तव में शिक्षा है भी? श्री मालवीय जी ने जो कुछ कहा, वह विचारणीय है। इससे पूर्व कि इस विषय पर विचार किया जाय, यह आवश्यक है कि हम अपनी वर्तमान शिक्षा का इतिहास समझ लें। आज जो रूप शिक्षा का है, किस प्रकार विकसित हुई, जब मैं इस नवीन शिक्षा-योजना का प्राचीन शिक्षा-योजना से मुकाबिला करता हूँ तो मैं सहसा इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि पूर्व समय में शिक्षण-कार्य इस पुण्य-भूमि विशाल भारत में कोई व्यवसाय न समझा जाता था, वरन् शिक्षा देना एक प्रकार से मुख्य कर्तव्य समझा जाता था। जो कोई भी यह कार्य करता था, समाज उसको प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता और उसको धर्मात्मा की सम्मानित पदवी से विभूषित करता था। उस

---

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक सम्मेलन के ८९वें अधिवेशन के अवसर पर

समय जो जो कार्य धर्म की सीमा के अन्तर्गत थे, उनमें से शिक्षा देना और शिक्षा पाना मुख्य धर्म समझा जाता था। आप लोग अपने कर्त्तव्य-पालन में जिस आत्मतुष्टि का अनुभव करते हैं, वही आनन्द और सुख उन महर्षियों को विद्याध्ययन, विद्योपार्जन और विद्या-दान में प्राप्त होता था। उनका यह सुख किसी सुख से किसी प्रकार भी न्यून न था। अध्यापन-कार्य करनेवालों को दूसरा पुरस्कार जो प्राप्त होता था, वह था समाज में उनका आदर-पूर्ण स्थान। समाज में सब कहीं उनका आदरपूर्ण स्वागत होता था। आचार्य जब कभी किसी राजसभा में पहुँच जाता था, तो राजा भी उसका सम्मान करता था, उसको प्रणाम करके उसकी चरण-रज मस्तक पर धारण करता था। उसके पश्चात् वह उसके पधारने का कारण पूछता और उसकी अभिलाषा आदरपूर्वक पूरी कर देता। समाज का यह आदर-सत्कार ही अध्यापनकार्य करने-वालों को संतुष्ट कर देता था। मनुष्य के हृदय में सम्मान पाने की भी एक स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है, जिसकी पूर्ति आदर-सत्कार पाने ही से होती है। तीसरी बात यह है कि समाज के धनी-मानी और शासक ने अपना नियम बना लिया था कि शिक्षा-कार्य करनेवालों की आवश्यकताएँ तत्काल पूरी कर दी जायँ। अध्यापक को भिक्षा माँगकर अपने विद्यालय का कार्य चलाना न पड़ता था। उचित सहायता बिना मांगे ही मिल जाया करती थी। वे किसी से न कुछ माँगते और न कुछ प्रार्थना करते थे। वे अपने ऊपर कष्ट सहन कर लेते, परन्तु किसी से कुछ न माँगते थे, कहीं यदि विवश हो कभी कुछ कहना पड़ता था, तो वह व्यर्थ न जाता था। बच्चों के दुग्धपान के लिए गाय, कन्या के विवाह का दहेज आदि सब कुछ प्राप्त हो जाता था। सारांश यह कि उसको किसी प्रकार की कठिनाई न उठानी पड़ती थी।

विद्या ज्ञानोपार्जन का एक साधन है। यह विद्या भी व्याकरण

के अधीन है। अतः व्याकरण की इसलिए आवश्यकता है कि हम भाषा के मूलभूत सिद्धान्त और उनको त्रुटि रहित बनाने में सफल हो सकें। आजकल कुछ लोग बिना समझे बूझे ही कहने लगे हैं कि भाषा में व्याकरण की आवश्यकता ही नहीं। वे समझते नहीं कि नाद और शब्द का अटूट सम्बन्ध है। भाषा का मुख्य विषय नाद है और व्याकरण का शब्द। हमारे पूर्वजों ने नाद और शब्द के सिद्धान्तों को स्वीकार किया था। इस विषय में जितना काम हमारे यहाँ हुआ है, वैसा कहीं नहीं हुआ। जब संस्कृत का गहन अध्ययन करने के अभिप्राय से यहाँ के शास्त्रीगण लंदन पहुँचे, तो उनकी ज्ञान-पिपासा वहाँ शांत न हो सकी। वे जर्मनी और फ्रांस पहुँचे; किन्तु वहाँ से भी निराशा ही हाथ आई। शब्द और नाद के सम्बन्ध में जितना कुछ अनुसंधान यहाँ हुआ है, वैसा किसी और देश में नहीं हो पाया। आज भी भाषा को नियमबद्ध करने और उसको प्रगतिशील बनाने में पाणिनि व्याकरण जितना समर्थ है, वैसा संसार की किसी भाषा का व्याकरण नहीं है। हाँ, अरब वालों ने इस सम्बन्ध में कुछ परिश्रम किया है और अरबी भाषा के व्याकरण को सांगोपांग बनाने में बहुत कुछ सफल भी हुए हैं। मैंने उदाहरणस्वरूप जानबूझकर व्याकरण का नाम लिया है, क्योंकि इसी पर आजकल नाना भाँति से विभिन्न आक्षेप होते रहते हैं। व्याकरण दो प्रकार के हैं, एक तो भाषासम्बन्धी दूसरा वैदिक व्याकरण, बढ़ते बढ़ते बहुत से हो गये। इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने एक नया सिद्धान्त सामने रखा। वे किसी विषय को इस प्रकार पढ़ाते थे कि उस विषय के अन्तिम सत्य तक पहुँच जायें। फल यह होता था कि सत्य, ज्ञान, विज्ञान सभी एक केन्द्र पर पहुँच जाते और ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता था। वह समझते थे कि जिस प्रकार और और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार विद्या की भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इस सिद्धि को प्राप्त करने का उद्योग वे लोग जीवनपर्यन्त करते रहते थे। उन्हें जिससे लगन लग जाती थी; उसी पर विचार करते थे। यह विषय चाहे पौरुषेय हो चाहे अपौरुषेय, रूप युक्त हो अथवा रूप रहित हो। व्याकरण ही एक ऐसा विषय है, जिसके पठन-पाठन में महर्षियों ने अपने जीवन को मिट्टी में मिला दिया।

हमारी शिक्षा की चौथी विशेषता यह थी कि उच्च शिक्षा नगरों में नहीं दी जाती थी। जितने भी शिक्षा प्रदान करनेवाले ऋषि या मुनि थे, वे सब नगरों से घबराते थे। उन्हें विश्वास था कि शाश्वत जीवन की प्राप्ति नगरों में हो ही नहीं सकती। नागरिक जीवन का विलासितापूर्ण वातावरण विद्यार्थियों के अनुकूल कभी नहीं हो सकता। यद्यपि प्राचीन नागरिक जीवन और वर्तमान नागरिक जीवन में आकाश पाताल का अन्तर है फिर भी वे उस समय के नागरिक जीवन के आकर्षण से दूर रहना चाहते थे। उनको अपनी प्राचीन रूढ़ियों का इतना मोह था कि वे उन्हें परिवर्तित करने का विचार भी अपने मन में न आने देते थे। उन्होंने शास्त्रीय शिक्षा के साथ साथ धार्मिक शिक्षा की भी उपयोगिता समझ ली थी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्ति के लिए उन्होंने देवालयों को चुना। देवालयों का विशुद्ध धार्मिक वातावरण छोटे छोटे बालकों म धर्म-प्रेम और आचरण-शुद्धि की भावना भरता रहता था। फल यह हुआ कि विभिन्न विषयों की शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा का भी सम्मिश्रण अनायास ही होता गया। यद्यपि वे मन्दिरों को भी शिक्षा के लिए बहुत उपयोगी न समझते थे फिर भी आवश्यकता को देखकर वे इस सीमा तक किसी प्रकार राजी हो गए।

ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल तक भारतीय शिक्षा के प्रारम्भिक केंद्र मंदिर और मस्जिद ही थे। मुस्लिम-काल में भी यही शिक्षा प्रचलित रही। हिन्दू अपने बालकों को मन्दिर में और

और मुसलमान अपने बालकों को मस्जिद में शिक्षा देते थे। मन्दिर और मस्जिद में शिक्षा देने का यह फल होता था कि दोनों जातियों के बालकों में धार्मिक रुचि उत्पन्न हो जाती थी जो भविष्य में उनके आचरण को सुसंस्कृत कर देती थी।

आज हम कहते हैं कि हममें और हमारे समाज में बहुत सी निर्बलताएँ हैं। यह कमजोरियाँ एकमात्र धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा के अभाव ही के कारण हैं। प्राचीन शिक्षा में धार्मिक और अध्यात्मिक शिक्षा को प्रमुखता का स्थान दिया जाता था यही कारण था कि विद्यार्थी अपने गुरु को सर्वस्व समझता था।

गुरु का नाम आदर और श्रद्धापूर्वक जपने का आदेश था। विद्यार्थियों में यह मनोवृत्ति देखकर विश्वास हो जाता था कि बालक प्रकृति की गोद में पल रहा है। प्रकृति स्वतः हमें गुरुजनों के प्रति आदर और श्रद्धा का सदुपदेश देती है।

हमारे प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों ने कुछ नगरों को भी शिक्षा केन्द्र बना दिया था। उन नगरों में शिक्षा के अतिरिक्त और कोई कार्य प्रधान रूप से न होता था। सारा नगर विद्वानों और विद्यार्थियों से परिपूर्ण रहता था। हमारी विश्वनाथपुरी यह काशी नगरी भी इसी प्रकार के नगरों में से थी। उन्होंने विद्यादान के लिए काशी ही को निर्वाचित किया था। इसे उन्होंने व्यावसायिक केन्द्र न बनने दिया। अन्य नगरों की तरह उन्होंने इसे आमोद-प्रमोद के साधनों से भी दूर रखा था। उनका उद्देश्य तो इस नगर को आदर्श विद्याकेन्द्र बनाना था। अपनी इस योजना को सफल बनाने के लिए उन्होंने नगर से कुछ हटकर विभिन्न पाठशालाएँ स्थापित कीं, जिनमें छात्रों को निःशुल्क शिक्षा दी जाने का सुन्दर प्रबन्ध किया गया। इन पाठशालाओं और आश्रमों में हजारों विद्यार्थी शिक्षा पाते थे और सरल तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अपने गुरु के अनुशासन में रहते थे।

समय ने पलटा खाया। बाहर के विदेशियों के आक्रमण आरम्भ हुए। धीरे धीरे हमारी शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन होने लगा। शिक्षा-प्रणाली के बदलने से हमारा साहित्य भी बदलने लगा। ज्ञान के स्थान पर अज्ञान का बोलबाला होने लगा। अज्ञानियों के हाथ में शासन-सत्ता आ गई। जिसका घातक प्रभाव हमारे साहित्य और हमारी सभ्यता पर भी पड़ा। रिंद और अमीरों के समय में हमारे जीवन में बहुत परिवर्तन हो चुका था। देश में धार्मिक मनोवृत्ति का ह्रास होना आरम्भ हो चुका था। सारांश यह यह कि बाहरी प्रभावों ने हमारे जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डाला।

अब मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुए। ये अपने साथ फारसी और अरबी भाषाएँ लाए थे। उन्होंने अपनी इन भाषाओं को प्रोत्साहन दिया। फलतः संस्कृत का सम्मान कम होने लगा। लोगों के विचारों में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। जनसाधारण में देववाणी संस्कृत का पठन-पाठन कम हो चला। किन्तु फिर भी ऐसे आपद काल में हमारे पण्डितों ने अपनी देवभाषा संस्कृत की रक्षा में कोई कसर उठा न रखी। उन्होंने कठिनाइयों का वीरतापूर्वक सामना किया। आर्थिक कष्ट सहे किन्तु अपने कर्त्तव्य का पालन किया। यदि उन मनस्वियों ने ऐसा त्याग न किया होता, तो आज हमारे पास कुछ भी न होता, उन्होंने सर्वस्व त्यागकर अपनी भाषा की रक्षा की।

शिक्षा के सम्बन्ध में हममें और मुसलमानों में बुनियादी मतभेद था। मुसलमान विद्वान् और शासक चाहते थे कि शिक्षा बड़े-बड़े नगरों में दी जाय और उन्हीं को शिक्षा-केन्द्र बनाया जाय। भारतीय विद्वानों का मत था कि शिक्षा-कार्य नगरों से दूर आश्रमों में संपादित हो। हमारे मुस्लिम विचारक और शासक हमारे इन शिक्षासम्बन्धी विचारों का विरोध करते थे। उनके

इस विरोध का मुख्य कारण था, मुसलमानों का अधिकांशतः नगरों ही में रहना। मुसलमानों का नगरों में रहना कई कारणों पर आधारित था। मैं उन सबका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं समझता। राजनीतिक दृष्टिकोण से उनका नगरों में रहना और वहीं से शिक्षा द्वारा अपनी सभ्यता और संस्कृति का विस्तार करना उनके लिये युक्तिसंगत भी था और स्वाभाविक भी। मुसलमानी शासनकाल में उनकी शिक्षा सम्बन्धी नीति के फल-स्वरूप मक्का, मदीना, दिल्ली इत्यादि बड़े-बड़े शिक्षा-केन्द्र बन गए।

मुसलमानों ने शिक्षा-क्षेत्र में नैतिकता और धर्म को प्रधानता दी। जीवन के अन्य अंगों की पूर्ति की ओर उनका ध्यान न था। वे जानते थे कि नैतिकता और धार्मिक विचारधारा से समाज को क्या क्या लाभ हो सकते हैं। वे शिक्षा देना धर्म समझते थे। धर्मशास्त्र ही शिक्षा के मुख्य पाठ्यग्रंथ थे। यहाँ तक कि वे धर्म-शास्त्रों को तो प्रधानता देते थे किन्तु साहित्य को नहीं।

मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में भी फीस न ली जाती थी और यदि पाठशाला का प्रबन्ध चलाने के उद्देश्य से कुछ फीस भी ली जाती तो बहुत कम। मंदिरों की तरह उन्होंने भी मस्जिदों में अपने मकतब स्थापित किए। मुझे लड़कपन में फारसी पढ़ाई गई थी। मैं एक मस्जिद में पढ़ने जाता था। एक मौलवी साहब फारसी की शिक्षा देते थे। मुझे याद है कि दो आना महीना फीस पड़ती थी। यह रकम भी एक बड़ी रकम समझी जाती थी।

इस उथल-पुथल में हमारी संस्कृत भाषा का दिनोंदिन ह्रास होने लगा। हम अरबी और फारसी ऐसी शुष्क विदेशी भाषाओं से समुचित लाभ न उठा सके। उनकी विचारधारा और हमारी विचारधारा भी एक न थी। फल यह हुआ कि हम अपनी भाषा से दूर हटते गए।

फारसी और अरबी का हमारे सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। राज्य-कार्य में फारसी और अरबी के विद्वानों ही का सम्मान था। संस्कृत के पंडितों को कोई पूछता न था। समाज से उनको जो कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी, वह भी बंद हो गई। अब संस्कृत के विद्वान् नितान्त निराश्रित हो गए। जीवनयापन के लिए उन्हें अब दूसरा मार्ग खोजना पड़ा। फल यह हुआ कि हमारा पंडित समाज ज्योतिषियों, कर्मकांडियों में विभाजित हो गया। उन्होंने इन्हीं को अपने निर्वाह का साधन बनाया। यद्यपि इन कार्यों से उनको समुचित धन प्राप्त न होता था, किन्तु समाज में उनका यथेष्ट सम्मान था। हमारे इस परिवर्तन का प्रभाव अरबी और फारसी के विद्वानों पर पड़ा। वहाँ के मौलाना लोग भी नजूमी, हकीम और मुल्ला बनने लगे। मुस्लिम-समाज इनकी भी खूब इज्जत करता था। मुल्लाओं के हाथ ही में शिक्षा की बागडोर थी, उसको जिस किसी विषय का ज्ञान होता, अपने छात्रों को वही विषय पढ़ा देता। सारांश यह कि हिन्दू और मुस्लिम-समाज में से कहीं भी शिक्षा का कोई वैज्ञानिक और क्रमबद्ध प्रबन्ध न था। शिक्षा के इस बेढंगे क्रम ने समाज को अज्ञानता के गहरे गड्ढे में ढकेल दिया।

अठारहवीं सदी के उत्तर भाग में भारत के सबसे बड़े भाग पर अंग्रेजी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। उस समय के विद्वानों और अधिकारियों ने निश्चय किया कि शिक्षा का यह क्रम ठीक नहीं है। यह शिक्षा-प्रणाली तो अब जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है। इससे अब हम जीवन की दौड़ में आगे नहीं बढ़ सकते। अब इस ढंग को त्याग देना ही कल्याणप्रद है। अब तो बालकों को समय की माँग के अनुसार नवीन शिक्षा-प्रणाली से शिक्षा देने की आवश्यकता है। हमारा साहित्य इतना निर्बल है कि यहाँ की कोई पुस्तक योरोप की किसी पुस्तक का सामना नहीं कर

सकती, समय के बदलने के साथ साथ हमें अपना शिक्षा-विधान भी बदल देना चाहिए। मैं इन बातों की समालोचना करना व्यर्थ समझता हूँ।

तत्कालीन हमारे नेताओं को भी विदित हो गया कि इस नवीन शिक्षा प्रणाली से बहुत लाभ है इस शिक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् हम बड़े बड़े पदों पर पहुँच सकते हैं, हम शासन का एक अंग बन सकते हैं। तत्कालीन अंग्रेज शासकों को भी शासन-सूत्र चलाने के लिये अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों की आवश्यकता थी। फल यह हुआ कि बहुत से भारतवासी जीविका और धन की लालच से उस ओर दौड़ पड़े। शिक्षित लोगों को बड़ी बड़ी नौकरियाँ मिलने लगीं। धीरे-धीरे शिक्षा नौकरी प्राप्त करने का साधन मात्र रह गई। हमें वे बातें भी सीखनी चाहिएँ, जो हमारे जीवन को सुधारें। एकमात्र नौकरी पाने का प्रलोभन तो देश के लिए बड़ा भयावह है। अपनी आर्थिक दशा सुधारने का तो सबको अधिकार है। परन्तु शिक्षा को अर्थोपार्जन का साधन-मात्र बना देना देश के लिए बड़ा घातक है। नौकरी करने का विषैला प्रभाव यह पड़ता है कि हमारा स्वाभिमान समाप्त हो जाता है। हम अपने पैरों पर खड़ा होना भूल जाते हैं। उसका परिणाम राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होता है।

अंग्रेजी की ओर भारतीयों का आकर्षण आए दिन बढ़ता गया। देश के प्रमुख नगरों में अंग्रेजी स्कूल स्थापित होने लगे। हजारों भारतीय बालक उनमें नवीन प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने लगे। सरकार ने इस अंग्रेजी शिक्षा का सुचारु रूप से प्रसार करने के लिये शिक्षा-विभाग स्थापित किया। अभी तक हिन्दू अथवा मुस्लिम किसी भी काल में यह विभाग स्थापित न हुआ था। शिक्षा-विभाग का स्थापित न होना उनकी अज्ञता और अदूरदर्शिता का जाज्वल्यमान प्रमाण है। उनसे यह भारी

भूल हुई थी, अंग्रेजों ने उनकी इस भूल से शिक्षा ग्रहण की और शिक्षा-कार्य सुचारु रूप से चलाने और अपना उद्देश्य पूर्ण करने के विचार से उन्होंने शिक्षा-विभाग की स्थापना की। परिणाम यह हुआ कि लोग रोजगार पाने के प्रलोभन से अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने लगे।

व्यवसाय अथवा तिजारत द्वारा जीविकोपार्जन के सम्बन्ध में भगवान मनु ने आदेश दिया है कि ब्राह्मण को किसी दशा में भी व्यापार न करना चाहिए, क्योंकि उसमें दस में नौ मिथ्या का सहारा लेना पड़ता है। उनका मुख्य कार्य तो पठन-पाठन, यजन-याजन एवं दान लेना तथा देना ही है।

अब प्रश्न यह है कि क्या हम अपने इस उद्देश्य को बदल सकते हैं। लोग कहते हैं कि हमारे ऋषि-मुनिगण ऐसे त्यागी और निःस्पृह थे। हमारा अध्यापक-समाज भी यह त्याग कर सकता है। इसमें सरकार तथा समाज दोनों का समान उत्तर-दायित्व है। सरकार को ऐसे अध्यापक अपेक्षित हैं, जिनसे राष्ट्र की शोभा और प्रतिष्ठा बढ़े, साथ ही हमारा शिक्षक-समाज भी जनता की दृष्टि में सम्मान और प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाय। मैं स्वयं एक अध्यापक हूँ। जीवन भर शिक्षा से हमारा अटूट सम्बन्ध रहा है। कभी किसी सरकारी शिक्षा-कमेटी का सदस्य निर्वाचित हुआ, कभी किसी कालिज का प्रोफेसर। यूनिवर्सिटी में काम करते हुए मेरे जीवन के उत्कर्ष समाप्त हो चुके हैं। समय ने प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को ठप कर दिया है। अब इस परिवर्तित काल में आप ही बता दें कि क्या आप उन पुराने शिक्षा-सिद्धान्तों पर चलने को तैयार हैं? पुराने समय को फिर वापस लाने की आशा अपने को भुलावा देना मात्र है। अब तो हमें अन्य विभागों की तरह अपना महत्व प्रकट करना है। इसका एकमात्र साधन शिक्षा-विभाग है।

आज दिन हमारे शिक्षा-केन्द्रों में बहुत सी कमजोरियाँ हैं। इसी कारण से उनसे निकले हुए स्नातकों में नैतिक बल की कमी है। आज के शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों के हृदय में कुछ तथा मुँह पर कुछ और ही होता है। वे बाहर-भीतर एक से नहीं होते। यह पतन ३०० वर्ष पूर्व तक रहने वाली दासता के कारण ही है। दासता का खुमार अभी तक नहीं उतर पाया।

अब वर्तमान सरकार और समाज का हाल सुनिए। एक वह समय था कि अध्यापकों को सम्राट् तक साष्टांग दंडवत करते थे। हमको आदर की दृष्टि से देखते थे। आज यह दशा है कि एक धनिक पुत्र, जिसके अभी दूध के दाँत भी नहीं गिर पाये हैं, हम पर हँसता है। केवल इसलिए कि वह मोटर पर जा रहा है और मास्टर बेचारा पैदल चल रहा है। लोग अपने लड़के को पढ़ाने के लिए मास्टर की तलाश करते हैं। मिल जाने पर उससे पूछते हैं "क्या वेतन लोगे?" बीस रुपया। "बीस रुपया, यह तो बहुत है, खैर परीक्षा-स्वरूप रखे लेते हैं।" वे यह नहीं सोचते कि आज-कल के समय में बीस रुपया कौन सी ऐसी बड़ी रक़म है। वहाँ न अध्यापक का मान है और न सत्कार। हम लोगों ने शिक्षा को भी एक विभागीय कार्य समझ रखा है कि वह किसी न किसी प्रकार चलता रहे। आज हम इतनी हीनावस्था को पहुँच चुके हैं।

हम अब स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जिस प्रकार हमारे अधिकारों में वृद्धि हुई है, वैसे ही हमारे कर्तव्यों में भी बढ़ती हुई है। आज तो शिक्षक का यह उद्देश्य होना चाहिए कि भारत की स्वतन्त्रता को रक्षित रखनेवाले नागरिक पैदा हो सकें और अपने त्याग और अपनी योग्यता के आधार पर देश को उन्नति की ओर ले जाँय। वे सब प्रकार से जीवन-संग्राम और सांसारिक संघर्ष में विजयी हो सकें।

हमें अब अपनी व्यवसायात्मक बुद्धि को छोड़ देना चाहिए। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को भी अपनी व्यवसायात्मक मनोवृत्ति को बदलना होगा। अपनी तानाशाही और अफ़सरी की चित्तवृत्ति हटानी पड़ेगी और अध्यापक समाज से सम्मानित व्यवहार करना होगा। अफ़सरों के दिमाग़ आसमान पर पहुँचाने में कुछ हमारा भी दोष है। हमारी स्वार्थपरता और खुशामद ने उनको अहंकारी बना दिया है। याद रखिए जहाँ आपने स्वार्थसिद्धि और चाटुकारिता को गले लगाया, वहाँ खराबी पैदा हो जायगी। आप किसी भी दशा में अपने स्वाभिमान को धक्का न लगने दें। मैं उस अनुशासन को नहीं मानता जो डंडे के जोर से स्थापित किया गया हो। वह डिसिप्लिन तो दो कौड़ी की है। अनुशासन तो यम, नियम और संयम के आधार पर स्थापित होना चाहिए। अपनी वाणी पर अधिकार रखना ही आपके समस्त कार्य बना देगा। शंकर-दिग्विजय में एक कथा आई है, जिसमें लिखा है कि जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य जी दिग्विजय करते हुये जब शैलराज हिमालय के अंचल में अवस्थित उत्तराखंड में पहुँचे, तो वहाँ उनको एक मुनि मिला। वह सर्वदा मौन रहता था। उसके मौन में इतने उपदेश निहित थे कि श्री-शंकराचार्य को उसी से संतोष हो गया। आपके आचरण और कार्य इतने पवित्र और शिक्षाप्रद हों कि छात्रगण स्वतः उनसे प्रभावित होते रहा करें।

आज समय बदल चुका है। पुरानी गाड़ी पर चढ़े रहने से अब सुख न मिलेगा। संघ शक्ति ही कलियुग में वास्तविक शक्ति है। आप अपना संगठन दृढ़ बनाएँ। किन्तु स्मरण रहे कि संगठन आकाश से नहीं उतरता। किसी जोर के प्रभाव से नहीं बन जाता। आपको परिश्रमपूर्वक उसे दृढ़ बनना है। आज हमारे जीवन के प्रत्येक अंग में कोई न कोई त्रुटि दृष्टि आती है। कारण यह है कि हम स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए बिल्कुल तैयार न

थे, परन्तु वह भाग्यवश हमको सहसा प्राप्त हो गई है। अब उसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। देश, काल और पात्र के विचार से हमें देश को शिक्षित बनाना है। सम्भव है यदि हम सब जुटकर काम करेंगे तो २५ वर्ष में हम जीवन का प्रत्येक अंग समुन्नत करने में सफल होसकें।

शिक्षा-प्रणाली तो दोषपूर्ण है ही, परीक्षा लेने का ढंग भी अच्छा नहीं है। हम चाहे अपनी समस्त पुस्तकें परीक्षा की तिथि से बहुत पहले ही समाप्त कर डालें किन्तु परीक्षा वर्ष भर के पश्चात् ही होगी। वही पुराना ढंग आज भी चला जाता है। आज की शिक्षा में अत्यधिक समय लगता है। शिक्षा तो वैयक्तिक रूप से पृथक्-पृथक् होनी चाहिए। जो जिस समय अपनी शिक्षा समाप्त करदे, उसको शिक्षा-समाप्ति का प्रमाण-पत्र मिल जाना चाहिए। इस समय शिक्षा में डिग्रियों तथा पदवियों का बड़ा मान है। नाम लिख लेना, कुछ पढ़ लेना और हिसाब जोड़ लेना मात्र शिक्षा नहीं है, शिक्षा तो मनुष्य की आत्मा को प्रगति की ओर ले जाती है। नौकरी प्राप्त करने के उद्देश्य से डिग्रियों की सृष्टि हुई। आज जो डिगरीधारी है, उसी को नौकरी मिलती है। यदि आज विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगौर भी नौकरी चाहते तो उनको भी डिगरी के अभाव में नौकरी न मिल सकती। इंगलैंड में डिगरियों का इतना मान नहीं है। भारत में तो डिगरियाँ ही ईश्वर हैं। भारत में अज्ञान की सेना हिटलरी सेना से भी प्रबल है। आज हमारे सामने जीवन-मरण की समस्या उपस्थित है। उसे हमें बुद्धिमत्तापूर्वक सुलझाना है। सरकार को चाहिए कि वह चाहे अपनी अन्य योजनाओं को कम कर दे, किन्तु शिक्षा-कार्य को तन, मन, धन से अवश्य पूरा करे। क्योंकि बिना शिक्षा-प्रचार के देश में किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह मानव को वास्तविक मानव बनादे। आज हमारा मानसिक और आत्मिक दृष्टिकोण बदल चुका है।

अब हमने अपनी शक्ति को पहचान लिया है। अतः अब हम सब कुछ कर सकते हैं किन्तु वर्तमान शिक्षा से कुछ भी होना सम्भव नहीं। हमें शिक्षा में आमूल परिवर्तन करना है। आज की शिक्षा तो नवीन दृष्टिकोण से होनी चाहिए। दो हजार वर्ष पूर्व की शिक्षा-प्रणाली भी अब हमें आगे नहीं बढ़ा सकती।

इस समम शिक्षा नगरों में केंद्रित हो गई है। हमें ग्रामों और नगरों दोनों स्थानों पर शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। भारत की अधिकांश जनता तो ग्रामों में ही बसी हुई है। यदि वहाँ विद्या की रश्मियाँ न पहुँचीं तो हमारी शिक्षा-योजना असफल ही रहेगी। माना कि आज भी शिक्षा परतंत्रता के समय के अनुसार ही चली आती है। हमें उसी में उचित सुधार करके काम चलाना होगा। जिस प्रकार पुरानी मशीनों के पुरजे खोलकर उनको काम चलाऊ बना लेते हैं, उसी प्रकार इस दूषित शिक्षाप्रणाली में यथाशक्ति सुधार करके हम अपना काम चला सकते हैं। आज जिस प्रकार समाज के नैतिक स्तर के आधार पर विधान का विधेयक बनाया जाता है, उसी प्रकार योग्यतानुसार शिक्षा का विधान बनाय जाय। जिस को कार्यान्वित करके समाज के भावी नागरिकों का नैतिक स्तर उठाया जा सकता है।

आज चारों ओर भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार दिखाई देता है। लाख प्रयत्न करने पर भी पर भी कोई परिणाम नहीं निकलता। आप चाहे जितने ऐंटी करप्शन डिपार्टमेंट स्थापित करें, जबतक आप बच्चों में शालीनता और चरित्र-निर्माण का प्रयत्न न करेंगे, कोई सुधार सम्भव नहीं। आज तो हमारा पतन इसी सीमा तक पहुँच गया है कि जहाँ पहले कोई दारोगा पाँच रुपया रिश्वत लेता था, वही आज १० रुपया लेता है। बाहरी दबाव से करप्शन कम न होगा। वह तो बच्चों का चरित्र ऊँचा करने पर ही दूर हो सकता है। यदि हम इस संबन्ध में बराबर प्रयत्नशील रहें तो ४० वर्ष में कायापलट हो सकती है। रूस ने जिस प्रकार समस्त

रूसी जनता का दृष्टिकोण बदल दिया है, उसी प्रकार आप विद्यार्थी-समाज का दृष्टिकोण बदल सकते हैं। अब हमारे शिक्षालयों में स्वतंत्र वातावरण होना चाहिए। शिक्षा की सफलता बहुत कुछ स्वतंत्र वातावरण ही पर निर्भर है आज जब कोई शिक्षा-अधिकारी किसी पाठशाला में पहुँचता है, तो वह अपना रोब और आतंक हम सब पर जमाना आरम्भ कर देता है। इससे उसे या शिक्षक को कोई लाभ नहीं पहुँचता। अधिकारियों का काम रोब झाड़ना नहीं है। उनका तो कर्त्तव्य है, हमारी असुविधाओं को समझना और उनको दूर करने का उपाय करना।

जिस प्रकार बीज बोने से पहले पृथ्वी को ठीक कर लेना एक चतुर किसान के लिए आवश्यक है, वैसे ही सभ्य और सुसंस्कृत नागरिकों के निर्माण के लिए हमें संतुष्ट और योग्य शिक्षक दरकार हैं। अतः सरकार का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक शिक्षक को जीवन-निर्वाह योग्य वेतन अवश्य प्रदान करे। यद्यपि हमारा शिक्षक-समाज किसी से कुछ माँगना कभी पसन्द नहीं करता परतु परिस्थितियाँ हमें इस समय विवश कर रही हैं। शिक्षकों का कष्ट दूर करने का आश्वासन देना अब व्यर्थ है। बेकार बातें बनाने से अब काम नहीं चलेगा। अबतो वास्तविकता की दृष्टि से सरकार को देखना पड़ेगा। यदि धन नहीं है, तो ऋण लीजिए। अमेरिका, इंगलैंड और रूस सभी तो कर्जदार हैं, किन्तु शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताएँ अवश्य पूरी की जाती हैं। अन्य देशों की सरकार शिक्षा को प्राथमिकता देती है। वहाँ की जनता भी शिक्षा का महत्व समझती है और इस सम्बन्ध में सर्वदा सरकार का साथ देने को तैयार रहती है। यही कारण है कि यदि वहाँ शिक्षा के लिये एक मिलियन की अपील की जाती है, तो दो मिलियन प्राप्त होते है।

शिक्षा कोई वैश्यवृत्ति नहीं है कि फीस की लालच में

विद्यार्थियों की संख्या एक कक्षा में जितनी चाहो बढ़ाते चले जाओ। छोटी कक्षाओं में अधिक छात्र होने से लाभ न होगा। प्रायमरी, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा की उपयोगिता और उसके महत्व में कोई अन्तर न होना चाहिए। इसी तरह सरकारी और गैरसरकारी स्कूलों का भेद भी अवांछनीय हैं। जब तक जनता शिक्षा-प्रचार संबन्धी आंदोलन आरम्भ न करेगी कोई काम न चलेगा। कितने आश्चर्य की बात है कि आज पुलिस तो बढ़ गई किन्तु शिक्षा न बढ़ पाई। इससे यही सिद्ध होता है कि हमारी वर्तमान सरकार शिक्षा के महत्व को नहीं समझती। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि हमारे अधिकारीगण शिक्षा को पहला नम्बर दें। सरकार तो कछुए की चाल से भी सुस्त चलती है। हम क्यों सुस्त पड़े रहें। हमें तो अपनी शिक्षा-संस्थाएँ सुदृढ़ बनानी चाहिएँ। यदि आप संयुक्त प्रयत्न द्वारा शिक्षा-विधान नहीं बनाते, तो फिर विरोध के लिये तैयार हो जाइए। आप एक शिक्षा-योजना बनाएँ और उसे नियत समय पर पूरी कर दिखाएँ।

आज मैं शिक्षोत्थान के विचार से अपने हृदय की बात आपसे स्वतंत्रतापूर्वक कह रहा हूँ। आप यह भूल जाइए कि इस प्रकार की स्पष्टवादिता से किसी प्रकार की हानि हो सकती है। यह तो सर्वथा असम्भव है। आप संकल्प कीजिए और उसके अनुसार कार्य संपादित कीजिए। थोड़े ही दिनों में आप सफल मनोरथ हो जाएँगे। आप में जब शक्ति होगी, तो सरकार भी आपके किसी काम में रुकावट डालने का साहस न करेगी। आपकी संस्था जागरूक रहे। यदि चन्दे के भय से लोग इसमें सम्मिलित नहीं होते, तो अपनी संस्था को निःशुल्क कर दीजिए। यदि आप में हार्दिक बल नहीं है, तो यह तमाशे करने से लाभ नहीं।

मैं अन्त में आप सब भाइयों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि आप सबने ध्यानपूर्वक मेरे कथन को सुना है। अन्त में मैं फिर आपसे यही निवेदन करूँगा कि आपको शिक्षा को सब प्रकार की प्रगतियों की जड़ समझकर उसके प्रचार में यथासाध्य सर्वदा प्रयत्न करना चाहिए। बस यही प्रार्थना है।